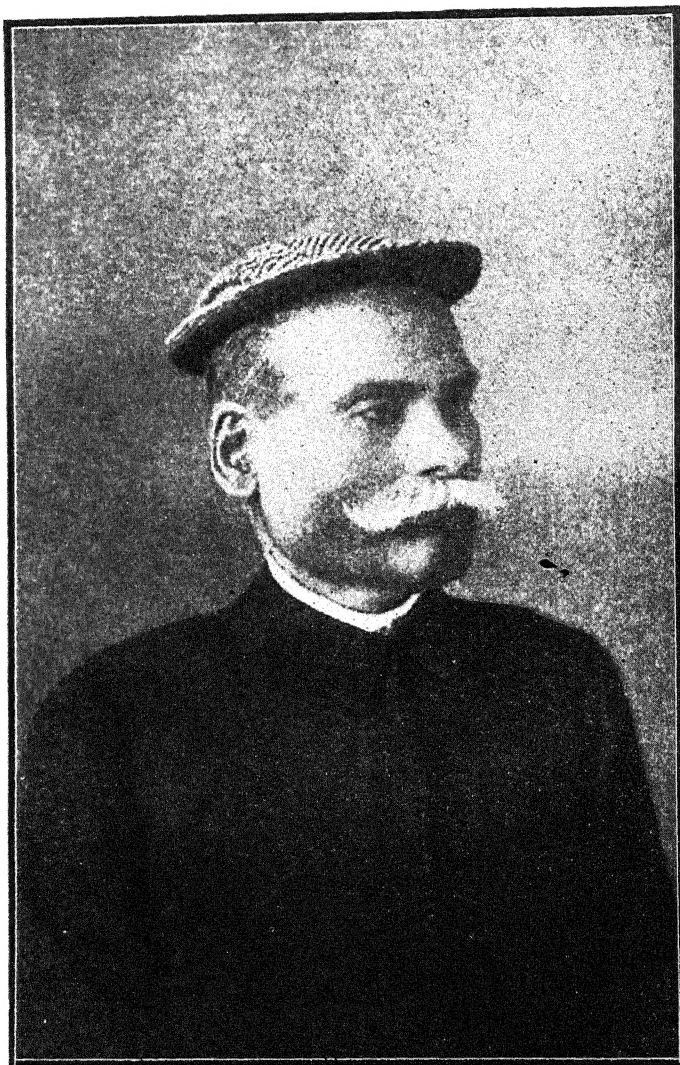


स्वर्गवासी साधुचरित श्रीमान् डालचन्दजी सिंघी



बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघीके पुण्यश्लोक पिता

जन्म-वि. सं. १९२१, मार्ग. वदि ६ 卐 स्वर्गवास-वि. सं. १९८४, पोष सुदि ६

सिंघी जैन ग्रन्थ माला

*****[ग्रन्थांक ५१]*****

संस्थापक

स्व० श्रीमद् बहादुर सिंहजी सिंघी

संरक्षक

श्री राजेन्द्र सिंह सिंघी तथा श्री नरेन्द्र सिंह सिंघी

*

प्रधान सम्पादक तथा संचालक

आचार्य जिन विजय मुनि



अनेकविद्वदालेखित - नानाप्रकार - रचनानिवद्ध

विज्ञसिलेख संग्रह

(विज्ञसिन्निवेणी - विज्ञसिन्महालेख - आनन्दप्रबन्धलेखा
समुच्चयात्मक)

— [प्रथम भाग] —

संपादनकर्ता

आचार्य, जिन विजय मुनि

(निवृत्त-सम्मान्य नियामक (ऑनररी डायरेक्टर) - भारतीय विद्याभवन, बम्बई)

*****[प्रकाशनकर्ता]*****

सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ

भारतीय विद्या भवन, बम्बई. ७

दानशील-साहित्यरसिक-संस्कृतिप्रिय
स्व० बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघी



अजीमगंज-कलकत्ता

जन्म ता. २८-६-१८८५]

[मृत्यु ता. ७-७-१९४४

सिंघी जैन ग्रन्थ माला

*****[ग्रन्थांक ५१]*****

अनेकविद्वदालेखित - नानाप्रकाररचनानिबद्ध

विज्ञप्तिलेख संग्रह

— [प्रथम भाग] —



SINGHI JAIN SERIES

*****[NUMBER 51]*****

VIJÑAPTI-LEKHA-SAMGRAHA

(A COLLECTION OF WORKS WRITTEN BY MANY AUTHORS RELATIN
TO PARYUSANAPARVA CEREMONY AND SIMILAR OCCASIONS)

क ल क त्ता नि वा सी
साधुचरित-श्रेष्ठिवर्य श्रीमद् डालचन्दजी सिंघी पुण्यस्मृतिनिमित्त
प्रतिष्ठापित एवं प्रकाशित

सिंघी जैन ग्रन्थ माला

[जैन आगमिक, दार्शनिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, कथात्मक-इत्यादि विविधविषयगुम्फित
प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राचीनगूर्जर, -राजस्थानी आदि नाना भाषानिबद्ध सार्वजनीन पुरातन
वाङ्मय तथा नूतन संशोधनात्मक साहित्य प्रकाशिनी सर्वश्रेष्ठ जैन ग्रन्थावलि]

प्रतिष्ठाता

श्रीमद् - डालचन्दजी - सिंघीसत्पुत्र
स्व० दानशील - साहित्यरसिक - संस्कृतिप्रिय
श्रीमद् बहादुर सिंहजी सिंघी



प्रधान सम्पादक तथा संचालक

आचार्य जिन विजय मुनि
अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ
निवृत्त ऑनररि डायरेक्टर
भारतीय विद्या भवन, बम्बई

*

संरक्षक

श्री राजेन्द्र सिंह सिंघी तथा श्री नरेन्द्र सिंह सिंघी

प्रकाशक

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ
भारतीय विद्या भवन, बम्बई

जयन्तकृष्ण ह. दवे, ऑनररी डायरेक्टर, भारतीय विद्या भवन, चौपाटी रोड, बम्बई, नं. ७, द्वारा प्रकाशित
तथा - लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी, निर्णयसागर प्रेस, २६-२८ कोलमाट स्ट्रीट, बम्बई, नं. २, द्वारा मुद्रित

अनेक-विद्वदालेखित-नानाप्रकार-रचनानिबद्ध
विज्ञसिलेखसंग्रह

मूल लेख संग्रहात्मक
प्रथम भाग

अनेकप्राचीनहस्तलिखित-आदर्शानुसारेण
संपादनकर्ता

आचार्य, जिन विजय मुनि

(निवृत्त-सम्मान्य नियामक (ऑनररी डायरेक्टर) - भारतीय विद्याभवन, बंबई)

संस्थापक एवं सम्मान्य संचालक - राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

[ऑनररी मेंबर ऑफ जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी]

सम्मान्य सदस्य-भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना; गुजरात साहित्य
सभा, अहमदाबाद; विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध संस्थान, होशियारपुर, पंजाब;
प्रधान संपादक - गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर ग्रन्थावली; भारतीय विद्या ग्रन्थावली;
जैन साहित्यसंशोधक ग्रन्थावली; सिंघी जैन ग्रन्थमाला; राजस्थान पुरातन
ग्रन्थमाला - इत्यादि, इत्यादि



प्रकाशनकर्ता

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ

भारतीय विद्याभवन, बम्बई

विक्रमाब्द २०१६]

प्रथमावृत्ति

[ख्रिस्ताब्द १९६०

ग्रन्थांक ५१]

सर्वाधिकार सुरक्षित

[मूल्य रु० १०/५०

अनेक - विद्वदालेखित - नानाप्रकार - रचनानिबद्ध
विज्ञसिलेखसंग्रह

मूल लेख संग्रहात्मक
प्रथम भाग

अनेकप्राचीनहस्तलिखित - आदर्शानुसारेण
संपादनकर्ता

आचार्य, जिन विजय मुनि

(निवृत्त-सम्मान्य नियामक (ऑनररी डायरेक्टर) - भारतीय विद्याभवन, बंबई)

संस्थापक एवं सम्मान्य संचालक - राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

[ऑनररी मेंबर ऑफ जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी]

सम्मान्य सदस्य - भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना; गुजरात साहित्य
सभा, अहमदाबाद; विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध संस्थान, होशियारपुर, पञ्जाब;
प्रधान संपादक - गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर ग्रन्थावली; भारतीय विद्या ग्रन्थावली;
जैन साहित्यसंशोधक ग्रन्थावली; सिन्धी जैन ग्रन्थमाला; राजस्थान पुरातन
ग्रन्थमाला - इत्यादि, इत्यादि



प्रकाशनकर्ता

अधिष्ठाता, सिन्धी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ

भारतीय विद्याभवन, बम्बई

विक्रमाब्द २०१६]

प्रथमावृत्ति

[ख्रिस्ताब्द १९६०

ग्रन्थांक ५१]

सर्वाधिकार सुरक्षित

[मूल्य रु० १०/५०

SINGHI JAIN SERIES

A COLLECTION OF CRITICAL EDITIONS OF IMPORTANT JAIN CANONICAL,
PHILOSOPHICAL, HISTORICAL, LITERARY, NARRATIVE AND OTHER WORKS
IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRAMSHA AND OLD RAJASTHANI-
GUJARATI LANGUAGES, AND OF NEW STUDIES BY COMPETENT
RESEARCH SCHOLARS

ESTABLISHED

IN THE SACRED MEMORY OF THE SAINT LIKE LATE SETH

ŚRĪ DĀLCHANDJĪ SINGHĪ

OF CALCUTTA

BY

HIS LATE DEVOTED SON

DANASILA - SAHITYARASIKA - SANSKRITIPRIYA

ŚRĪ BAHADUR SINGH SINGHI

15504

DIRECTOR AND GENERAL EDITOR

ĀCHĀRYA JINA VIJAYA MUNI

ADHIṢṬHĀTĀ, SINGHĪ JAIN ŚĀSTRA ŚIKṢHĀ PĪṬHA

(Retired Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhavana, Bombay.)

PUBLISHED

UNDER THE PATRONAGE OF

ŚRĪ RAJENDRA SINGH SINGHI

AND

ŚRĪ NARENDRA SINGH SINGHI

BY THE ADHIṢṬHĀTĀ

SINGHI JAIN SHASTRA SHIKSHAPITH

BHARATIYA VIDYA BHAVAN, BOMBAY

VIJNAPTI-LEKHA-SAMGRAHA

(A COLLECTION OF WORKS WRITTEN BY MANY AUTHORS
RELATING TO PARYUSANA PARVA CEREMONY AND
SIMILAR OCCASIONS)

COLLECTED AND EDITED FROM VARIOUS OLD MANUSCRIPTS

BY

Acharya JINA VIJAYA MUNI, Puratattvacharya
(Ex. Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay)

Honorary Founder-Director,

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur;
Honorary Member of the German Oriental Society (Germany);
Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona; Gujarat Sahitya
Sabha, Ahmedabad; and Vishveshvaranand Vaidic Research
Institute, Hoshiyarpur, Punjab.

FIRST PART

PUBLISHED BY

Adhiṣṭhātā, Singhi Jain Śāstra Śikṣāpīṭha
BHARATIYA VIDYA BHAVANA
BOMBAY

V. E. 2016]

First Edition

[A. D. 1960

Vol. No. 51]

* *

[Price Rs. 10/50

SINGHI JAIN SERIES

ॐ अद्यावधि मुद्रितग्रन्थनामावलि ॐ

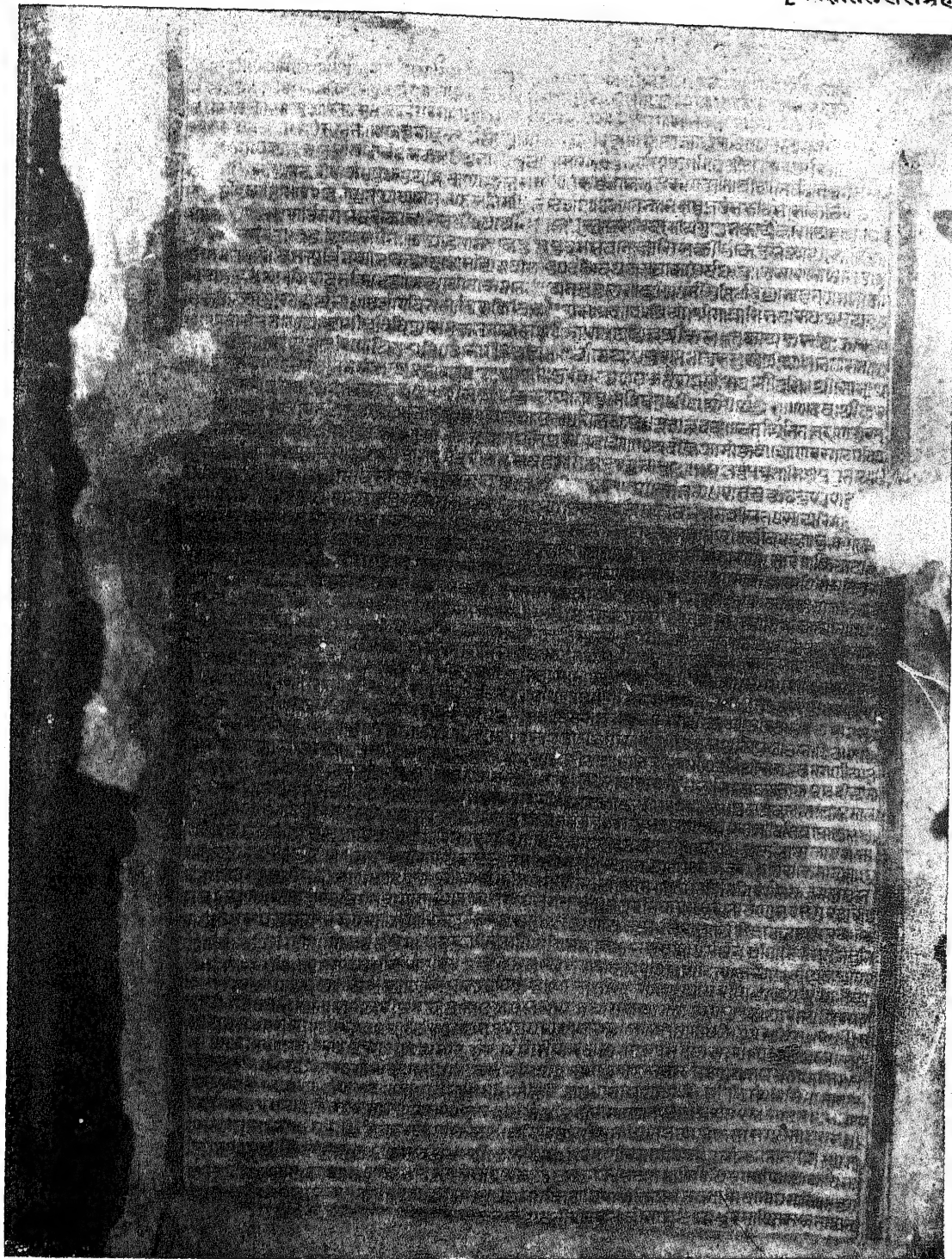
- | | |
|--|---|
| १ मेस्तुजाचार्यरचित प्रबन्धचिन्तामणि
मूल संस्कृत ग्रन्थ. | २१ कवि धाहिलरचित पडमसिरीचरित. (अप०) |
| २ पुरातनप्रबन्धसंग्रह बहुविध ऐतिह्यतथ्यपरिपूर्ण
अनेक निबन्ध संचय. | २२ महेश्वरसूरिकृत नाणपंचमीकथा. (प्रा०) |
| ३ राजशेखरसूरिरचित प्रबन्धकोश. | २३ श्रीभद्रबाहुआचार्यकृत भद्रबाहुसंहिता. |
| ४ जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प. | २४ जिनेश्वरसूरिकृत कथाकोषप्रकरण. (प्रा०) |
| ५ मेघविजयोपाध्यायकृत देवानन्दमहाकाव्य. | २५ उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदयमहाकाव्य. |
| ६ यशोविजयोपाध्यायकृत जैनतर्कभाषा. | २६ जयसिंहसूरिकृत धर्मोपदेशमाला. (प्रा०) |
| ७ हेमचन्द्राचार्यकृत प्रमाणमीमांसा. | २७ कोऊहलविरचित लीलावई कथा. (प्रा०) |
| ८ भट्टकलङ्कदेवकृत अकलङ्कग्रन्थत्रयी. | २८ जिनदत्ताख्यानद्वय. (प्रा०) |
| ९ प्रबन्धचिन्तामणि - हिन्दी भाषांतर. | २९ स्वयंभूविरचित पडमचरित. भाग १ (अप०) |
| १० प्रभाचन्द्रसूरिरचित प्रभावकचरित. | ३० " " " २ |
| ११ सिद्धिचन्द्रोपाध्यायरचित भानुचन्द्रगणिचरित. | ३१ सिद्धिचन्द्रकृत काव्यप्रकाशखण्डन. |
| १२ यशोविजयोपाध्यायविरचित ज्ञानबिन्दुप्रकरण. | ३२ दामोदरपण्डित कृत उक्तिव्यक्तिप्रकरण. |
| १३ हरिषेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोश. | ३३ भिन्नभिन्न विद्वत्कृत कुमारपालचरित्रसंग्रह. |
| १४ जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह, प्रथम भाग. | ३४ जिनपालोपाध्यायरचित खरतरगच्छ बृहद्बुवावलि. |
| १५ हरिभद्रसूरिविरचित धूर्ताख्यान. (प्राकृत) | ३५ उद्द्योतनसूरिकृत कुवलयमाला कथा. (प्रा०) |
| १६ दुर्गदेवकृत रिष्टसमुच्चय. (प्राकृत) | ३६ गुणपालमुनिरचित जंबुचरियं. (प्रा०) |
| १७ मेघविजयोपाध्यायकृत दिग्विजयमहाकाव्य. | ३७ पूर्वार्च्यविरचित जयपायड-निमित्तशास्त्र. (प्रा०) |
| १८ कवि अब्दुल रहमानकृत सन्देशरासक. (अपभ्रंश) | ३८ भोजनूपतिरचित शृङ्गारमञ्जरी. (संस्कृत कथा) |
| १९ भर्तृहरिकृत शतकत्रयादि सुभाषितसंग्रह. | ३९ धनसारगणीकृत-भर्तृहरशतकत्रयटीका. |
| २० शान्त्याचार्यकृत न्यायावतारवार्तिक-वृत्ति. | ४० कौटल्यकृत अर्थशास्त्र - सटीक. (कतिपयअंश) |
| | ४१ विज्ञसिलेखसंग्रह विज्ञप्तिमहालेख - विज्ञप्तित्रिवेणी
आदि अनेक विज्ञसिलेख समुच्चय. |
| | ४२ महेन्द्रसूरिकृत नर्मदासुन्दरीकथा. (प्रा०) |

Shri Bahadur Singh Singhi Memoirs Dr. G. H. Bühler's Life of Hemachandrāchārya. Translated from German by Dr. Manilal Patel, Ph. D.

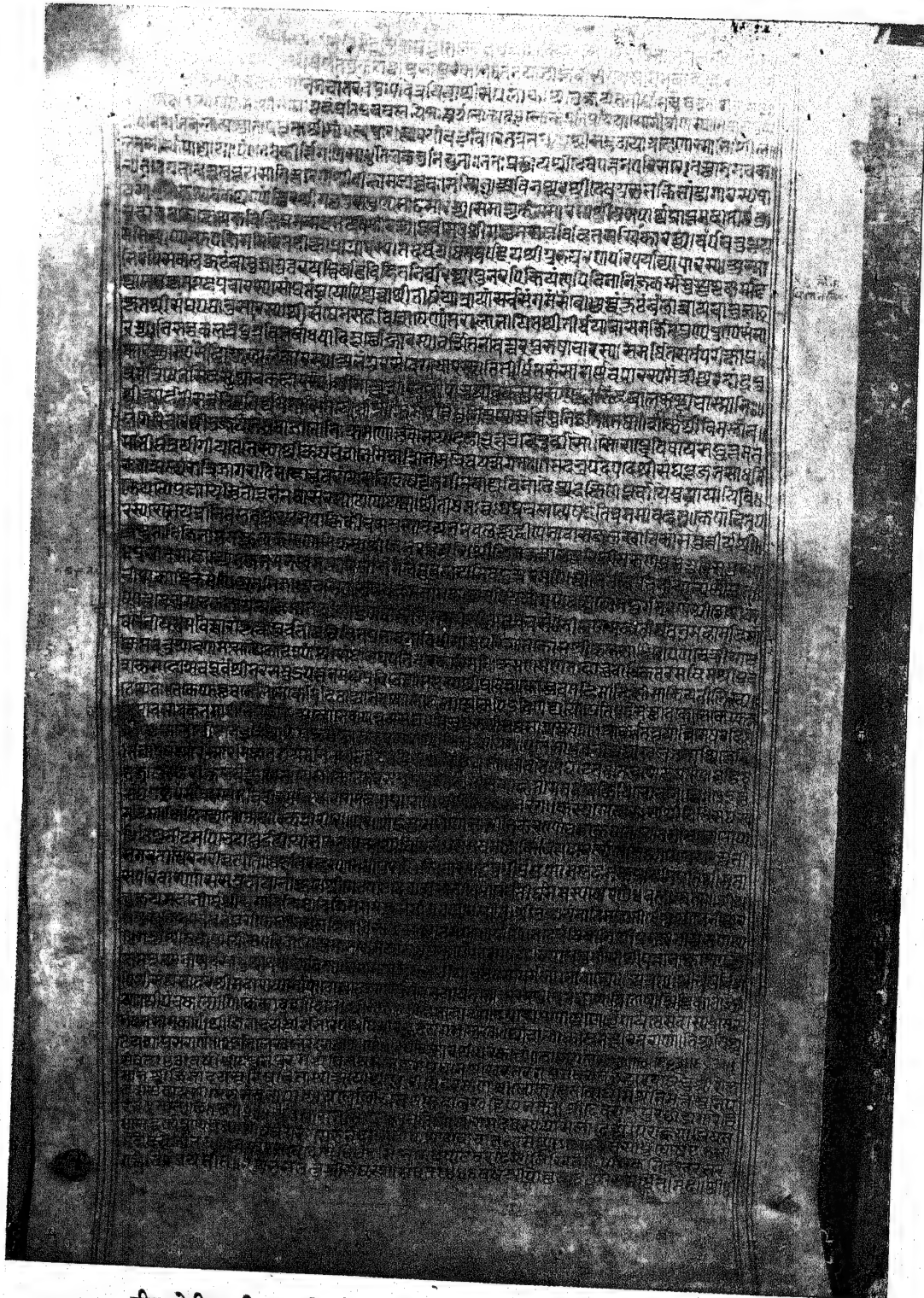
- १ स्व. बाबू श्रीबहादुरसिंहजी सिंघी स्मृतिग्रन्थ [भारतीयविद्या भाग ३] सन १९४५.
- २ Late Babu Shri Bahadur Singhji Singhi Memorial volume
BHARATIYA VIDYA [Volume V] A. D. 1945.
- ३ Literary Circle of Mahāmātya Vastupāla and its Contribution
to Sanskrit Literature. By Dr. Bhogilal J. Sandesara,
M. A., Ph. D. (S.J.S.33.)
- 4-5 Studies in Indian Literary History. Two Volumes.
By Prof. P. K. Gode, M. A. (S. J. S. No. 37-38.)

ॐ संप्रति मुद्र्यमाणग्रन्थनामावलि ॐ

- | | |
|---|--|
| १ विविधगच्छीय पट्टावलि संग्रह. | ६ रामचन्द्रकविरचित-मल्लिकामकरन्दादिनाटकसंग्रह. |
| २ जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह, भाग २. | ७ तरुणप्राभाचार्यकृत षडावश्यकबालावबोधवृत्ति. |
| ३ कीर्तिकौमुदी आदि वस्तुपालप्रशस्तिसंग्रह. | ८ प्रद्युम्नसूरिकृत मूलशुद्धिप्रकरण-सटीक. |
| ४ गुणचन्द्रविरचित मंत्रीकर्मचन्द्रवंशप्रबन्ध. | ९ हेमचन्द्राचार्यकृत छन्दोऽनुशासन. |
| ५ गुणप्रभाचार्यकृत विनयसूत्र. (बौद्धशास्त्र) | १० स्वयंभुकविरचित पडमचरित. भा० ३ |



बीकानेरीय श्रीपूज्यजीवाले 'विहसिमहालेख' के टीपणेका आदिभाग



बीकानेरीय श्रीपूज्यजीवाले 'विज्ञप्तिमहालेख' के टीपणेका अन्तिम भाग

विज्ञप्ति लेखसंग्रह – किञ्चित् प्रास्ताविक

जिन अनेक विज्ञप्तिपत्रस्वरूप लेखोंका, प्रस्तुत 'विज्ञप्ति-लेख-संग्रह' में संकलन किया गया है उनमें से स प्रथम 'विज्ञप्ति-त्रिवेणी' नामक लेख की प्राचीन हस्तलिखित प्रति, मुझे सन् १९१५ में, पाटण के वाडी पार्श्वनाथ मन्दिर स्थित प्राचीन ग्रन्थभंडार में उपलब्ध हुई। रचना को पढ़ने से मुझे उसका बहुत महत्त्व अनुभूत हुआ और फिर सन् १९१६ बडौदा में निवास करते हुए मैंने, प्रकाशित करने की दृष्टि से, उसका संपादन किया एवं भावनगर की जैन आत्मानन्द सभा द्वारा उसका प्रकाशन हुआ। मैंने उस पुस्तक की भूमिका बहुत विस्तारके साथ लिखी और उसमें विज्ञप्ति लेख का क्या तात्पर्य है और वे क्यों और कब लिखे जाते थे एवं उनका कैसा स्वरूप और वर्ण्यविषय आदि होता था, इ बातों पर यथेष्ट प्रकाश डाला था। तत्कालीन विद्वानों ने उस पुस्तक की बहुत प्रशंसा की। हिन्दी भाषा जगत् में महारथी और महागुरु स्व. पंडित महावीर प्रसादजी द्विवेदीने उसकी आलोचना करते हुए उसे, समग्र भारतीय वाङ्मय में एक अपूर्व और अद्वितीय रचना कह कर उसका मूल्यांकन किया। मेरी वह सर्वादिम संपादित पुस्तक थी।

उसके बाद मैं वैसे विज्ञप्ति लेखों की खोज में बराबर लगा रहा और मुझे वैसे छोटे बड़े अनेक लेख मिलते गये।

विद्वान् आचार्य और यतिगण द्वारा संस्कृत में लिखे गये विज्ञप्ति लेखों के अतिरिक्त, जैन श्रावक समुदाय के द्वारा स्थान विशेषों से देश भाषा में लिखे गये लेखों की प्राप्ति भी मुझे हुई और ये लेख तो इतिहास, साहित्य एवं चित्रकला की दृष्टिसे और भी अधिक महत्त्व के ज्ञात हुए। इनमें से एक सब से प्राचीन लेख जो मुझे मिला उसको मैंने अपने द्वारा संपादित और प्रकाशित जैन साहित्य संशोधक नामक त्रैमासिक पत्र (सन् १९२०) में प्रकाशित किया। उस लेख का प्रकाशन दे कर उस के जैसे अन्यान्य विज्ञप्ति पत्रों की खोज की तरफ, कुछ अन्य विद्वान्मित्रोंका भी लक्ष्य आकृष्ट हुआ और बडौ राज्य के पुरातत्त्व विभाग के डायरेक्टर स्व. पं. हीरानन्द शास्त्रीने गायकवाड राज्य की ओरसे वैसे कुछ विज्ञप्ति पत्रालेखों का एक सचित्र प्रकाशन प्रकट किया। इस प्रकारके संस्कृत एवं देशभाषा में लिखित विज्ञप्ति लेखों का संग्रह बहुत विशाल है और उनका सुन्दर रूप से प्रकाशन किया जाय तो जैन साहित्य, इतिहास और चित्रकला की दृष्टिसे एक महत्त्वका कार्य संपन्न होने जैसा है—यह विचार कर मैंने सिंधी जैन ग्रन्थमाला द्वारा ऐसे कुछ संग्रहों का प्रकाशन का प्रारंभ किया जिसके परिणाम स्वरूप उसका यह प्रथम भाग आज विद्वानों के सम्मुख उपस्थित है।

प्रारंभ में मेरा विचार इस संग्रह में वैसे विज्ञप्ति लेख संकलित करने का था जो इस पुस्तक के पृ. ७० बाद, द्वितीय विभाग के रूपमें, 'आनन्द लेख प्रबन्ध' नामक आदि लेखों का मुद्रण हुआ है। मेरे पास ऐसे छोटे-बड़े पचासों लेखोंका संचय हुआ पड़ा है।

सन् १९४० में, बंबई में मुझे बीकानेरके एक श्री पूज्यजी के पास वह बड़ा विज्ञप्ति लेख देखने को मिला इस संग्रह में सर्व प्रथम मुद्रित हुआ है। यह विज्ञप्ति लेख, सर्व प्रथम मुझे प्राप्त 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' नामक लेख से कुछ प्राचीन और वैसा ही बहुत महत्त्वका लगा। मैंने इस की प्रतिलिपि करवा ली और प्रकाशित करने की काम से संशोधनादि करना प्रारंभ किया। श्री पूज्यजी से प्राप्त यह लेख टीपणा के रूप में लंबे कागजों पर लिखा गया है। अक्षर तो इस के सुवाच्य थे पर भाषा की दृष्टि से अशुद्धियां बहुत दिखाई दीं। सद्भाग्य से इस की दूसरी प्रतिलिपि मुनिवर श्री पुण्यविजयजी महाराज के पास पाटण में देखने को मिल गई। इस प्रतिका प्रथम पत्र नहीं है। बाकी संग्रह है। यह प्रति बहुत सुन्दर ढंगसे लिखी गई है और शुद्धिकी दृष्टि से भी उत्तम कोटि की है। इस प्रति के प्राप्त होते मैंने इस का मुद्रण प्रारंभ कर दिया। प्रथम मेरा विचार इस अकेले ही लेख को सुन्दर रूप से प्रकाशित कर देने रहा और इस की प्रस्तावना भी 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' के समान विस्तृत रूपमें लिखने का था। पर पीछे से, ऐसे लेखों एक समुच्चय संग्रह, इस दृष्टिसे प्रकाशित करने का हुआ, कि जिस से इस प्रकार के विशिष्ट और अभी तक अप्रकाशित

एवं अज्ञात स्वरूप साहित्यिक निधिका, विद्वानों को ठीक ठीक परिचय प्राप्त हो। इस विचार के अनुसार मैंने इस लेखके साथ, अपनी पूर्व प्रकाशित 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' का भी पुनर्मुद्रण कर देना उचित समझा। इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह में, 'विज्ञप्ति महालेख' एवं 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' नामक दो बड़ी रचनाओं के साथ, 'आनन्द प्रबन्ध लेख' आदि अन्य उप-रचनाओं का संकलन किया गया है।

मेरा मनोरथ तो इन सब रचनाओं से संबद्ध ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक बातों का विस्तृत विवेचन इनके साथ देने का था और जैसा मैंने 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' के साथ विस्तृत उपोद्धातात्मक निबन्ध लिखा है वैसा ही निबन्ध, इसके साथ लिखने का रहा। पर सद्भाग्यसे या दुर्भाग्यसे मैंने ऐसे अनेकानेक ग्रन्थोंके संपादन का काम, एक साथ हाथ में ले रखा है, जिससे मनोरथानुकूल ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण विस्तृत भूमिकाएं या प्रस्तावनाएं लिखने का समय प्राप्त नहीं होता है।

इस संग्रह के छपवाने का प्रारंभ आज से कोई १७-१८ वर्ष पहले किया गया था और कोई १०-१२ वर्ष पूर्व ही यह सारा संग्रह, वर्तमान रूप में प्रकाशित होनेकी स्थिति में पहुंच गया था। पर मेरे हाथों में अन्यान्य संपादनों का भार, दिन प्रति दिन बढ़ता ही रहने से, मैं अभी तक विस्तृत प्रस्तावना लिखने का सुयोग देख नहीं रहा हूं। अतः फिलहाल इस संग्रह को मूल मूल रूप में ही प्रकट कर देना मैंने अधिक उपयुक्त समझा है।

मनमें आशा तो बन्धी हुई है ही कि निकट भविष्यमें, मैं इसका दूसरा भाग भी तैयार कर सकूं और उसमें प्रस्तुत संग्रहसे संबद्ध विस्तृत विवेचना आदि लिख सकूं। इस विवेचना की बहुत सी सामग्री संगृहीत हुई पड़ी है। केवल दो-तीन महिनो का निराबाध और एकान्त समय मुझे मिल जाय, तो मैं उसे लिपि बद्ध कर सकूं।

मेरा मनोरथ तो यह भी रहता है कि जैसे संस्कृत विज्ञप्तिलेख इस संग्रहमें प्रकाशित किये जा रहे हैं वैसे देशी भाषाओं में लिखे गये विज्ञप्तिपत्रों का भी प्रकाशन होना चाहिये। ये भाषानिबद्ध विज्ञप्तिपत्र तो और भी अत्यधिक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक सामग्री से परिपूर्ण हैं। गुजरात और राजस्थान की चित्रकला की दृष्टिसे तो इनका महत्त्व अत्यंत अधिक है। ये विज्ञप्तिपत्र ५-१० की संख्यामें नहीं, पर खोज करने पर, सैकड़ों की संख्यामें उपलब्ध होंगे। इनमें का एक-एक विज्ञप्तिपत्र, एक-एक महत्त्वके निबन्धकी समग्रीसे भरा पड़ा है। यदि कोई विश्वविद्यालयों के उच्चाध्ययन करने वाले विद्यार्थी गण, इन विज्ञप्तिपत्रोंके विषयको ले कर ही अपने डॉक्टरेट (पीएच. डी.) की डिग्री के लिये अध्ययन और अन्वेषण कार्य करना चाहें तो उनको बहुत महत्त्व की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सामग्री इनमें से उपलब्ध हो सकती है।

❀

प्रस्तुत संग्रह में प्रकाशित सर्वप्रथम विज्ञप्तिलेख विक्रमसंवत् १४४१ में लिखा गया है। इस दृष्टिसे मुझे अभी तक प्राप्त ऐसे विज्ञप्तिलेखों में यह सबसे प्राचीन है। यह लेख खरतर गच्छ के आचार्य जिनोदय सूरि ने, गुजरातके पाटण नगर से, अपने पूज्य लोकहिताचार्यके प्रति, जो उस समय अयोध्या नगर में चातुर्मास निमित्त रहे हुए थे, भेजा था। यह पत्र बहुत ही सुन्दर एवं प्रौढ़ साहित्यिक भाषामें लिखा गया है। बाण, दंडी और धनपाल जैसे महाकवियों द्वारा प्रयुक्त गद्य शैली के अनुकरणरूप में यह एक आदर्श रचना है। आलंकारिक भाषा की शब्दच्छटा के साथ, इसमें ऐतिहासिक घटना के निदर्शक वर्णनोंका भी सुन्दर पुट सम्मिश्रित है।

जिनोदय सूरि और लोकहिताचार्य की परिचायक ऐतिहासिक साधन-सामग्री यथेष्ट उपलब्ध हो सकती है। खरतर गच्छ की पट्टावलीयों से तथा अन्यान्य ग्रन्थादि गत उल्लेखों से इनके समय आदि का सविस्तर इतिहास प्राप्त किया जा सकता है। हमारे संग्रहमें तथा बीकानेर आदिके ग्रन्थमंडारों में इस विषयकी सामग्री संचित है। इस सबका निर्देश करना या परिचय देना अभी मेरे लिये यहां पर शक्य नहीं है।

प्रस्तुत लेख में जिनोदय सूरि ने बहुत करके वि. सं. १४३०-३१ में जिस प्रदेश में विचरण किया और जिन तीर्थभूत स्थानों की यात्रा एवं प्रतिष्ठा आदि कार्य किये, उसका संक्षिप्त में वर्णन है। लोकहिताचार्य ने अयोध्या से एक

ऐसा ही विज्ञप्ति लेख जिनोदय सूरि को भेजा था जिस में उन्होंने, पिछले वर्ष किये गये अपने प्रवास के वर्णन में, तीर्थ यात्रादि कार्यों का परिचय दिया था; उसी के उत्तर स्वरूप जिनोदय सूरि ने भी अपना यह विस्तृत एवं आलंकारिक विज्ञप्ति लेख लिख कर उन के पास भेजा था। इस से ज्ञात होता है कि लोकहिताचार्य का भेजा हुआ विज्ञप्ति-लेख भी इसी प्रकार का एक उत्तम, सुन्दर साहित्यिक एवं वर्णनात्मक पत्र था। खोज करने पर, संभव है कि कहीं से वह पत्र भी किसी खोजी को मिल सके।

इस संग्रह में जो दूसरा बड़ा विज्ञप्ति स्वरूप लेख है वह 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' नाम का है जो वि. सं. १४८४ की रचना है। यह विज्ञप्ति पत्रात्मक लेख खरतर गच्छ के जयसागर उपाध्याय नामक विद्वान् ने, सिंध प्रदेश के मलिकवाहण नामक स्थान से, अपने गच्छाचार्य जिनभद्र सूरि को लिखा था, जो उस समय गुजरात के पाटण नगर में रहे हुए थे। इस पत्र विषयक सब ज्ञातव्य बातें, मैंने उक्त विज्ञप्ति त्रिवेणी नामक पुस्तक की विस्तृत प्रस्तावना में आलेखित की हैं।

मेरा विचार, उस प्रस्तावना को एवं अन्यान्य लेखों संबन्धी ज्ञातव्य बातों को भी, इस के साथ संकलित कर देने का रहा पर अभी समयाभाव से वैसा होना शक्य न जान कर, आज तो इस संग्रह को, वर्तमान रूप में ही, अपने हाथों में ले कर विद्वानों के सम्मुख उपस्थित हो रहा हूँ। आशा है कि यह संग्रह इस रूपमें भी अभ्यासीवर्ग को आदरणीय होगा।

फाल्गुन पूर्णिमा, सं० २०१६
भारतीय विद्याभवन, बंबई
—[ता० १३.३.१९६०]—

— मुनि जिनविजय

विज्ञप्तिलेखसंग्रह — विषयानुक्रम

—: प्रथम भाग :—

क्रमांक	पृष्ठ संख्या
१ खरतरगच्छीयश्रीलोकहिताचार्य प्रति श्रीजिनोदयसूरिणा प्रेषितो विज्ञप्तिमहालेखः । परिशिष्टे—लोकहिताचार्यस्तुतयः । शत्रुंजयतीर्थस्तुतिः ।	१-३४ ३५ ३६
२ खरतरगच्छालंकार—श्रीजिनभद्रसूरिं प्रति महोपाध्यायजयसागरपण्डितप्रवरैः लिखितो 'विज्ञप्तित्रिवेणि' सञ्ज्ञको महालेखः । परिशिष्टे—नगरकोटतीर्थ चैत्यपरिपाटी ।	३७-६८ ६९

द्वितीय विभाग

क्रमांक	पृष्ठ संख्या
१ महोपाध्याय—श्रीविनयविजयगणिप्रणीतं आनन्दलेखप्रबन्धनामकविज्ञप्तिमत्रम् ।	७३
२ महोपाध्याय—श्रीविनयविजयगणिप्रणीतं इन्दुदूताभिधानं विज्ञप्तिपत्रम् ।	८९
३ श्रीमेघविजयोपाध्याय—विरचितं मेघदूतसमस्यापूर्तिमयविज्ञप्तिपत्रम् ।	९८
४ खरतरगच्छाचार्य—श्रीजिनसुखसूरिं प्रति पं. विजयवर्द्धनगणिप्रेषितं विज्ञप्तिपत्रम् ।	१०७
५ खर०—श्रीजिनचंद्रसूरिं प्रति वाचक-राजविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	११४
६ तपागच्छाचार्य—श्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं. नयविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१२०
७ तपागच्छाचार्य—श्रीविजयप्रभसूरिं प्रति उदयविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१२६
८ तपागणाधीश—श्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं. मेघविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१२९
९ तपागच्छापति—श्रीविजयदेवसूरिं प्रति श्रीविजयसिंहसूरिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१३७
१० श्रीमेरुविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिः ।	१५१
११ तपागच्छाधीश—श्रीविजयसेनसूरिं प्रति महोपाध्यायकीर्तिविजयप्रेषिता विज्ञप्तिपत्रिका ।	१५५
१२ तपागणपति—श्रीविजयसिंहसूरिं प्रति पं. अमरचंद्रप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१५९
१३ तपागणपति—श्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं. उदयविजयप्रेषिता विज्ञप्तिपत्रिका ।	१६२
१४ तपागणपति—श्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं. लाभविजयप्रेषितो विज्ञप्तिलेखः ।	१६६
१५ तपागच्छीयभट्टारक—श्रीविजयदेवसूरिं प्रति उपाध्याय—श्रीधनविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१७२
१६ तपागच्छपतिभट्टारक—श्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं. उदयविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१७७
१७ तपागच्छाधीश—श्रीविजयसिंहसूरिं प्रति उपध्याय—श्रीकमलविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१७९
१८ तपागच्छाधीश—श्रीविजयसिंहसूरिं प्रति पं. लावण्यविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१८५
१९ तपागच्छाधिनायकभट्टारक—श्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं. आगमसुन्दरगणिलिखिता विज्ञप्तिका ।	१९०
२० तपागच्छपतिभट्टारक—श्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं. लावण्यविजयगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१९५
२१ तपागच्छीयाचार्य—श्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं. रविवर्द्धनगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	१९९
२२ तपागच्छाधिपति—श्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं. विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	२०२
२३ तपागच्छाचार्य—श्रीविजयसिंहसूरिं प्रति विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	२०५
२४ तपागणाधीश—श्रीविजयसिंहसूरिं प्रति पं. विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	२०९
२५ खरतरगच्छीयाचार्य—श्रीजिनसुखसूरिं प्रति पं. दयासिंहप्रेषिता विज्ञप्तिका ।	२१४

ख र त र ग च्छी य
श्रीलोकहिताचार्य प्रति श्रीजिनोदयसूरिणा प्रेषितं
विज्ञप्तिमहालेख

नामकं महद्विज्ञप्तिपत्रम् ।

[अथादौ मङ्गलार्थं जिनाशीर्वादाः -]

- § १. श्रीश्रेयांसि सतां दिशन्तु सततं ते स्वामिनस्तीर्थपा, यज्ज्ञानामृतपानतस्तनुमतां प्रज्ञावतां पर्वदि ।
 गङ्गा-सिन्धुसरि.....सरला आश्चर्यदाः संपनी-पद्यन्ते हृदयङ्गमाः सहृदयश्रोत्रप्रियाः सूक्तयः ॥ १ ॥
 श्रीमत्काननमोदिताखिलजनः सद्दर्शन.....हृच्छायादृश्यतमः सुशालिवसुधः सारङ्गरङ्गावहः ।
 दिग्.....प्रबलप्रकाशशुभगः सानन्दपुण्याध्वगः, श्रीशान्तिः.....स्स गमयेद् वः कल्मषं मूलतः ॥ २ ॥
 कस्तूरिद्रवगर्भचं.....मिलत्काश्मीरयूषच्छटा-शुक्तातुल्यविशाललोचन.....क्षतम् ।
 पक्ष्म.....पुरोमदौर्बदलकं दृष्टं शुभायास्तु वः, श्रीमाङ्गल्यसुवर्णभाजनमिदं श्रीशान्तिनेतुमुखम् ॥ ३ ॥
समुद्रसान्द्रलहरीराकण्ठमुत्कण्ठयन्, निःकम्पोऽवलभव्यमानसधृतानेकस्वरूपाकृति ।
 श्रीशान्तेर्वदनेन्दुमण्डलमलंकुर्वद् †दिशोभाभैरै, रदैतामृतपायनेन सफलं निर्मातु वो दर्शनम् ॥ ४ ॥
 कान्ते ! नाभिसमुद्भवं भज विभो ! भक्तिर्विरञ्चौ न मे, सारङ्गाक्षि ! सुसार्वमङ्गलवरं कोऽभ्येति चण्डीधवम् ।
 श्रीमद्बाहुबलेः प्रसावकमये मुग्धे ! न कार्यं हरौ, यद्वद्वै प्रिययोरियं चतुरताऽभूद् वः श्रिये सैर्षमः ॥ ५ ॥
 अद्वैतानन्दहेतुस्त्रिभुवनभवनोल्लासितकीर्तिकेतुः, -लक्ष्मव्याजाद् विजित्य क्रमतलनिहितस्फूर्तिमन्मीनकेतुः ।
 दृष्टो भव्यैस्तदीयद्विषदशिवघटासूचकोऽपूर्वकेतुः, संसाराम्भोधिसेतुः सुखयतु हृदयं नेमिराड् भक्तिनेतुः ॥ ६ ॥
 आयाता क्रमतोऽपि येन मुमुचे सा युग्मिधर्मस्थिति, -र्यद्व्यानामृतपानतोऽजनि जवादम्बासुखैश्वर्यभाग् ।
 उत्तुङ्गे विमलाद्रिराजि विहितावासः प्रकाशः श्रियां, श्रीमार्त्ताभिभवः स वः प्रथयतु श्रेयः शिवानन्दनः ॥ ७ ॥
 यः स्वामी भुवि विश्वंसेनजनताकल्याणकारोदय, -रिच्छन् श्रीकलधूतकायजरुचिः कारुण्यपुण्याशयः ।
 रङ्गद्वर्गहरिणाश्रितः प्रतिपदं भोगीन्द्रचूडामणि, -वर्माभयः प्रभुरातनोतु स सुखं श्रीशान्तिनेता सताम् ॥ ८ ॥

† मूलादर्शभूतप्रतेः प्रथमपत्रस्य विनष्टत्वाद् एतत्पङ्क्तिपर्यन्तात्मकोऽयं प्रारंभिकभागोऽस्य 'विज्ञप्तिमहालेख'स्य वीकानेरीय-
 श्रीपूज्यसत्कलेखटिप्पणात् समुद्धतः । १ कान्तिसमूहः । २ पक्षे मोक्षः । ३ सुष्ठु सर्वेषु जिनेषु मङ्गलेन वरम्-इत्थं नाना-
 समासाः; पक्षे-सु=अतिशयेन सर्वमङ्गलायाः=गौर्या अयम्, 'अण्', स चासौ वरश्च तम् । ४ बाहुबलेः प्रसावकं=जनकं; पक्षे-
 श्रीमन्तौ बाहौ(ह्) यस्य, स चासौ बलिश्च, तस्य प्रसावकं=प्रेरकं नोदकमित्यर्थः । ५ "तदः से स्वरे पदार्थाः" सन्धिः ।
 ६ मीनाङ्गव्याजतः । ७ अम्बा=जननी मरुदेवा; नेमिपक्षे-अम्बा=अम्बिका । ८ नेमिपक्षे-न विद्यतेऽभिभवो यस्य, न अभिभव-
 नीतिकः । ९ ऋषभपक्षे-शिवेन आनन्दनः । १० समस्तः । ११ सस्वामिकः । १२ पार्श्वपक्षे-छिन्ना श्रीकला यस्य स तथा,
 एवंविधा अत एव धृता=कम्पिता कायजरुचिः=कन्दर्पाभिलाषो येन यस्माद् यस्य वा । १३ हरिणेन आश्रितः; पार्श्वपक्षे-
 हरिणा=सर्पेण इन्द्रेण वा । १४ शान्तिपक्षे-अभयः । १५ पार्श्वपक्षे-श्रीशान्तिप्रापकः ।

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

यः पूर्वं करहेटकावनिमलङ्कृत्याथ भाग्योदया, -दायातः पुरकल्पपाटकधरां पूर्णः सुवर्णादिभिः ।

श्रीसौभाग्ययशोजयोजनतिकरो दारिद्र्यमुद्राहरः, श्रीसंघाय सुखाय सोऽस्तु निधिवत् श्रीपार्श्वतीर्थेश्वरः ॥ ९ ॥

देवश्रीकरहेटकावनिमहाराजः प्रजावत्सलो, विश्वव्यापियशः प्रतापनिलयप्रध्वस्तशत्रूदयः ।

चेतश्चिन्तितपूरणे सुरतरुः संभेटितः साम्प्रतं, श्रीपार्श्वः प्रथयेत् सुसेवकजने प्रीतिप्रसन्ने दृशौ ॥ १० ॥

यदहिकामाङ्कुशशोणरश्मयो, दिशन्ति काश्मीरविलेपनभ्रमम् ।

तनूषु नम्रामरसुन्दरीततेः, स वर्द्धमानः प्रभुरस्तु वो मुदे ॥ ११ ॥

पुष्पान्तु प्रभुनाभिभूषभृतयोऽर्हन्तः सतां ते सुखं, व्याख्यानावसरे क्षरदुचिमुचो रेजुर्यदीया रदाः ।

आत्मौन्नत्यधरान् सुकुन्दमुखरान् विस्मरपुष्पोत्करान्, दृष्ट्वाऽधःपतितान् पुरः किमु मुदा प्रोद्भूतहास्या इव ॥ १२ ॥

*

[अथ अणहिलपुरपत्तनवर्णनम् -]

§ २. भास्वद्भावनदानशीलतपसां यस्मिन् जनं भाजनं, दृष्ट्वा संयममञ्जरीभरधृतौ सन्मौधवं सौधवम् ।

जैनेन्द्रं भवनोच्चयं च सुभगं वैभैः कदम्बैरहो !, दुःकालेऽपि लभन्ति धार्मिकदृशः पुण्यामृतैः पारणम् ॥ १३ ॥

यत्रैतान् व्यवहारिणो निदधतः सौवर्णशृङ्गारणां, सारङ्गाक्षिकटाक्षचञ्चलपदैर्वाजिप्रजैर्दीव्यतः ।

दानं देवतरुनिव प्रददतो जेगीयमानान् गुणैः, दृष्ट्वा मोक्षहृदोऽपि संसृतिसुखे सतां मृशन्ति क्षणम् ॥ १४ ॥

स्त्रैणं यत्र सुवर्णकेतकनिभैरङ्गैर्मनोहार्यपि, प्रेक्ष्यामी तरलेक्षणाः कविजना जानन्ननङ्गास्पदम् ।

यत्र प्रेमरसानुविद्धमनसोः स्त्रीपुंसयोः सङ्गमं, कृत्वा चानु तयो रसं परिमृशन् ब्रह्माऽपि मोमुह्यते ॥ १५ ॥

यस्याऽऽवासिजने त्रिवर्गघटनाऽन्योन्याविरोधिक्रियां, बिभ्राणा वसति स्फुटं मैधुरिपोः काये त्रिलोकी यथा ।

चित्रं मे प्रथमा कदापि यदसौ मोक्षाय सम्पत्स्यते, काले भूरितरेऽपि किन्तु विवशा नेयं द्वितीया पुनः ॥ १६ ॥

*

तस्मात् - सकलशैलशेखरतुषारधरणीधरादिव सर्वमङ्गलाचरणप्रचाररमणीयनिवासात्, क्षिणाशानिवासिविन्ध्यवसुधाधरादिव सकलभवनराजिराजितप्रदेशात्, कस्तूरिकाकूट-टितगगनाङ्गणानुषङ्गिशृङ्गोत्तुङ्गाञ्जनावनीभृत इव साञ्जनसानुरागहृरिणेलक्षणाक्षिप्तबहुविध-याधरनिकरात्, पूर्वदिशावतंसशृङ्गारप्रकारश्रीउदयाद्रेरिव उदयमानसहस्रकरमण्डलात्, त्रिवैभारगिरेरिव श्रीगणधरस्तूपपरभागप्राप्तभूभागात्, श्रीविपुलश्रीविपुलाचलादिव समस्त-नतालोचनवितानक्रीडाविनोदमेदुरीकारस्पृहणीयशोभाविस्तारसमीपवर्त्तिश्रीराजगृहरम-येयात्, निस्सीमचतुर्दिगन्तमुद्रितसमुद्रसमुद्भूतविपुलकमलाविलासिनीविलासकुशलविला-त्रलोकास्तोकप्रदेदीय्यमानासमानदानवितानसंप्रीणितानेकवनीयकनिकुरम्बजेगीयमानजा-वीतरङ्गिणीप्रोच्छलद्दहलकल्लोलमालाप्रक्षालितधवलकीर्त्तिमण्डलविमलसरस्वतीप्रवाहतथा-जात्यमत्तमतङ्गजकुम्भस्थलोत्पन्नप्रसन्नाविभिन्नप्रोज्ज्वलमुक्ताफलगुलिकागुम्फितहारिहार-ङ्गारितधरणीरमणीविशङ्कदहृदयतटात्, अविकलकलाकलापसंलापलोलुपलपनलब्धवर्णल-वर्णक्षीरार्णवसमुल्लासनविभासमाननिशानाथायमानजनराजिविराजमानात्, पुरातनभ-समाराधितश्रीबोधिदपदपद्मयुगलपर्युपास्तिसमर्जितवर्योर्जितगर्जिततर्जितनिर्गलकश्मल-

१ इति मङ्गलार्थं श्रीजिनाशीर्वादाः । २ अथ पत्तनपुरवर्णना । ३ वसन्तम् । ४ साधूनां समूहम् । ५ नारायणस्य । सर्वमङ्गला = गौरी तस्याश्चरणप्रचारः, इत्यादि; पुरपक्षे - सर्वमङ्गलाऽऽचारः, इत्यादि । ७ समस्तगृहराजि; पक्षे - सकलभवनराजि, आदि । ८ पक्षे - नारी । ९ कराः = किरणाः, राजदेयभागाश्च । १० नगरविशेष; पक्षे - नृपमन्दिर । ११ सादर । १२ सुख ।

बलप्रबलपुण्यागण्यपुण्यवितन्तन्यमानाभङ्गभोगभङ्गीसुभगभावुकभूचरनिकरमधुरलावण्य-
भरभङ्गुरशरीरावयवरूपस्वरूपनिरूपणविस्मारितपुरन्दरपुरात् श्री अणहिल्लपुरवरात् ॥ ५॥

*

[पत्रपेषकसूरेस्तदीयशिष्यमण्डलस्य च नामाभिधानपूर्वकं पर्युपास्तयः -]

§ ३. श्रीजिनोदयसूरयः-पं० तेजःकीर्त्तिगणि-पं० हर्षचन्द्रगणि-भद्रशीलमुनि-पण्डित-
ज्ञानकलशमुनि-धर्मचन्द्रमुनि-मेरुनन्दनमुनि-मुनितिलकमुनि-ज्ञाननन्दनमुनि-सागरचन्द्र-
मुनिप्रमुखैरदोषाकरैरपि दोषाकरमुखैः, प्रकाशग्रहपुत्रैरपि न प्रकाशग्रहपुत्रैः, अकलाकेलि-
मुखैरपि कलाकेलिसुखैः, सद्द्वेषयुषैरपि अद्वेषयुषैः, स्निग्धदुग्धोदधिधवलविलोललहरीप्रवा-
हचलाचलबलक्षपक्षयामलजामलखच्छातुच्छच्छायारञ्जोलिसमाच्छादितसन्मानसैः श्री-
राजमरालैरिव, अनवरतपापत्रयमानसुललितवर्णावलिग्रन्थसार्थमधुरध्वनिसुधावतारतारझ-
ङ्काररवप्रीणिताशेषभविकसारङ्गैर्भृङ्गैरिव, अमन्दज्ञानमकरन्दसन्दोहबिन्दुलोलुपैर्मुनिवरनि-
करैर्वरिवस्यमानकोमलाङ्गुलिदलावलिपेशलमञ्जुलचलननलिनयुगलप्रबलकलिमलक्षालनज-
लोपमपर्युपास्तयः ॥ ५ ॥

*

[अथ पत्रप्रेषणीयस्थानभूत-अयोध्यापुरीवर्णनम् -]

§ ४. 'क्षेत्रार्द्धनाभिमभिसंस्थितिमादधाना, पुण्यात्मभिः प्रतिदिनं परिचिन्त्यमाना ।
उद्द्योतरूपरमयाऽप्रतिभासमाना, या वर्ण्यतेऽत्र भुवि कुण्डलिनीसमाना ॥ १७ ॥
खण्डेन्दुसुन्दरललाटतेने पुण्य, कृत्यावृत्तेन जगतः स्थितिकारकेण ।
कैलाशभूमिरिव पूर्वमुमान्वितेन, याऽलङ्कृता भगवता वृषभध्वजेन ॥ १८ ॥
उल्लासिकान्तिगुणगुम्फितवैबुधाली, लोलन्मनःसुरमणीरमणीयमध्या ।
सन्तानतानसुखमास्पृहणीयवासा, या शाङ्गला शुभति मन्दरकन्दरेव ॥ १९ ॥
उत्केर्तकप्रियतमाणि 'सचित्रकाणि, छायाविभाजनकरञ्जकवालकानि ।
उत्कम्पपक्षमलतनुप्रवयोऽङ्कितानि, राजन्ति यत्र भवनानि वनोपमानि ॥ २० ॥
आलिङ्गितानि लहरीभ्य 'इवासकण्ठं, दृष्टिभ्रमान्मकरकम्पितनीरपूरात् ।
हंसोच्चयान्मधुरभाषितसद्गताऽन्य, भ्यस्यन्ति यत्र सरयूसरितस्तरुण्यः ॥ २१ ॥
यत्रोपकण्ठसरयूतटपट्टकेषु, मुक्ताल्लिचूर्णतनुवालुकयाऽङ्कितेषु ।
मन्द्रं ध्वनन्त इव सुकमकैर्लिखन्तो, 'लेखाः पठन्ति सुगमं किल हंसवालाः ॥ २२ ॥

किं बहुना -

विद्याविनोदचतुरं चतुरम्बुराशि, प्रोलासि कीर्त्तिमधुरं मधुरञ्जि वाचम् ।

यस्यामुदारचरितं चरितं गुणेषु, कृत्वा जनं विधिकरोऽधिकरोचिराप ॥ २३ ॥

१ प्रकाशेन सूर्यैः । २ प्रकटकदाग्रहग्रहैः । ३ कामकेलि । ४ प्रधानवेषैः । ५ अथ श्रीअयोध्यापुरीवर्णनम् । ६ पुण्य-
कृत्येनावृत्तः-पुण्या चासौ कृत्तिश्चर्म तदावृत्तेन । ७ पक्षे-कारकेण=विनाशकेन 'कृ मृ शृस् हिंसायाम्' । ८ उमा=गौरीकान्ति-
कीर्त्तिप्रमुखाश्च । ९ वृषभध्वजेन=ऋषभेण ईश्वरेण वा । १० विस्तार । ११ उद्गताः केतकाः तैः; पक्षे-उत्का=उत्सुका अत एव
इतका=आगताः प्रियतमाः=प्रिया यत्र । १२ चित्रसहितानि; पक्षे चित्राः=श्रापदविशेषाः । १३ छाया=शोभा, विभा=कान्तिः,
ताभ्यां जनकानां=पितृणां रञ्जका बालका यत्र; पक्षे-छायाविभाजनानि, करञ्जका=वृक्षविशेषाः, बालकानि=हीवेरा यत्र ।
१४ प्रवयसो=वृद्धाः, प्रकृष्टाः पक्षिणश्च तैः । १५ ज्ञानार्थो वा । १६ चूर्णवत् तनु सूक्ष्मा इत्यर्थः । १७ रेखाः । १८ सुष्ठु
गमनम् । १९ गुणेषु चरितं-प्रसिद्धम्, अथ-'च' इति पृथक् गुणेषु रितं=प्राप्तम् 'रिं पिं तु गतौ' ।

अपि च -

श्रीसूर्यवामकमलोदयकौरिपादा, दोषान्धकारहरणा विहितप्रसादाः ।

पुण्यार्थिभिर्मुनिजनैरभिनन्द्यमाना, यस्यां दिवीव पथमाशु पवित्रयन्ति ॥ २४ ॥

तस्याम् - अपारसंसारपारावारतारणतरणडावतारश्रीमदार्हतागमपरम्परायामिव महा-
गमव्यवहारमनोहरायाम्, बौद्धदर्शनानुरक्तजनतायामिव सुगतचरणन्यासप्रलोभितमा-
चपलेक्षणायाम्, अक्षपादप्रवादभक्तप्रजायामिव शिवमार्गानुध्यानतत्परायाम्, कौपिल-
स्थापनायामिव सकलकर्मसाधनालङ्कर्मणिप्रकृतिप्रधानायाम्, जैमिनीयसमयसावधान-
परिपाठायामिव बहुवेदनया मुक्तमानवायाम्, सरोवरासन्नसरसरसायामिव सारसहिता-
म्, समस्तमहीरुहसारसहकारलतायामिव पुंस्कोकिलसेवितायाम्, महीधरविपुलमेखलाया-
म्, नानारामाभिरामायाम्, विन्ध्याटव्यामिव कान्तारसाकुलपुरुषायाम्, चिन्तातुरमनु-
मानसवृत्ताविव बहुलोहकारप्रकारायाम्, अलकायामिव धनदविराजमानायाम्, त्रिपथगा-
यामिव सुरवशालिजनावगाह्यमानसपद्मरसभङ्गायामपि धनवाहनाश्रितायामपि वन-
लिपदशोभितायामपि शिवाविरोधिन्यामपि विप्रकृतजलप्रवेशायामपि सच्छायहिमा-
जातायामपि तारणतीर्थसमन्वितायामपि भुवनत्रयविसारिकीर्त्तिनिर्मलप्रवाहायामपि
नीरसहितायाम्, रेवातरङ्गवत्यामिव नानागजातिरुचिरपरिसरायामपि न कदापि दानर-
त्तगन्धायाम्, बहुलवनमालायामिव हरिविनिर्मितायामपि न कन्दलाकुलायाम्, प्रसृम-
नपवनान्दोलितोपान्तवर्त्तिवनतरुलतावितानसमुद्गीनविलोलरोलम्बनिकुरम्बवदनकन्दर-
वृत्वरकलकोलाहलव्याजेन वनदेवताभिरपि जेगीयमानवसुन्धरावलयालङ्कारसमग्राग्रि-
णामग्रामनिगमसुन्दरेन्दिरास्पद्भिर्वर्द्धमानशोभासंभारसमर्जितरजनीजानिमण्डलोज्ज्वल-
त्तिकलापायाम्, गगनाङ्गणाग्रलग्नविसारिशिखाविसरशिखरिशिखरोन्मिषत्कुसुमस्तवक-
षेण समानश्रिया विमानश्रिया सहितां पुरन्दरपुरीमुन्नमय्य सुखं हसन्त्यामिव बहुवि-
लाकुलसङ्कलनराकाविभावर्था महेश्वरमानसाह्लादनगौर्याम्, सौववासप्रकाशविडम्बि-
स्तूर्याम्, आसमुद्ररत्नगर्भाधिष्ठातृसूर्या श्री अ यो ध्या पु र्या म् ॥ ५ ॥

*

[अयोध्यापुरीस्थितसूरिवराणां तदन्तेवासिमुनिगणानां च वर्णनम् -]

“नित्यं वृत्तगुणप्रकाशनकृता नक्तंदिवा श्रीभृता, मैत्रालोकनजातसंमदवता येषां मुखेन ध्रुवम् ।

एष श्वेतरुचिर्विनिर्जित इति स्फारांशुजालच्छला, ह्लात्वाऽऽस्येन तृणालिमेत्य कुरुते शून्ये दिनातिक्रमम् ॥१५॥

१ सूरिणां पादाः; पक्षे - सूर्यपादाः । २ कर्त्तारः । ३ पक्षे - मुनयो वालिखेल्याः । ४ नैगमो = नयविशेषः; पक्षे - नैगमा =
जस्तेषां व्यवहारस्तेन । ५ सुगतो = देवविशेषः; पक्षे - सुगतं = शोभनगमनम् । ६ चपलेक्षणा नार्यः; पक्षे - चपलानि हँक्षणाणि ।
याधिकलोक । ७ साङ्ख्यमतस्थापना । ८ सारसानां हिता, सारेण सहिता वा । ९ आराम, रामाः = स्त्रियः । १० शोभनो
सुरवस्तेन शालिनो जना इत्यादि; पक्षे - सुराणां वशालि जन स्त्रीपरम्परा लोक इत्यादि । ११ सह पद्मया वर्त्तन्ते एवंविधा
ताः शृङ्गारादयः; सकमलं रसः = पानीयम्, इत्यादि । १२ पक्षे - इन्द्रः । १३ वनमाली = नारायणस्तस्य पदस्तत्र शोभिः;
ने मालन्ते एवंविधानि पदानि = स्थानानि तैः शोभिः । १४ गौरी । १५ विप्रकृतो = निराकृतो जडप्रवेशो यस्यां नगर्याः;
पक्षे - विप्रैः = ब्राह्मणैः कृतो जले = पानीये प्रवेशो यस्याम् । १६ हिमाः = शीतलाः आलया = गृहाणि । १७ नानाङ्गानां = वृक्षाणां
यस्ताभिः; रेवापक्षे - गजैरतिरुचिरः परिसरो यस्याः । १८ पक्षे - मदजलं । १९ हरयो = वानराः, वयः = पक्षिणः; पक्षे -
न्द्रः । २० अथ श्रीआचार्यमिश्राणां मुनीनां च वर्णना ।

सच्चक्रे विधुरेति जातकरुणं पक्षोदये श्रीचणं, पूर्वे दुःखिनि निर्दयेन कनता^१ पक्षावसानेऽधिकम् ।
 येषामाननमिन्दुना तुल्यतामेषां कवीनाममी, दोषज्ञा वितरन्ति हन्त ! निपतद्धीनोपमानोद्भवम् ॥ २६ ॥
 एणं केचन वर्णयन्ति विबुधाः शंसन्ति चैके शशं, केऽपि प्रोषितबलभावधमवं पङ्कं कवन्ते^२ विधौ ।
 मन्येऽहं तु न तानि किन्तु यदसौ^३ चक्रे यदास्यश्रिया, संस्पृष्टा^४ च तया जितस्तदयशो मूर्त्तं निदेधीयते ॥ २७ ॥
 जाने चिह्नमिषादवेक्ष्य विवरादस्माद् विधोर्मण्डलाद्, धाता यद्वदनं विधातुमखिलं जग्राह सारं खलु ।
 येनाद्यापि तया रूपाऽस्य^५ सदनं क्लिश्नाति पादैः सदा, नित्यं चैष तदाप्तये^६ सुरगिरिं सारास्पदं सेवते ॥ २८ ॥
 एते केऽप्यवतेरुत्र भुवने नव्याः समुद्रा अहो !, येभ्यो हन्त^७ सरस्वतीयमतुला रङ्गद्रसोर्म्युज्ज्वला ।
 निःसृत्योच्चतरे क्षमाधरभरे^८ चक्रिः समारोहणं, सद्यस्तं च भिदेलिमं प्रकुस्ते दुर्भेदमप्यन्तरा ॥ २९ ॥
 भास्वद्भाग्यरमाः प्रमाणरहिता^९ येषां पुनर्नो गिरैः, कीर्त्तिर्येषु निरर्गला नहि पुनश्चित्स्थितिस्तादृशी ।
 यत्पादद्वितयी सदा गुंरुमहादेशाक्रमे विक्रमं, धत्ते नो रसना^{१०} तथा परमहो ! येषामपूर्वा स्थितिः ॥ ३० ॥
 तापं चन्दनयूष एष हरते सोऽयं न माधुर्यभाग्, मिष्टश्चेक्षुरसो भवेत् परमसौ वैरस्यमेति क्षणात् ।
 पीयूषस्य न दध्महे श्रुतिपथख्यातस्य वाञ्छामपि, ब्रूथानेकगुणं यदीयवचनं केनोपमेयं ददे ॥ ३१ ॥
 वारुण्या दिश उत्थितैर्धनपथं चङ्गम्यमाणैः क्रमात्, प्रौढोद्द्योतभरैरपि प्रणयिनां नेत्रैः सुखालोकितैः ।
 कुर्वणैः कुमुदालिकेलिकमलां संजातनित्योदयै, यैर्वा^{११} पूर्वदिनेश्वरैः प्रथमिका पादैः ककुब् भूष्यते ॥ ३२ ॥

तान् - श्रीसूरिपदपदवीकादम्बकुटुम्बिनीक्रीडातडागावतारशरीरान्, जननयनमेदुरा-
 मन्दमहानन्दकन्दकन्दलनालङ्कर्मणाक्षीणागण्यपुण्यलावण्यरसराशिकरीरान्, अजीर्णा-
 र्ज्ञानमदप्रवाहगह्वरितदुर्वारप्रचारवादिदृन्दोद्दामस्तम्बेरमनिरर्गलसकलजीवमानसोत्पिञ्जल-
 भावोद्भाविगम्भीरगर्जनसन्तर्जनप्रबलकरीरान्, अविरतविततचित्तकुहरवितन्तन्यमानप्या-
 नध्यानसन्धानविधानाध्यामधामधामैज्वलज्वालाकुलज्वलनज्वालितमनोऽरण्यवासिकषाय-
 वृक्षकोटरान्, अहर्निशपेपीय्यमानविविधजिनवचनरचनाविशुद्धसुधारसधारोद्गारनिरस्तवि-
 षमपरिणामगरलाकुलितजगन्नयजनचयदुर्जयमहारागोरगलहरीभरान्, आजन्मजातविष्टप-
 त्रयविख्यातदुर्निरोधपरस्परविरोधबाधाविबाधितसहवासिकमलासनाक्रोशनिदेशादिव मु-
 क्तकलहं श्रीश्रीशारदानिवाससदनीकृतवदनमण्डलान्, विश्वविस्मयविधायिभाग्येन्दिरासु-
 न्दरीर्तलमीकृतनेमिसुधाकराकारविपुलभालस्थलान्, सिद्धिमधुकरीकेलिकमलायितकरतलान्,
 अनवद्यविद्यामकरन्दाखादलिप्सावशीभूतविनेयजनमधुकरनिकरकोलाहलविलीनप्रमीलल-
 क्ष्मीकचलननलिनदलान्, स्पृहणीयसौभाग्यकलान्, कमलदलमृदुलधवलपृथुलप्रच्छदपटा-
 निव सर्वगुणमयमूर्त्तीन्, समस्तमुनिमौलिमालावलीबन्धमानपदद्वयमहोव्रतिन इव मथित-
 मन्मथमहास्फूर्तीन्, सकलविटपिकोटीरसुरतरुनिव पदतलललितसुललितविनयकलितान्त-

१ दीप्यमानेन । २ 'उड् कुड् खुड् गुड् घुड् डुड् शब्दे' धातुः । ३ विधुः । ४ अस्य = धातुः, सदनं = गृहं कमलरूपम् ।
 ५ सारप्राप्तये । ६ सम्बोधने । ७ पर्वतसमूहे, अथ च मुनिनिकरे । ८ इत्यतथा रहिता । ९ गिरो न प्रमाणतर्करहिताः ।
 १० गुरुषु महादेशेषु आक्रमणं = विहारस्तत्र । ११ रसना = जिह्वा तत्पक्षे गुरुणां यो महादेशो - महीयसी आज्ञा तदाक्रमणे लङ्घने
 इत्यादि । १२ शास्त्रमार्गेष्वेव विश्रुतस्य; अथवा कर्णेष्वेव श्रूयते न प्रत्यक्षं केनापि दृश्यते । १३ कथयत भो पण्डिताः !
 यूयम् । १४ पश्चिमाया अन्यः, सूर्यो हि पूर्वदिश उत्तिष्ठति अत एव चित्रम् । १५ वा - इवार्थे, यैरपूर्वदिनेश्वरैरिव । १६ राजहंसी ।
 १७ कुम्भान् । १८ आकुलता । १९ सिद्धान् । २० निरन्तरम् । २१ अविध्यातदीप्तिगृह । २२ तलमं = शय्या । २३ अर्द्ध-
 चन्द्रावतार । २४ गुणा औदार्यादयः; पक्षे - तन्तवः । २५ ईश्वरानिव ।

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

वासिविबुधधोरणीयायाच्यमानपरमरसकलविशालफलपोपुष्यमाणपूर्त्तिन्, सुस्निग्धाञ्जन-
घनद्युतिकलधूतकषपट्टानिव दर्शितवर्णनीयसुवर्णवर्णोत्कर्षान्, वार्षिकबलाहकानिव लोलू-
यितविनीतचातकोत्करभूरितर्षान्, सद्युपदेशराशिसितारससारणीपानप्रदानसम्पादितभ-
वदवभवसन्तापविधुरजीवलोकहर्षान्, निजदर्शनेन्दुद्युतिनिर्मितसज्जननयनेन्दुकान्तामृतव-
र्षान्, सुजात्यसमदद्विरदरदविशदशारदजलदसितेन्दीवरकुमुदकुन्ददलकदलीस्तम्भच्छेद-
विमलविशालस्फाटिकशिलावाससप्रकाशकैलाशवसन्तमासजातोल्हासकुसमहासकाशवि-
काशखटिकाखण्डडिण्डीरपिण्डपाण्डुरपुण्डरीकमण्डलबहलक्षीरोदधिलहरिमालोज्ज्वालप्रत्य-
ग्रनीरहीरशरीरविस्तारभूतिवारसारघनसारतुषारधरतुषारकरकरनिकरतारतारमुक्ताहारगौर-
यशःपूरपरिपूरितनिरन्तरकुक्षीकृतजगज्जननब्रह्माण्डभाण्डोदरान्; किं बहुना-

अपि समधिगतश्रुताधिदेवीवरकविकुण्ठितशेमुषीविलास, -

त्रिभुवनजनताश्रवोऽवतंसीकृतगुणसुन्दरपल्लवावलीकान् ॥ ३३ ॥

अपि च -

रविकिरणमितानि तुष्टवाचां, यदि वदनानि भवन्ति कोविदानाम् ।

तदपि न 'संहिताम्बुराशिपाथः', - कणगणनाधिकसङ्गुणप्रशंसान् ॥ ३४ ॥

आनन्दकन्दलविलासनचैत्रमासान्, श्रीसूरिमग्नकमलाकलकेलिवासान् ।

श्रीपूर्वलोकहितसूरितभीविहारान्, श्रीपूर्वलोकहितसूरिवरान् सुसारान् ॥ ३५ ॥

उद्दामकामरसरङ्गतरङ्गभङ्गी, भङ्गार्पिजैनवचनाचलचूलसङ्गी ।

शुद्धक्रियाप्रकरसाधनधातुरम्यः, पुण्यप्रधानगणिरेश मदैरगम्यः ॥ ३६ ॥

प्रातिभप्रवरदर्पणबिम्ब, प्रेक्षितार्थनिचयप्रतिबिम्बः ।

मेखन्मथितशास्त्रसमुद्रः, शोभतेऽत्र गणिरत्नसमुद्रः ॥ ३७ ॥

सौहृदय्यरसचङ्गतरङ्गै, रयस्य मानसमपूरि सदैव ।

सैष नित्यसुभगास्यसरोजो, राजमेखुनिरत्र विभाति ॥ ३८ ॥

क्षीरनीरधवला अपि चित्तं, रञ्जयन्ति वत यस्य गुणौघाः ।

अस्तिवाङ्मयसुधारसकुम्भः, स्वर्णमेखुनिरेशविदम्भः ॥ ३९ ॥

इत्येवमादिभिः - विशिष्टशिष्टसमाचीर्णजीर्णचारुचारित्रपवित्रगात्रैः, साधुसाधुप्रगुण-
गुणमणिगणपात्रैः, महाजडिमजडराशिपरतारसमङ्गीकाराय समाश्रितगुरुचरणसधरयान-
पात्रैः, संसारचारकसञ्चारप्रकारकारकातिचारवारशष्पसंभारलूनिसारदात्रैः, वांहीकान्तर-
शुद्धिविधानसाधीयः पुण्यनिमित्तरचिततीर्थयात्रैः, ऐहिकामुष्मिकप्रथीयोऽर्थसार्थविवेचन-
समर्थबन्धुरबुद्धिमात्रैः, श्रीभागवतप्रणीतशुभमयसमयसारसम्भारसङ्ग्रहनिर्विग्रहाध्ययन-
विधानप्रधानच्छात्रैः, सौवसुवर्णक्षमाप्रमोदितविबुधमण्डलांश्रामीकराचलानिव अतुच्छ-

१ मेघानिव । २ शर्करारसकुल्या । ३ रविकिरणमितानि = सहस्रसङ्ख्यानि । ४ तुष्टा वाक् = सरस्वती येषाम् । ५ मिलिता ।
६ पूर्वलोकानां हितं सूते स तथा, रिता = गता भीर्यस्मात्, एवं प्रकारो विहारो येषाम् । ७ 'तदपि न विश्वसिमो वयं विधातुः,
विधिविलसितं रसातलं यातु' ८ 'दिक्शब्दात्तीरस्य तारः' इति तारादेशः । ९ नवतृणविशेषः । १० बहिर्भावा बाहीका
'बहिष्पीकण् च' । ११ भगवतां समूहो वा ।

खच्छपिच्छलच्छायागुच्छमनोरमैर्गीर्वाणद्रुमैः, सद्रुमानिव दिग्व्यापिभिः शिखि(ख?)रचयैः,
शिखरचयानिव निजगुणवासविकासखवशीकृतसदालिपुष्पप्रकरैः, पुष्पप्रकरानिव संजाता-
वदातपुण्यसमुदयैर्भोगपुरन्दरैः, पुरन्दरानिव सकलदिग्वलयविलासिविमलयशःप्रतापजा-
लैर्लोकपालैः, लोकपालानिव सदा समुदायकीर्त्तनीयकीर्त्तिघटैर्विक्रमाक्रान्तविश्वम्भरातटैः
प्रसिद्धसुभटैः, वन्दारुनरनिकरदारिद्र्यव्रणरोहणान् रोहणानिव विज्जलनिजतेजःपुञ्जोज्ज्वालि-
तरसारामै रम्यरत्नग्रामैः, भास्वरभास्करानिव विहितविष्टपस्तोमैर्गभस्तिस्तोमैः, रोहिणीरम-
णानिव शुभराशिवासचणैर्ग्रहगणैः, दानशौण्डानिव सदर्थप्रार्थनानिपुणैर्विचक्षणमार्गणैः,
अश्रान्तकान्तनितान्तगतान्तशान्तरसोल्लोललोलितचित्तैः, संगृहीतनिर्णीतकुगतिपातवि-
घातप्रभविष्णुतपोवित्तैः, महागहनरूपारोपितविषादप्रमादोद्यानदलनकुञ्जरैः, सुविहितय-
तिकुञ्जरैः सेव्यमानान् ॥ ५ ॥

*

[पत्रप्रेषकसूरिकृतवन्दनावर्णनम् -]

§ ६. सादरं सबहुमानं सावधानं सैकतानं ससन्मानं सप्रीतिदानं साञ्जसं सोल्लासं सलो-
चनविकासं सप्रेमप्रकाशं सशरीरायासं सहर्षं सतर्षं सानन्दासु(श्रु)वर्षं सहृदयकर्षं परि-
गलितामर्षं सप्रणयं सनयं प्राप्तसदयं मानितमानसदयं चिन्तितश्रीमद्गुणलयं प्रसारितशैथं
सोदीरिताह्वयं संजाताद्वैतमयं विस्मेरितेन्द्रियचयं अवगणितस्मयं अङ्गीकृतविस्मयं स्फुरिता-
ङ्गनिचयं नर्तितभावह्वयं आश्रितसर्वप्रकारतन्मयम्;—श्रीप्राचिकाचार्यनिर्णीतनीतिमार्गनि-
पुणैः, निःशेषसुरासुरकिन्नरनरनवरमुनिवरविसरर्वराङ्गपरम्परारुचिभरभासुरहीरकर्मीरि-
तकोरकितकिरत्कार्तस्वरसरलकरजालविशालशिखरश्रेणिरमणीयकोटीरायमाणसप्रमाणश्री-
मदाज्ञागुणैः, श्रीजिनागमसारविचारविस्तारप्रगलिभतप्रज्ञाप्राग्भारसमवधारितकरमणीय-
प्रकारैः, विशुद्धबुद्धिबोधितविविधविधेयरोचिष्णुविधिज्ञविज्ञजनहृदयस्थलविभूषणविपुलगु-
णहारैः, निजसन्तानसुखविधानवाञ्छाखच्छतया संस्थापिताविच्छेदिमर्यादावारैः, समस्त-
संसारसारखर्गापवर्गावसानसुखनिदानपुण्यपुण्यप्रकारप्रथमाधारपरोपकारराजमरालकेलि-
सरोवरैः, आच्छादितजगज्जङ्गलधवलकीर्त्तिजालरणस्रणायमानदोषषट्चरणपद्मसर्वानर्थ-
मूलच्छद्मगुच्छर्तापिच्छोच्छेदनतीक्ष्णकुठारावतारवाणिविस्तारैः, नरकपुरप्रापणप्रवणवाह-
नायमानदुर्मदमदद्विरदविदारणसमदपञ्चवदनैः, प्रवर्द्धमानप्रोच्छलत्स्निग्धमुग्धदुग्धोदधि-
लहरिमालाविमलितपार्वणरोहिणीरमणमण्डलशोभालुण्टाकवदनैः, अभङ्गुरभाग्यसौभाग्य-
भङ्गीपराभूतभूतलाह्यमदनैः, महीवलयमहनीयाहीनमहामहिमासदनैः, विष्टपप्रतिष्ठिता-
ख्यानव्याख्यानावसरविसारिशारदीनसुधाकरकौमुदीकन्दलानुकारिसरसवागविलासगम्भी-
रधीरमहारवाधरितभद्राम्भोधरमधुरबन्धुरनादैः, प्रदलितप्रहृष्टाणिविषादैः, प्रणतभविक्लो-
कविहितप्रभूतप्रसादैः, परमब्रह्मदिदृक्षुमुमुक्षुलक्षसमाश्रयणीयपादैः, सन्तापनिर्वापच्छाया-
तरुभिः, शुचिकुलक्रमायातश्रीपूर्वगुरुभिरुपदिष्टां सज्जनमनोऽतिमिष्टां समानन्दितसमग्र-
शिष्टां अगण्यगुणगणनापरम्परास्पृष्टां नीतिरीतिकुशलजनमानसाभिनिविष्टां परमाह्लाद-
चन्दनरसोर्मिसंघृष्टां परमसौभाग्यभावनासृष्टां गुरुजनविधीयमानगुरुसङ्गमावसरानुरूप-

१ पिच्छल । २ स्तोमः = श्लाघा । ३ मरीचिसमूहैः । ४ दानशौण्डो = बहुप्रदः । ५ हस्त । ६ अहङ्कार । ७ तुरग ।
४ मस्तक । ९ पृथग्विशेषणम् । १० द्वितीयं विशेषणम् । ११ तृतीयम् । १२ तमाल ।

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

क्रेयोपक्रमोत्कृष्टां स्पृहणीयप्रणयनिर्यासामृष्टां तान्विकपुण्यरागनवमञ्जिष्टाम्, व्यञ्जित-
गाननीयजनानुवृत्तिं सौजन्यभावभव्यरूपकचित्रसमुचितभित्तिं अप्रतिपातिविच्छित्तिं
प्रीतिपतिं पुरःसरीं, निर्मेमीय्य, वावचन्तेतराम् ॥ ५ ॥

*

[अथ कार्यनिर्देशसूचनम् -]

§ ७. ज्यायसां श्रेयसां श्रेणय इह श्रीदेवगुरुगुरुचरणसुरभूरुहप्ररोहिमहाप्रासादात्, प्रभूत-
भूतवासरराशिमारभ्य हृदयान्तर्धार्य वाचिकशतैरप्यहार्य सभासदां समक्षं विस्तार्य
तय चैतत् समाशेआयीत् ॥ ५ ॥

*

[अथागतविज्ञप्तिवर्णनाप्रकाराः -]

§ ८. धवलजादराम्बरसंव्यानपटीव प्रणतजनसारदायाः श्रीशारदायाः, प्रतिकलं विलास-
य्येव समस्तजगतीगतवस्तुगुणविमलायाः श्रीकमलायाः, विशुद्धसुधापङ्कधवलितविशा-
रङ्गशालाङ्गणभूमिरिव प्रेङ्खत्तनुमनोज्ञावयवविन्यासप्रोल्लासितप्रेक्षकेक्षणश्रेणिकायाः सल्लि-
नर्त्तकाः, क्रीडापताकिकेव गुणिजनमनोमोहकर्याः सौभाग्यश्रीसुन्दर्याः, पृथुलविशद-
सादवलभिरिव निखिलकलाकुशलकविकुलमनोरथपत्ररथमालाखेलानाम्, कमलाकरबह-
जलावरणविस्तारमालिकमलिनीविपुलदलपालिरिव अखिलपौरनरनारीनयनचञ्चलचञ्चरीक-
करपरिहासरसानाम्, निस्त्रासस्फाटिकाचलनिर्मलशिलामयासनचतुष्पिकेव सकलावि-
लसहृदयहृदयकुहरवासिन्याः श्रीविद्याविलासिन्याः, श्यामलसुवर्णमृगमदपङ्कपत्रवल्ल-
विभूषिता पेशलकपोलपालीव लेखकमुमुक्षुप्रगल्भप्रतिभाभामिन्याः, श्रीतिलकमञ्जरीक-
व रुचिराक्षरपरम्परान्यासविचित्रसमासनिरन्तरोद्दण्डाखण्डण्डकहृद्यानवद्यगद्यबन्धा,
मयन्तीचम्पूकथापद्धतिरिव विषमावताराष्ट्रप्रकारनवनवोल्लेखव्यक्तश्लेषविशेषवन्दनीयम-
रसमधुरगद्यपद्यादिरचनाचातुरीरुचिरा, कालिन्दीनदीव मलिनाम्बुकल्लोलतरङ्गिता सुभा-
ननया च, प्रतापिपृथिवीप्रभुप्रभूतपताकिनीव लब्धवर्णवर्णनीयबहुलरर्णप्रयोगा प्रेङ्खत्प-
वेन्यासवाहां च, कुमुदबान्धवकौमुदीव समानन्दितसच्चकोरा गलितकलङ्का च, निजाग-
पुण्यलावण्यलहरीसमाच्छोटितविदग्धस्निग्धमानससरोजरममाणमनोज्ञमनोरथविलोल-
लम्बमाला यौवनमदमेदुराङ्गरुचिर्मृगलोचनेव, सकलकलादक्षणाविचक्षणलक्षेक्षणक्षीरो-
धिसमुद्दर्षणक्षणादक्षणादाहरिणलक्षणसलक्षणलक्षणशास्त्राक्षीणशेमुषीककोविदशिरःको-
रहीरेण, अनाहतप्रतिभहितसुविहितसाहित्यसन्ततिलताविततिवेल्लत्कवित्वपल्लवगुम्फा-
रामदामशृङ्गारिताकुण्ठकण्ठकन्दलेन, प्रगल्भसभाप्रभावितप्रमाणाप्रमाणवितर्ककर्कशा-
हप्रमाणग्रन्थग्रथितप्रज्ञाप्राग्भारेण, विश्ववल्लभसौभाग्यसुभगभावुकब्राह्मीस्निग्धेन
ण्डितवररत्नसमुद्रमुनिना विरञ्चिनेव सरीसृजिता सुललितवचनवृत्तमुखश्रीका सल्लावण्ये-

१ अथाऽऽगतविज्ञप्तिवर्णनप्रकाराः । २ उत्तरीय । ३ सारं ददाति । ४ पक्षि । ५ क्रीडानाम् । ६ मलिनाम्बु = मयी
ति । ७ सुकान्तिः, नुतनया = स्तुतनया । ८ रकार-लकार-णकार । ९ वाहाः = तुरङ्गाः; विज्ञप्तिपक्षे - प्रेङ्खत्पदविन्यासानां
तो यस्याम् । १० सरस्वती । ११ अथ मृगलोचनाया विज्ञप्तिश्च श्लेषेन साम्यविशेषणानि । नायिकापक्षे - सुललितवचनावृत्तमुख-
यस्याः सा; सुललितवचनैवृत्तैर्मुखे श्रीर्यस्या विज्ञप्तिः । १२ सल्लावण्ये ईक्षणे = नेत्रे यस्याः, सल्लावण्यम् ईक्षणं यस्याः ।

क्षणा विपुलश्रवणा वर्णनीयकपोला पृथुकागलाभिरामा परमाधरा अमलकरा गम्भीरस्त-
नघटा मोहभावहृदया सरलकायनाभिरम्या सुगमक्रमा बहुलालङ्कारालङ्कृता प्रगुणगुणग-
णचणा दूरीभूतदूषणा प्रियच्छन्दोऽनुवर्तिनी अर्हणीयरीतिः^१ आकल्पकीर्त्तनीया नित्यमुदारा
च । किं बहुना -

भवति गगनमेतत्ताराभरोचि-र्यदि गगनरुचः स्युस्तारकाः सर्व एते ।

हिमकरविशदायाः कृष्णवर्णाङ्कितायाः, फलति खलु तदाऽस्यास्तुत्यरूपोपमानम् ॥ ४० ॥

मकरपवनहेलोलालनाऽभावहेतोः^२ स्तिमितजलतरङ्गं सर्वदा लक्ष्मिचङ्गम् ।

विकचकुवलयालीमण्डितं चेत् सरः स्यात्, फलति खलु तदाऽस्यास्तुत्यरूपोपमानम् ॥ ४१ ॥

विहितसुकृतराशेः कस्यचिद्भूमिभर्तु-र्भवति भवनभित्तिर्निर्मिता चन्द्रकान्तैः ।

यदि नवयुवतीनां लोचनैर्वीक्ष्यमाणा, फलति खलु तदाऽस्यास्तुत्यरूपोपमानम् ॥ ४२ ॥

क्वचिदपि यदि भूमी रोहणोर्वीधरस्य, स्फटिकमणिमयी स्यात् तत्र कौली क्रमेण ।

प्रसरति यदि सदैर्दूररत्नाङ्कुराली, फलति खलु तदाऽस्यास्तुत्यरूपोपमानम् ॥ ४३ ॥

एवंविधस्निग्धबुद्धिधोरणीसमुत्पाद्योत्पाद्योपमाद्यनेकालङ्कारावलीप्रसाधितवचनरचना-
रमणीया, सुगन्धिगन्धवाहप्रवाहप्रेङ्खोलनदिगन्तराकृष्टचञ्चलचञ्चरीककुटुम्बिनीव नवकेतक-
कुसुमम्, समस्तजनतानेत्रकुवलयोल्लासनपटुप्रतिपन्निशारत्नलेखेव पूर्वदिक्कामिनीवदनम-
ण्डलम्, बलक्षकटाक्षविक्षेपक्षोभितगीर्वाणवाणिनीव कामुककविहृदयस्थलम्, प्रभातप्रस्तावे
महत्तमतमोमण्डलविदलनपेशलसहस्ररश्मिरश्मिराजिरिव विकसत्पङ्केरुहकुहरम्, वाङ्म-
यसन्ततिरिव सङ्ख्यानधोरणीसमाराधितश्रीसरस्वतीवितीर्णप्रवरवरकवीश्वरवदनकन्दरम्,
स्वेच्छापरिश्रान्तमहावनगहनारण्यतडागतरङ्गवतीजलस्थलबहलमार्गपरिश्रमखिन्नसिंहीव
पिच्छलच्छायाश्रयणीयतमहिमगिरिगहरम्, सायंसमयकुशेशयनिचयप्रस्थितलक्ष्मीरिव सु-
धाकरमध्यम्; श्रीखरतरगच्छातुच्छस्वच्छसुधाधवलप्रांशुप्रासादावष्टम्भमहास्तम्भायमानैः,
अनवरतवितेतीर्यमाणप्रमाणसप्रमाणविनमद्विनेयजनमहाविद्याधनदानैः, निरन्तरदेधीय-
मानापमानितसुधारसपानश्रीसूरिमन्त्रपवित्रप्यानध्यानैः, प्रत्यक्षोपलभ्यमानप्रधानगुणस-
हस्रैः श्रीमदाराध्यमिश्रैः प्रजेधीयिता, नभसि मासि लिखिता, सुवर्णघटिता, श्रीनामधेया-

१ विपुलौ श्रवणौ = कर्णौ यस्याः स्त्रियः, पक्षे-विपुलं = प्रलम्बं श्रवणं = आकर्णनं यस्याः सा । २ वर्णनीयौ कपोलौ यस्या वशायाः, अन्यपक्षे-वर्णनीयस्य कस्य = ज्ञानादेः पोलो = महत्त्वं यस्यां सा तथा, 'पुल महत्त्वे' धातुः । ३ विज्ञप्तिपक्षे-पृथुना कागलेनाभिरामा तदक्षरसंस्कारः, स्त्रीपक्षे-पृथुका = विस्तीर्णा समचतुरस्रा, तथा गलेन = कण्ठेनाभिरामा च । ४ परमाधरावोद्यौ यस्याः सा, तथा-ऽन्यपक्षे-परां मां = श्रियं धरतीति । ५ अमलौ = निर्मलौ करौ यस्याः सा, अन्यत्र-अमलं कं = सुखं करोतीति । ६ गम्भीरौ स्तनघटौ यस्याः, अन्यत्र-गम्भीराणां स्तनानां = शब्दानां घटा यस्यां सा । ७ स्त्रीपक्षे-मोहभावो हृदये यस्याः सा, अन्यत्र-मोहभावहृद् अयो = लाभो यस्याः सा । ८ सरलेन कायनेन = लेखबन्धनगुणविशेषेण अभिरम्या, पक्षे-सरलकायेन = देहेन नाभिना चाभिरम्या । ९ सुगमः क्रमः = परिपाटी यस्याः सा, स्त्रीपक्षे-सुगमौ = शोभनगमनौ क्रमौ = पादौ यस्याः सा । १० प्रियस्य = भर्तुश्छन्दोऽनुवर्त्तन-शीला । ११ रीतयः-पाञ्चालीप्रभृतयः । १२ आकल्पं कीर्त्तनीया, स्त्रीपक्षे-आकल्पेन वेषेण कीर्त्तनीया । १३ नित्यमुदारातीति नित्यमुदारा स्त्रीः । १४ फलति=निष्पद्यते, 'फल निष्पत्तौ' । १५ निश्चल । १६ कृष्णा । १७ पवन । १८ शोभनवर्णैः = अक्षरैर्घटिता, मुद्रा च सुवर्णेन=काञ्चनेन घटिता ।

ङ्किता, मनोहरमुद्रावचिरकालात् प्रस्फुरितस्कन्धकन्धरम्, कण्टकितप्रकोष्ठपरिसरम्, कुंरुवि-
न्दशोणारविन्ददलबालकिङ्किलिविद्रुमप्रत्यग्रविद्रुमसुकुमारमरीचिमञ्जरीराजिभासुरम्, जि-
घृक्षाविकस्वरीभूतप्रेङ्खदङ्गुलीमालाच्छलेनाभ्युत्थानमिव चेक्रीयमाणम्, प्रसृमरपद्मरागमणि-
गणारुणनखरकरप्रकरव्याजेन मूर्त्तिमन्तं प्रेमरसोद्गारमिव देधीयमाणम्, मृदुलप्रलम्बलक्ष-
णलेखाविशेषलक्षेण प्रौढप्रमोदरसप्रवाहानिवोद्वहन्तम्, महान्तं विकस्वरं परमप्रीतिधरम्,
आस्माकीनकरपञ्जरं मधुरम् ॥ ५ ॥

[विज्ञप्तिलाभेन प्राप्तहर्षोत्कर्षवर्णनम् ।]

§ ९. तदीयलाभेन च वयं समामन्त्रिता रणरणकेन, समाश्रिताः प्रश्रयेण, सुखासिकां
पृष्टाः स्वःश्रेयसेन, आलिङ्गिताः प्रीतिश्रिया, वाचालिताः श्रीमत्कुशलवार्त्तया—‘भोः
१० प्रभवः ! बहुतिथीभ्यस्तिथीभ्यः संस्मारिता वयम्’ इति भणित्वैव प्रमोदाद्भुतरसैः प्रन-
र्त्तिता हृदयेन; ‘पश्यत ! पश्यत ! स्वाभीष्टानां शिष्टसमिष्टसमयवेष्टितानि पुण्यप्रभा-
वनादिशुभचेष्टितानि’ इति दर्शयन्त्येव विज्ञप्तिवाचितस्वरूपपरम्परया, विस्मेरिता नयन-
युगलेन; ‘वत ! वत ! प्राचीनभवाचीर्णाजीर्णमहातपस्यापरिपाकिमप्रादुर्भूतप्रभूतपूताभङ्गुर-
भाग्यसुभगता पुण्यवताम्’ इति वर्णयतेव श्रीमतां महिमामण्डलेन पुलकिताः शरीरेण;
१५ ‘अहो ! अहो ! असमयेऽपि श्रीजिनशासनप्रभावनाप्राग्भारप्रकाशनसाधीयः शक्तिरूप-
चितसुकृतसन्ततीनाम्’ इति ज्ञापयितुं प्रेरयतेव यौष्माकीणारीणधर्मकार्यकरणस्मरणेन;
धूनिता उत्तमाङ्गेन ।

किं बहुना—गर्जद्वाद्रपदोदकमेदुरमहाम्भोधरसमागमेन कलापिकलापा इव, तरलतरल-
मरीचिमालाविमलितककुब्भामिनीलपनपङ्कजराजिविराजमानानर्घ्यमणिमाणिक्यताररज-
२० तकलधूतादिबहुविधधनाकीर्णप्रधानमहानिधानाधिगमेन दानभोगलालसविलासिपुरुषनि-
करा इव, राकारजनीनायकजागरूकप्रग्रहसमूहविलाससम्पर्केण दुग्धोदधिस्लिग्धकल्लोलनि-
वहा इव, अननुभूतपूर्वेण अनाकर्णितपूर्वेण अनवलोकितपूर्वेण अवाचितपूर्वेण अपठितपूर्वेण
अनुपलक्षितपूर्वेण अनभ्यस्तपूर्वेण असंभावितपूर्वेण सर्वाङ्गीणसाप्तपदीनसूचनालङ्कर्मणा-
क्षीणसंमदसमुदयेन प्रगल्भितहृदया अबोभूयिष्महि ।

२५ पुनरपि निःशेषविशेषरत्नराशिमञ्जूषा, अस्मन्मनोमयूरवासयष्टिः, बहुविधमनोरथकिस-
लयविलासलतिका, मार्दवगुणमुनिमनोवृत्तिः, मरुत्पथवीथीव प्रयोगराशीनाम्, राजधानीव
नानार्थसार्थानाम्, क्रीडास्थलीव प्रेक्षकभविकेक्षणहारिहरिणानाम्, सरसीव निर्मलरसल-
हरीणाम्, कषादमशिलेव सुवर्णपरीक्षायाः, प्रशस्तिपट्टिकेव साधुसाधुश्लोकमालायाः, पत्र-
विधिरिव श्रीमन्मानसमध्यभूमिस्थितस्वरूपश्रेणिनिधानकुम्भिकायाः, संमोहनविद्येव मन-
३० खिमानसानाम्, सीमन्तिनीसीमन्तसरणिरिवानुरागसिन्दूरपूरस्य, कदलीस्तम्भगर्भभूमि-
रिव स्वकीयगुणावर्जितसकलजनवारसदाचारधनसारस्य, विद्याधरीवक्षःस्थलीव स्निग्धवैद-
ग्ध्यचारुहारस्य, वेणीव प्रीतिप्रवाहस्य, सा अस्माकं सकलश्रीसङ्घसमन्वितानां हर्षप्रकर्षव-
र्षिणी सदा प्रजेधीयि ॥ ५ ॥

[आगतविज्ञप्तिसमुल्लिखितकृत्यवर्णनविज्ञापनम् ।]

§ १०. तथा विजाज्ञायांचक्रिरेऽस्माभिः समस्तानि प्रशस्तानि अविहस्तानि - वैयुष्टवेलावसरे श्रीगुरुव्याहारशुश्रूषाश्रद्धालुश्रद्धालुसंसदासमक्षं तृष्णानिष्णभव्यजन्तुजातमधुव्रतव्रात-
लेलिह्यमानसरससदुपदेशमकरन्दविन्दुकदम्बकसुन्दरगाथानिकरविकखरकुसुमप्रकरविशा-
लमालां संवेगरङ्गावतारनाट्यक्रियारङ्गशालां श्रीमदुपदेशमालां व्याख्यानीकुर्वाणानां
श्रीमतां कुशलेन श्रीचतुर्मासीसमयातिवाहनम् ।

मध्यंदिनसमये कुशाग्रीयशेमुषीकाणामपि विषमशास्त्रास्वलितधीराजितानाम्, भूत-
लक्षणानामपि न-भूतलक्षणानाम्, सुचरणवृत्तसाहित्यप्रौढिभाजामपि न-सुचरणवृत्तप्रौढि-
भाजाम्, प्रमाणसंस्कृतवाग्विलासानामपि अप्रमाणसंस्कृतवाग्विलासानाम्, अलङ्कार-
कविरमणीयभणितीनामपि नालङ्कारकविरमणीयभणितीनाम्, सदभ्यस्तच्छन्दःशास्त्राणा-
मपि मुक्तसुललितभ्रमरविलसितोचितमनोरमाशोकपुष्पमञ्जरीचम्पकमालाकामवाणादिप-
रिचयाणाम्, सुदृढीकृतकर्मग्रन्थागमानामपि शिथिलीकृतकर्मग्रन्थागमानाम्, वैज्ञानि-
कमनोविस्मयविधायिविद्यानवद्यविनोदपञ्चालिकारङ्गमण्डपानां गुरुचरणविनयवसन्तकल-
कोकिलानां पण्डितरत्नसमुद्रगणि - पण्डितराजमेरुमुनि - पं० सुवर्णमेरुमुनिवराणां प्रमा-
णातीतदुस्तरप्रमाणग्रन्थापारपारावारपरतारं स्वकीयद्रढीयः प्रसादप्रवहणेन प्रापय्य विशद-
श्रीकर्मग्रन्थार्थसार्थाप्रत्नरत्नश्रेणिग्रहणनिर्माणम् ।

[आगतविज्ञप्तिप्रेषकसूरिकृततीर्थयात्रावर्णनम् ।]

§ ११. तथा वितथीकृतप्रबलकलिकालवेतालविलसितेन प्राग्भवाविर्भावितप्राणिरक्षण-जिन-
यात्राक्षणसुपात्रव्रातपवित्रद्रविणवितरण-शिक्षणदेवगुरुपदपद्मपरिचर्याकरण-निर्मलशीला-
लङ्कारधरण-दुस्तपतपश्चरण-साधर्मिकमनःकामितभरण-दुर्महृषीकसंवरण-श्रीजिनशास-
नप्रणीतमार्गानुसरण-नित्यसामायिकादिक्रियाकाण्डयतिजनाचारानुहरण-भागवतभाषित-
समयसुधारसपान-प्रतिसमयश्रीपञ्चपरमेष्ठिप्रणिधान-विगलितनिदाननानाविधप्रत्याख्यान-
गुणिलोकप्रशंसाविधान-परदोषोद्धारव्यतिकरतूष्णीकाश्रितान-शुभप्रणिधान-प्रमुखसङ्ख्याती-
तशुद्धधर्मकर्मवितान-समुज्जृम्भितादम्भारम्भसंरम्भसंभूतप्रभूतलक्ष्मीविलासश्रीसार्वी-
यसमुपदिष्टविशिष्टोपाष्टोपनवक्षेत्रविन्यासप्रकाशीभूतमृगाङ्गमण्डलप्रसारिमरीचिवीचिवि-
शदयशोराशिधवलितवसुमतीवलयेन श्रीमन्निदलीयवंशविशालसरोवरविभूषणप्रफुल्लकुव-
लयेन ठक्कुरचन्द्राङ्गरुहेण, पुण्यकार्यसिद्धिविधिविबुधेन दारिद्र्योद्रेकविद्रावकेण ठक्कुरसङ्घपुरुष-
श्रीराजदेवसुश्रावकेण सोसूत्रितायाम्, पुरन्दरपुर्यामिव सुरचितविचित्रचित्रचित्रीयितच-
तुरगुरुचित्तपरमरामणीयकभूमिदिव्यदेवालयसमलश्रेणीयितायाम्, सरस्यामिव स्वःप्रवाह-
महिमविजिगीषयेव नभोमण्डलमभिप्रोच्छलद्भिः विदग्धसीमन्तिनीविसङ्कटकटाक्षचञ्चलवि-
पुलविभ्रमानुकारिभ्रमणैर्बहुलहरिगणैर्मनोहरायाम्, दुर्मदकलिप्रत्यर्थिप्रमथनसमर्थायां पता-
किन्यामिव श्रीधर्मभूपालस्य, राजधान्यामिव दानशीलतपोभावनाममहाप्रभावधामच-
तुराशाधिपग्रामविराजितस्य विशुद्धयशःशक्रस्य, सर्वप्रकारप्रभावनेन्दिराप्रीणितपात्रायां
श्रीतीर्थयात्रायां प्रतेष्टीय्य, पुरि पुरि ग्रामे ग्रामे श्रीमन्निदलीयकुलालङ्करणावतंसैः श्रीदेव-

हभक्तिपाथोजिनीक्रीडाराजहंसैः श्रीविधिमार्गसमाराधनबद्धरिरंसैः प्रभावकश्रावकजन-
तानैर्वितन्तन्त्यमानां प्रवेशकमहामहोत्सवसविस्तरश्रीसङ्घपूजाविधानसाधर्मिकसन्मा-
प्रभावनादानप्रदानादिकां महामहिमां श्रीसङ्घस्य निजलोचनानां पीयूषपारणीकृत्य, श्री-
गधाभिधजनपदप्रसाधनहारे श्रीविहारे च श्रीसमुदायस्य मुदं समुत्पाद्य, श्रीराजगृहपुरे-
रस्य श्रीमुनिसुव्रतजिनेश्वरस्य नमस्यां निर्माय, सं० ठ० श्रीराजदेवादिश्रीसमुदायसूत्रितां
विगरीयः कविजनवचनरचनावर्णनार्हणां श्रीअर्हणां च समभिनन्द्य, सप्रमदहृदयेन:-

तदनन्तरं श्रीचतुरसकलसङ्घसजुषः परमानन्दभावभरितवपुषः श्रीजिनशासनसेवा-
न्यतापुषः आन्तरारिसर्वस्वमुषः सन्तो वयं श्रीचरमजिनवरचरणरेणुनिर्मलितोपत्यका-
त्यकापरिसरे असङ्ख्यपुण्यागण्यगुणप्रसाधितशरीरबहुलमुनिवीरमुक्तीन्दिरासुन्दरीपाणि-
डनसङ्केतमन्दिरे अहर्निशश्रीवर्द्धमानादिपुरुषोत्तमबन्धुरमधुरगुणगानमधुपानपरायण-
हचरीसखसिद्धगन्धर्वकिन्नरनिकरसंसेव्यमानमनोहरकन्दरे, निःश्रेणिदण्ड इव श्रीखर्गा-
वर्गनिगममार्गयोः, मणिघृणिराजिविराजितशिखरे प्रकटकोटीरे इव श्रीमगधमण्डलरत्न-
भादेवतायाः सर्वपर्वतोत्तरे श्रीवैभारविश्वम्भराधरे, तदीय इवाविच्छेदिसदनुचरे, तदीय
व परमप्रेमरसपरे च सहचरे, तदीय इव सरूपगुणधरे कनिष्ठसहोदरे श्रीविपुलश्री-
पुलाचलाधरे च श्रीतीर्थाधिराजजिनसमाजं नमोकृष्महि ।

तत्र च ठ० सं० श्रीराजदेवेन श्रीमन्निदलीयापरश्रीसमुदायेन च महता श्रीसमुदयेन
न्यमानां विधिप्रधानां समयासमानां श्रीतीर्थपतिसपर्यां समनुमोद्य च, लभामहि मनु-
यजन्मनः फलम् । निर्मल्यभावि चिराचीर्णचरित्रशरीरेण । फलेग्रहिणा समपनीयत
य चिदूरदेशान्तरविहारकारिपदश्रेणे । धन्यम्मन्यतामगामि परिजनेन । अधिकतरकृता-
तया प्रकर्षेण प्रानरीकृत्यत जीवातृकतया । पम्फुल्यते स्म पुरातनभवजनितपुण्यप्ररोहैः ।
चंचूर्यते स्माद्यभवभ्रमविधायिभिः कालकूटं प्रमादमदमदनमोहैः । समारोरुह्यते स्म
उम्प्रति हृदयाध्यवसितकार्यसिद्धिसौधशिरोगृहं मनोज्ञमनोरथसमूहैः - इत्येवमादिभिर्वि-
तदनिश्छद्ममानसिकभावसारैः प्रकारैरात्मानं प्रकृष्टपुण्यभाजनमसृज्यामहि च ।

पुनस्तत्र पवित्रातिशयरसानूपश्रीज्ञातिनन्दनजिनैकादशगणधरमहास्तूपप्रादुर्भावः ।
श्रीमदुपदेशमहाभिनिवेशवशंवदहृदयैः श्रीप्रभावकश्रावकनिचयैः कार्यमाणैः क्रियमाणम-
प्रमाणसुकृतसन्ततिप्रसूतगुणतरङ्गधौतमूर्तिमदकूटयशःकूटानुवादैर्नवीनश्रीजिनप्रासादैः
श्रीवैभारश्रीविपुलधरयोः श्रीब्राह्मण-क्षत्रियकुण्डग्रामपुरयोश्च विशेषविभूषाविधानम् ।

ततो व्याघुट्य पुनर्विहारादिस्थानानि मध्येकृत्य कियन्तं पन्थानं गत्वा पुनर्व्याघृत्य,
श्रीवैभार-विपुलाचलयोरधिरुह्य जिनप्रतिकृतीरकृत्रिमोत्साहेन नमसित्वा सविस्तरप्रतिष्ठां
व जिनप्रतिमानां कृत्वा, भूयोऽपि यथागतानुसारिगतेन कुशलक्षेमेण श्रीपूर्वदेवगुरुसानि-
व्येन च श्रीसङ्घसहिताः श्रीअयोध्यापुर्यां ठ० सं० राजदेवसुश्रावककारितप्रवेशकोत्सव-
पूर्व श्रीपञ्चतीर्थानमस्करणं निर्मितवन्तः । ततोऽपि श्रीपूज्यादेशगुणमवलम्ब्य मध्यदेश-
मनु विजिहीर्षवोऽपि भास्वरश्रीदेवगुरुभूरिभक्तियुक्तस्य पुण्यचिकीर्षयाऽऽभ्यन्तरकालुष्य-

मुक्तस्य श्रीशासनानुरागसुभगंभावुकस्य ठ० साधारसुश्रावकस्य महाप्रहरसनिघ्ना ऐष-
मशचतुर्मासीमिहैवावास्थिष्महि । -

[जिनोदयसूरिप्रदत्तसमागतविज्ञप्तिपत्रप्रत्युत्तरम् ।]

- इत्यादीनि पैशूषपीयूषरसायनायमानानि स्वरूपाणि तानि कथं प्रत्युत वर्णयामः,
कथं श्रीमदाराध्यानां ठ० श्रीराजदेवसुश्रावकस्य च भाग्यभङ्गीं वाचि संभावयामः; तस्या
एव दुर्लभत्वात् । यतः -

दृष्ट्वा श्रीभवतामनहतगतिं सौभाग्यभाग्यश्रियं, श्रुत्वा मन्त्रिदलीयवंशसुमणेः श्रीराजदेवस्य च ।

तां तां तीर्थसमुन्नतिं विरचितां स्फारीभवद्विस्मया, बुद्धिर्बालवशेन सङ्गमगता वाचं न नो यच्छति ॥ ४४ ॥

लिखामश्च किम्, यतः -

चेद् वैदूर्यमयी नभःस्थलतता काप्याप्यते पट्टिका, गम्भीरः खटिकाम्बुभाजनमसौ क्षीराम्बुराशिर्भवेत् । 10

शक्या वज्रमयं विधाय कलमं देवः स्वयम्भूर्यदि, प्रारब्धालिखितुं तदा व्यतिकरोऽसौ लिख्यते चेत् कियान् ॥ ४५ ॥

परं केवलं सपरिवारैरस्माभिः श्रीचतुर्विधप्रत्यक्षं व्याख्यापयद्भिः श्रुतिपुटैः आवं-
आवं, मधुरवचनैः स्तावं-स्तावं, चमत्कृतचित्तैः शिरो धावं-धावं, लिखितं लोचनैर्दर्श-दर्शं,
हृदयाशयेन स्पर्श-स्पर्शं, प्रणिधानेन स्मारं-स्मारं, हर्षिते हृदि धारं-धारं, विशिष्टचेष्टा-
भिर्भारं-भारं, किं बहुना सर्वेन्द्रियगोचरं कारं-कारं, वारं-वारं जन्मपावनपराः सुकृतभराः 15
श्रेणिकृताः । विशेषतः “श्रीपूज्यानां सपरिच्छदानां कृते सर्वाणि श्रीतीर्थाणि नमसितानि”
इत्यक्षरपरम्परावलोकनेन घनसुधारसासारेण संसिक्ताः । अहो ! उत्तमानां किमपि जगदु-
त्तरं वर्णनातीतं सामान्यवचसां साधुव्यवहारनैपुण्यम्, यन्नवीनपुण्यवस्तुव्यापारे दवीयो-
भिरपि नेदीयोभिरिव सम्बन्धिसमुचितस्थाने लहनकविस्मारणं न कृतम् ।

अस्माभिरपि वाङ्मनसाभ्यां पुलकितवपुषा च तीर्थनमस्यां विरचयद्भिर्बहु मानित- 20
मिति । पठनीयं गुणनीयं गुप्तिसमितिभ्यां श्रीखरतरवरतररीत्या च प्रवर्तनीयम् ॥ ५ ॥

*

[अथ जिनोदयसूरिलिखितं स्वकीयधर्मप्रवृत्त्यादिवर्णनम् ।]

§ १२. वयमत्र प्रातः पर्वदि पार्षद्यानां पुरतः प्रस्तावोचितं सदुपदेशं प्रदिशन्तो, मध्याह्ने
प० ज्ञानकलशमुनेः श्रीजैनागमवाचनां प्रयच्छन्तः, तं विद्वांसं निकषा च मेरुनन्दनमुनि-
ज्ञाननन्दनमुनि-सागरचन्द्रमुनित्रयं साहित्य-लक्षणादिशास्त्राणि भाणयन्तः, सपरिवाराः 25
श्रीदेवगुरुप्रसादेन विजयारोग्यभाजो वर्त्तामहे ।

तथाऽस्माभिः श्रीनागपुरपुरस्थैः श्रीमदाराध्यानां पार्श्वे लघ्वीयो लिखितद्वितयं प्रजिध्ये ।

तथा तदनन्तरं सविस्तरं वारत्रयं श्रीफलवर्द्धिकामहातीर्थमरुत्पथप्रसाधनदिनेश्वरं
महाप्रभावविभूतिमहेश्वरं श्रीपार्श्वनाथतीर्थेश्वरं सादरं नमिकर्माकृतवन्तः ।

पुनर्नागपुरे महामहोत्सवपूर्वमपूर्वं सा० मोहणसुश्रावककारितं मालारोपणं विहितवन्तः । 30

[मेदपाटीयसाधुराजरामदेवकृतमन्ववर्णनम् ।]

§१३. अथ च प्रथीयोविश्वभराभारधरणधौरेयप्रचण्डभुजादण्डप्रान्तावलम्बमानज्योति-
र्नालजटिलमण्डलाग्रसमाक्रान्तव्यग्रितोदग्रशात्रवव्रातप्रणिपातपुरःसरोपायनीक्रियमाण-
सौवकमलाविलासिनीविलासव्यसनाविज्ञातविशुद्धकमनीयकीर्तिकामिनीनिर्मलगुणपरवश-
मुखरीकृतजगत्रयनिवासिजनविततिश्रीषे(खे)तजगतीपतिपरमप्रसादपात्रेण, भवानीप्राण-
प्रेयेणेव मधुरसुधाकरजाज्वल्यमानतृतीयेक्षणाभ्यां, मुनिवरेणेव प्रशमरसदीप्रतपोभ्यां,
शौण्डीर्यभ्राजिष्णुवसुन्धराशक्रेणेवाभिषेकानन्तरप्रसाधितनिजशरीरमनोहरशोभासंभार-
देहक्षाकरगृहीतप्रसन्नदर्पणभास्वरकृपाणाभ्यां, महावनसरोवरेणेव रिरंसारसलालसराजहं-
सपयःपिपासोपकण्ठीभूतकण्ठीरवाभ्यां, श्रीअर्हद्विशदगगनाग्रलग्नप्रसादशिखरेणेव धवल-
ज्वजदेदीप्यमानगलितकलधूतकलशाभ्यां, सकलसाधवैदुष्यमानुष्यकराजकराजन्यकशा-
त्रवव्राह्मण्यबन्धुताचित्तचमत्कारोत्पादनपटिष्ठाभ्यां भास्वद्यशःप्रतापाभ्यां विराजितेन,
श्रीश्रेणिकाग्रजाङ्गजेनेव निजबुद्धिप्रपञ्चप्रह्वीकृतमण्डलभूपालचक्रवालेन, निःसीमखरतरनी-
तिमूर्त्तिमदधिदैवतेन, सामयिकप्रभावकपुरुषशीर्षशेखरेण, स्वयंकार्यमाणाभ्रलिहशिखर-
सारश्रीजैनविहारनिजाजग्याक्षय्यप्रौढपराक्रमपरोपितश्रीकरहेटकाख्यश्रीपार्श्वनाथजिनचर-
गपरिचर्याप्राप्तप्रसादवरेण साधुराजलङ्घुसुश्रावकोद्गहेन साधुराजरामदेवश्रावकवरेण, सु-
धाकरेणेव सदैव गुरुसङ्गमस्पृहयालुना, पुराकृतसुकृतसञ्चयोदयवशवशीभूतराज्यप्रधानप्र-
धानपदेन्दिरायाश्चापल्यमवधारयता सुगुरुवचनेन स्थिरस्थापनां तस्याश्चिकीर्षुणा, पूर्व वर्ष-
द्वय-त्रयमारभ्य श्रीसिन्धुमण्डलविहारं चक्राणामस्माकं समाकारणाय प्रेषितहृदयान्तर्निर्ली-
नमनोज्ञमनोरथमालाविर्भावकलेखप्रकरेणापि बहुशः, साम्प्रतं समासन्नतया वारद्वय-त्रयं
प्रहितविवेकिश्रावकश्रेणिना बाढं समामन्त्रिता वयम् । तदनु च वारान् पञ्च षट् प्रस्थिता
अपि शकुनदौर्बल्यान्न विहितवन्तः प्रस्थितिम् ।

[जिनोदयसूरिकृतमेदपाटदेशाभिमुखप्रस्थानवर्णनम् ।]

अनन्तरं पुनरपि तत्प्रहिताभ्यां समाकारणायास्माकं समागताभ्यां श्रीगुरुपरिचर्या-
विधिविवेकनिपुणाभ्यां प्रभूतसार्थसहिताभ्यां मुनिजनवचननिरताभ्यां मं० भीमुड-नाह०
गज्जन-सुश्रावकाभ्यां सह प्रस्थाय, मार्गे समभिलषितप्रयोजनसंयोजनसाधीयोभिः भवि-
ष्यति किं विषमविरुद्धस्थानकेषु तेष्वित्यादिविन्तालतावितानच्छेदनपरशुप्रायैः शुभशकुन-
समवायैः संजनितप्रदक्षिणावर्त्तभ्रमणाभिप्रायैः प्रतिवासरं मनःस्थैर्यं विभ्राणाः, अन्तरा पथ-
क्रमायाते कुशमानपुरख्याते श्रीमज्जिनचन्द्रसूरिगणेश्वरचरणकमलयुगलमुद्राविन्यासपवित्र-
नया अनुकृततुषारभूधरैकशिखरे तत्कालोद्ग्राह्यमाणाप्रमाणहरिणमदविशदघनसारकालाग-
हप्रोत्सर्पद् बहुलबहलधूमपटलपालीभिरकाण्डाडम्बरितनभःस्थलव्यापिसजलजलधरे सदा
जाग्रदतिशयमहाभूषे श्रीस्तूपे नमस्करणस्मरणादिविधिभिः शुभयुतां परां प्राप्य, प्रतिग्रामं
श्रावकलोकग्रामं प्रमोद्य, श्रीशुद्धदन्तीपुर्यां श्रीसमुदायमुदे दिनपञ्चकं स्थित्वा, शुचिमास-
प्रथमद्वादश्याग्रिमदिने श्रीनदकूलवत्यां मनोनयनसमानन्दनधीरं समग्रोपसर्गवर्गग्रहविग्रह-

निग्रहेतुशरीरं श्रीसमुदायकारितसुधाधारावलीधवलप्रांशुशिखररामणीयकविस्मारितगग-
नचरविसरतुषारधरशृङ्गनादश्रीप्रासादविभूषणभूरमणधीरं श्रीमन्महावीरं जिनवरं सानन्दं
नमश्चेत्कीयां चक्राणां, श्रीसमुदायमनःप्रीतिं च बभ्राणां, प्रभाते च सकलश्रीसमुदायपुरः-
सरेण श्रीमालकुलनभःस्थलविमलीकारदिवसकरेण गुरुजनमानसनिवासराजमरालसोदरेण
अनुगुणानुनिजगुणमहामणिमहिमवशीकृतसमस्तनागरव्यवहारिसार्थवाहमहीनाथप्रमुख- 5
मानसेन राजप्रसादप्राप्तप्रधानमहत्त्वेन सा० भादासत्पुत्रेण सा० तोल्हासुश्रावकेण महता
विस्तरेण, श्रेणीभूतेषु नगरश्रेष्ठवर्णज्येष्ठश्रेष्ठिनैगममेलकेषु, मिलितेषु च मधुरगान्धर्वनव्य-
काव्यगाथकभाणकेषु मार्गणवन्दिलोकेषु, वाद्यमानेषु मुखरिताम्बरेषु ढोलझल्लरीमृदङ्गताल-
कांस्यतालवेणुवीणादिनादवर्द्धितपूरेषु गम्भीरस्वरतूरेषु, उभयपार्श्वचाल्यमानेषु प्रतप्तप-
नीयमयप्रसृमरकपिशरश्मिदण्डप्रलम्बदण्डमण्डितगोक्षीरबलक्षचारुचामरेषु सधवाङ्गना- 10
गीयमानेषु सरसधवलेषु, किं बहुना - प्रवर्त्तमानेषु तेषु तेषु कविजनवर्णनार्हेषु महाऽद्भुतरसा-
चारेषु, स्वकीयसौधं समाकार्य श्रीसङ्घसमन्वितानस्मान् श्रीवर्षग्रन्थिपर्वसमुचितसर्वविधि-
प्रकटीकरणेन श्रीजिनशासनप्रभावसौभाग्यं विशेषेण परमां कोटिमनेनीयत ।

तत्र च दैवसिकं पञ्चदशकं स्थितिरास्माकीना बोभूयाश्चक्रे । बहूनामासन्नसंनिवेशवा-
सिनां श्रावक-श्राविकालोकानां चिरकालीनगुरुसङ्गमसम्भवो महापुण्यलाभः प्रकटीबभूव । 15

[अथ आमन्त्रणार्थसमागत-स्वयंसाधुराजरामदेवेन सह जिनोदयसूरेर्मेदपाटप्रवेशवर्णनम् ।]

§ १४. अथ च माध्यंदिनार्ककर्कशदीप्रकरप्रकरसम्पर्कप्रवर्द्धिष्णुप्रग्रहजालजटिलीभवत्प्रचण्ड-
दण्डशितकुन्तवेल्लङ्गलपल्लवितहस्तैः परःशतैः पुरःसरानुचरपदातिसमाजै राजमानः, स्वकी-
यागमनसमुत्पादितभूजानिसमागमभ्रमः, उग्रैरपि मान्यसेवः साधुराजरामदेवः समाटाट्या-
श्चक्रेऽस्माकं निनंसया जिघृक्षया च । ततस्तेन महताऽऽग्रहेण महता विनयेन महतानुभावेन 20
महताभियोगेन महता प्रयोगेण वयं प्रास्थापयिष्महि । प्रहरद्वयेन समग्रं मार्गं सुखेनातिक्रम्य,
सूचितमनःसंभावितपुण्यप्रयोगसंयोगघटनासमुद्घटितहर्षसमुत्साहजाते दत्तवति शुभशु-
भशकुनजाते जाते श्रीविभाते श्रीविभाते, विवेकपथागमसङ्गमोन्मूलनलालसतमस्तम्बस्तम्बे-
रमघटाविघटनपटिष्ठतेजस्विकेशरिक्शिरोराशौण्डीर्यभृति प्रतिमानसं निजविरहसङ्कुचितवद-
नस्त्वान्धवसरोरुहश्रेणिसप्रणयमृदुलसरागकरस्पर्शनसमुल्लासकृति सकलजगल्लोककल्याण- 25
कारिसमुदयवति पूर्वाचलचूलिकामलङ्कुर्वति भगवति भास्वति, समधिरुह्यास्माभिरपि गरी-
योगिरिशिखरं सम्मुखानीतनीतिप्रियप्रभृतप्रसिद्धक्षत्रियश्रोत्रियसूत्रकण्ठवणिग्जनप्रभृति-
नानाजातिसङ्गमे मनोहारिसारस्फारशृङ्गारशृङ्गारिताङ्गावयवनवीनयुवतीजनोत्तमाङ्गरङ्गचङ्ग-
शङ्खसुधारसधवलितविचित्रचित्रपवित्रपत्रावलीशालमानकण्ठपीठलुठत्कठोरकनककलिका-
कारचम्पकमालोलवणकल्याणकलशशोभमाने, परःसहस्रमानवन्द्यन्नवतुरङ्गमचराचरचरण- 30
प्रचारचञ्चूर्यमाणभूधराग्रभाविनानाविधधातुशकलोच्छलत्परमाणुपरागपुञ्जप्रेङ्खोलनाछलेन
प्रसृत्त्वरादैतध्वाननिःखानशङ्खभेरीभरमधुरमृदङ्गझल्लरीप्रमुखमुखरतरानवद्यातोद्यप्रद्योत-
मानोलूलध्वनिरुपस्वकीयगुणैकमयप्राधान्यं जगति संभाव्येव मूर्त्तिधररागप्रमोदमेदुरीभूत-
गगनाङ्गणे, मधुमधुरगीतिगानसावधानसलावण्यवर्णनीयवर्णिनीजनगणे, प्रतिसदनशिखरा-

वनद्वप्रचुरवंशाग्रनरीनृत्यमानपञ्चवर्णचीरचारुध्वजव्रजे संशोधितपुरमार्गे, विपणिपथाग्र-
 ग्रथितमृदुलझलहलत्पट्टकूलमयतिलकिततोरणान्तरान्तरान्यस्तभास्वरमुकुरमण्डलावलीमि-
 षेण दिहक्षारसवशमिलितनानाद्वीपसागरविहारिदिनकरकुले, प्रतिमन्दिरद्वारपूर्यमाण-
 कादमीरद्रवार्द्रगोमयगोमुखोपरि प्रस्तारितमुक्ताफलदलानुकारिबलक्षाक्षताक्षतचतुरस्रचतु-
 ५ ष्कपूरे, प्रोद्वेभिद्यमानपौरजनमानसविस्मयाङ्कुरे; किं बहुना - विवक्षुवचनविलासप्रयासदा-
 सिनि, साधुराजरामदेवकारिते प्रवर्त्तमाने मनस्विमनोहरे प्रवेशकमहोत्सवे, श्रीकपिलपादक-
 पट्टनमध्यं प्रविश्य; प्रशस्यतमे श्रीआषाढचतुर्मासकदिने मूलार्कशोभने, श्रीमेदपादक-
 मण्डलकल्पहृदयस्थलालङ्करणकौरतुभरत्नप्रायश्रीकपिलपादकद्रङ्गचङ्गवसुन्धरासुन्दरीशृङ्गार-
 हारे श्रीविधिबोधिदिविहारे; सकलैहलौकिकपारलौकिकलोकत्रयलोकमानसिकामितकामित-
 १० वितरणसुरद्रुमः, स्वदर्शनमात्रवित्रासितसंसारचक्रचारभ्रमः, अखिलनिष्कृष्टानिष्टदुष्टकष्टनि-
 ष्टासृष्टिप्रष्टप्रतिष्ठकष्टाभिनिविष्टारिष्टपिष्टप्रकृष्टसेवाक्रमः, तमालतालदलकुवलयकोकिलक-
 ज्जलालिकुलकोमलदयामलपिच्छलप्रतिदिशविलासिवपुच्छविरञ्जोलीच्छलेन स्वीयनमस्यानि-
 मित्तसमागतजनतामार्गवहनजन्ममहाश्रमकृन्त्युपशान्तिकृते शिशिरं स्वच्छच्छायाभर-
 मिव विस्तारयन्, शारदीनहरिणलाञ्छनसञ्चारिचारुचन्द्रिमाविमलधवलविलोचने कटाक्षच्छ-
 १५ टाविस्तारणाव्याजेन दिहक्षोपसारिणं सरणिसन्तापधारिणं प्राणिगणं सरलामृतरसलहरि-
 भिरिवाष्ठावयन्, उत्तमाङ्गातपत्रायमाणधरणाधिराजरचितस्फारफणावलीप्रान्तविश्रान्तनि-
 तान्तकान्तबहुप्रकारमणिसम्भारविस्तारिकर्तुरकिरणश्रेणिमिषेण नमश्चिकीर्षोपढौकितजन्तु-
 जाताय पञ्चवर्णपट्टकूलसिचयनिचयं परिदिधापयिषुरिव विश्राणयन्; किं बहुना - मूर्त्तिरिव
 कल्याणपरम्परायाः, पयोधिरिव लावण्यरसस्य, निधिरिवाद्भुतप्रभावविभवस्य, मरकत-
 २० मणिकुम्भ इव कारुण्यामृतस्य, मार्त्तण्डमण्डलमिव महोदयस्य, मन्दिरमिवामन्दभन्दस्य,
 आस्पदमिवैकान्तशान्तरस्य, धामेव विशुद्धधर्माणाम्, दामेव विततगुणानाम्, प्रतिकृति-
 रिव प्रसन्नतायाः, पदमिव प्रसादस्य, कन्द इव कामनीयकस्य, स्तम्ब इव प्रेयकस्य, चरण-
 नलिनरोलम्बायितसमस्तनरासुरदेवः श्रीकरहेटकपार्श्वनाथदेवः, सादरं सानन्दं समभिवा-
 वन्द्याश्चक्रे । चक्रे च तदीयाविकलानुभावभासुरेस्तत्रातिसुखवृषक्षेमसमुदयेन श्रीचतुर्मासी ।

25

[करहेटकमहातीर्थे सञ्जातदीक्षामहोत्सववर्णना ।]

§ १५. अनन्तरं च मार्गशीर्षप्रथमषष्ठ्यामेव समाहूतनानास्थाननिवासिश्रावकश्रेणिसमु-
 ल्वणः, साश्चर्यसमुचितकार्यविधानविस्मेरितपौरजनगणः, प्रतिदिनसंपद्यमानविधिज्ञधन्यज-
 नविनिर्मापितसौवामेयखापतेयसफलताकारणरणचूर्यादिवर्यवादित्रप्रसृत्त्वरपरितोर्ध्वनिवि-
 तानमुखरितगिरिगह्वरमूर्च्छितोच्छृङ्खलाप्रतिमप्रतिशब्दाडम्बरोद्रेकितबहुगुहाशायिसिद्धगन्ध-
 ३० र्वमिथुनप्रकर्षितनोद्यवीक्ष्यमाणमनोरमनेपथ्यमणिमौक्तिककनकादिमयकमनीयसारतरतार-
 परिस्कारपरिस्कृतशरीरापघनघनकामिनीजनवदनेन्दुमण्डलक्षरत्पीयूषप्रवाहानुहारिहारिमङ्ग-
 लाचारसुकुमारगीतस्वरप्रकारपुरःसरवेल्लत्कुतूहलोत्फुल्लपुष्पाङ्गमहोपबृंहितमहाजनमहनीय-
 महिमः, गगनाङ्गणाग्राधिरोपितश्रीजिनधर्मः, पुराकृतशुभोदयसम्भूतविभूतिपुण्यक्षेत्रवपन-
 चतुरेण साधुराजरामदेवेन कारितः, घनप्रकारसाकारालेख्यकर्मनिर्मितिनानाविज्ञानविनो-

दारम्भसरलकदलीस्तम्भावयवविरचित-विचित्रच्छत्राकारशिखरनिकरावलम्बिप्रलम्बपञ्चव-
र्णपताकाविततिविततशोभाभर-सर्वतोलम्बमानप्रधानकुसुमदामपरमसौरभभोगभृङ्गीकृत-
जननयनालिरुचिरकार्तस्वररजतरसरसितपत्रावलीविपुलविच्छित्तिचित्रीयितजनकीयचित्त-
पवित्रहाटकपत्रघटितशृङ्गकलशविसारिकरमालाविमलितसकलकुम्भमण्डल-चतुर्द्वाराग्रभा-
गसंकलितवन्दनमालाभिलषणीयतुङ्गतरतोरणरमणीय-सर्वमाङ्गल्यमूर्तिश्रीजिनराजमूर्तिम-
ण्डितगवाक्षान्तरप्रदेशदिव्यविमानानुकारिश्रीनन्दिमन्दिरविराजितश्रीप्रासादमण्डपभूमिः,
श्रीकरहेटकप्रभुपार्श्वजिनसौम्यदृग्विलासविन्यासविलीनसमस्तोपह्वव्यूहः, अचिन्त्यप्रभा-
विभवः श्रीभागवतदीक्षामहोत्सवो बोभूयते स्म ।

§ १६. तत्र च महोत्सवेऽस्मिन्नेव मण्डले चतुरशीतिग्रामकारितामारिघोषणाप्रकर्षितनिर्मल-
यशःपुण्यसमुदयसुभगं भावुकस्य मन्त्रीश्वरारसिंहसुश्रावकस्य सन्ताने वृत्थडागोत्रे श्रीजि-
नधर्मकाचकर्पूरवासितधातुसञ्चयस्य नैसर्गिकभद्रकतागुणशालिनो मन्त्रिधीणाकस्य बालक-
लाषापुत्रस्य, श्रीगुरुवचनाम्भोदरसस्यन्दलवमुक्ताफलीभावसम्पादनशुक्तासम्पुटसंवितमा-
नसस्य काणोडागोत्रीयसा०जेहडस्य राणाभिधानोद्वहस्य, कुलक्रमायातस्वाभाविकाभङ्गुरगुरु-
चरणकमलभक्तिकेतकीकुसुमपरिमलसुरभितहृदयकच्छस्य गुरुवाक्यपालनतत्परस्य मन्त्रि-
श्रीछाजहडवंश्यभीमडश्रावकवरस्य पेशासुतस्य च; पुरा प्राप्तादसीयदेशसाचिव्यैश्वर्यस्य ॥
सौवचारककृतानेकसाधर्मिकोपकारावष्टम्भस्य श्रीमालहूविशालशाखाविभूषामणीवकस्य म-
न्त्रीश्वरङ्गरसिंहस्य दुहितुर्माञ्जुबालिकायाः, निरवधिशीखरतरविधिवन्धुरानुरागभङ्गीतरङ्गि-
तान्तरङ्गभावस्य व्यवहरिकवंशीयसा०महिपतिनामास्तिकस्य सुताया हांसकुमारिकायाश्च ।
एवं निश्चितप्राग्भवाभ्याससञ्ज्ञातसर्वविरतिमैत्रीपरिणामस्य, सहजसंपन्ननयविनयविवेका-
दिगुणकदम्बकालङ्कृतानवावयवग्रामस्य, आबालकालादपि तत्तादृशपुण्यक्रियाकलापलोलु-
पस्य, अकाण्डेऽपि वैराग्यरसकलोलप्रोज्ज्वलितमानसिकरङ्गस्य, कौमारेऽपि तथाविधश्रीजिन-
शासनानुरागानुषङ्गिसुललितवचनविलासविस्मापितविदग्धजनस्य, सामायिकरूपलक्षणव-
र्णकलाप्रज्वालताशोभितस्य; किं बहुना - निःशेषजननयनकुवलयोल्लासनसुधाकरमण्डलम-
यस्य कुमारकत्रयस्य; साध्वीगुणानुगुणलक्षणचणस्य श्रीदीक्षाग्रहणपरिणामप्रणयितमान्तः-
करणस्य प्रादुर्भूतपुरातनपुण्यसमुदयस्य कुमारिकाद्वयस्य च; अस्माभिः सकलसांसारिकेशा-
वेशविनाशदक्षा दुर्गतिकटपूतनासमागमननिवारणाय मृत्युञ्जयारक्षा चिन्तातिगसमीहित-
सुखप्रदानप्रकारेणाधरीकृतैकभवसंभाविताभिमतवितानकल्पवृक्षा प्रीणितप्रतीक्षा श्रीआ-
र्हती दीक्षा प्रादेदीयि । जाजायते स्म ज्यायसी श्रीजिनशासनप्रभावना । तेषां कुमारश्रम-
णानां च यथाक्रमं नामधेयानि तद्यथा - कल्याणविलासमुनि-कीर्त्तिविलासमुनि-कुशल-
विलासमुनि-मत्सुन्दरीसाध्वी-हर्षसुन्दरीक्षुल्लिकेति ज्ञातव्यानि ।

§ १७. तदनु च साधुराजरामदेवेन दिनसप्ताष्टप्रकृष्टसाधर्मिकवात्सल्यदुर्बलश्रावकोपकार-
दिवसपञ्चामारिघोषणाव्यवहारव्यापार-याचकसञ्चयरुचिरसिचयनिचयचामीकरोर्मिकादि-

शृङ्गारप्रभृतसारप्रतरप्रदानादिविधिप्रकारेण श्रीजिनशासनमहिम्नः श्रीखरतरविधिविशेषस्य च यशःकलशाधिरोपणमचेक्रीयि ॥ ५ ॥

*

§ १८. अथ प्रवृत्ते च महोत्सवे स्वस्वस्थानं प्रस्थितेषु च सर्वलोकेषु, प्राप्तराजप्रसादेन दान-शौण्डताशौण्डीर्यादिगुणविख्यातयशोनादेन श्रीशासनप्रभावकेण सेल्लहस्तपेभूमुश्रावकेण समाकारिता वयं सादरं शतपत्रिकादिखकीयग्रामेषु, विजेहीयाश्चकृमहे च तत्र परिसरे पक्षकल्पमेकम् ॥ ५ ॥

[साधुराजरामदेवकृतद्वितीयप्रतिष्ठामहोत्सववर्णनम् ।]

§ १९. अनन्तरं पुनरपि साधुराजरामदेवेन महीयांसं श्रीप्रतिष्ठामहोत्सवं विदिधापयिषुणा समामन्त्रिता मध्ये राजधानि । वयं च तादृक्षप्रतिष्ठाविधिक्षमदिनलगादिसंयोगाभावेनाऽ-निर्मित्सवोऽपि ताम्, श्रीगौर्जरधरामनु चिकीर्षितविहाराश्चापि, परं तेन समयवैषम्यं राज-प्रसादचापल्यं कमलाचञ्चलत्वं प्रायेण भूयो भूयः श्रीसुगुरुसंयोगस्य दुर्घटत्वं च चेतसि चिन्तयता धीमता राजराजन्यराजलोकनिबन्धप्रबन्धेन द्रढीयसा समवातेष्टीययिष्महि, प्रारारभि च महोत्सवः सामस्येन ।

§ २०. पुनरपि प्राग्विधिना समामन्त्रिताशेषविषयविषयान्तरान्तरावर्त्तिपुरग्रामनिवासि-संख्यानविमुखहर्षसुमुखास्तोकलोकसङ्गमे, प्रागिव नानाभेदवाद्यवृन्दावच्छेदिशब्दाद्वैतम-यीभूतवसुन्धराधरकन्दरान्तरिक्षोदरे, संजायमाने घनगीतस्फीतमङ्गलधवलकोलाहले, प्रत्य-ग्रभाग्योदयवशादल्पीयोभिरपि वासरैः संपन्ने समस्तविलोक्यमानवस्तुविस्तारे, श्रीकरहे-टकाभिधश्रीपार्श्वनाथप्रसन्नदृष्टिसुधावेणिभिर्विरलीभूते निःशेषसन्तापकूटे, प्रवृत्ते च जलानयनादौ महीयसि महसि श्रीफाल्गुनवलक्षाष्टम्यां सुधाकरवारे श्रीअमृतसिद्धियोगे चासहिष्णूनामपि मानसविस्मयविकाशी श्रीजिनबिम्बप्रतिष्ठामहोत्सवः समबोभूयिष्ट सर्वो-त्कृष्टः । प्रत्येष्टीयिषत च तत्रास्माभिः श्रीचतुर्विधधर्मप्रत्यक्षमूर्त्तयः, चतुर्गतिकुहरगत-जन्तुजातनिस्तारनिपुणसारस्फूर्त्तयः, आदिमद्वीपविहरमाणश्रीसीमन्धर-श्रीयुगन्धर-श्रीबाहु-श्रीसुबाहु-जिनचतुष्टयमूर्त्तयः, परा अपि श्रीजिनप्रतिकृतयः, सकलदुरितदुस्तदीप्रस्फोटन-प्रमत्तद्विरदानां तत्तादृक्त्रिविष्टपोत्तरज्ञानदर्शनचारित्रप्रभृतिपवित्रगुणश्रेणिप्रकर्षेण पर-वादिपर्षदि प्राप्सद्विरुदानां भास्वरताभूरीणां श्रीमज्जिनरत्नसूरीणां मूर्त्तिश्च । पुनरपि प्रति-ष्ठामहं कारयता प्रभावकपुरुषेण सन्मानदानपुरःसरसाधर्मिकनागरापरपौरमानवनिवह-भोजनताम्बूलप्रदानादिविधिना प्रभूतयाचनकनिकरमनोरथपूरणप्रकारेण च श्रीजिनशास-नमहिमा जगति विशेषेण जाङ्गिकी कृता ।

§ २१. तदेवं संजातमद्वैतप्रभं श्रीदीक्षाप्रतिष्ठामहोत्सवद्वयम् । परमनयोः श्रीमहसोः श्रीसङ्कलोकमिलनकुतूहलप्रभावनादिस्वरूपं कियद्वचनपथगोचरं बोभवीति । यतः—

यामाग्रहारनगरेतरमण्डलेभ्यस्तावन्त ऐयूरिहाङ्गिगणाः सहर्षाः ।

यद्भाषणैः पुरमिदं हि नभश्चराणां भूयोऽपि वार्द्धिमथनभ्रममाततान ॥ ४६ ॥

सीमन्तिनीजनचया मिलितास्तथाऽत्र कौसुम्भचेलपटलीरचितोत्तरीयाः ।
जाता यथाऽवनिधरस्य सुभूमिरेषा सत्यद्वारागशिखरै रुचिरा सचित्रा ॥ ४७ ॥

अपि च-

ते केऽपि गीतविधयो नवनाट्यभङ्गास्ते केऽपि चाद्भुतरसा ननु हर्षरङ्गाः ।
यैर्विश्वविस्मयकरैरनया पुरापि स्वर्गायितं कतिपयानि दिनानि नूनम् ॥ ४८ ॥
किञ्च - श्रीजैनशासनमहो महिमानिधानं पुण्योऽसकौ खरतरस्य पथो विधिश्च ।
वर्ण्यं च साधुसचिवेश्वररामदेवविस्फूर्जितं बत बतेति न कैरनावि ॥ ४९ ॥

किं बहुना-

किं चिन्तयाम च दधाम च चाम किं वा किं वर्णयाम च नवाम लिखाम किं वा ।
बुद्धिर्महाद्भुतरसाम्बुनिधौ निमग्ना संग्राहते न हि कथञ्चिदपि स्वरूपम् ॥ ५० ॥

अतः स्वल्पमात्रमेवात्र लेलिखाञ्चक्रे इत्यवसेयम् । तथा यदेवं म्लेच्छसंकुलसंनिवेशो-
भ्योऽपि दूरं विषमेऽपि अनेकपुण्यविधिपथप्रत्यर्थिखलकुलसङ्कीर्णोऽपि दुष्टव्यन्तरप्रचाराकु-
लेऽपि अस्मिन् विषये निरातङ्गं निराबाधं निःशङ्कं निःप्रत्यूहं निःकलङ्कम् अभूतपूर्वाणि
श्रीदीक्षा-प्रतिष्ठामहोत्सवादीनि पुण्यकर्माणि सिद्धिसौधशिखरमधिरूढानि तत्सर्वं जाग्र-
त्प्रभाववसतेः प्रौढप्रतापतीव्रदीधितेः प्रसन्नाकृतेः श्रीकरहेटकश्रीमत्पार्श्वनाथदेवाधिदेवस्य ॥
विशदप्रसादस्य विजृम्भितमिति ।

श्रीमद्भिरपि सपरिवारैः सश्रीसमुदायैरिमानि मनःसंमदप्रदायीनि श्रीशासनप्रभा-
वनादिस्वरूपाणि समधिगम्यैतद्देशप्रवृत्तानि स्वीयमानसमरालः प्रमोदतरङ्गभङ्गा सह
क्रीडयितव्यः ॥ ५१ ॥

*

[पत्तननिवासिमन्त्रिवीरा-मन्त्रिसारङ्गकृतामन्त्रणपूर्वं जिनोदयसूरेर्गूर्जरधरां प्रति प्रस्थानम् ।]

§ २२. अथाग्रिमो वृत्तान्तः किञ्चिल्लिखितपद्धतावधिरोप्यते । अनन्तरं च-

अस्ति स्वस्ति समस्तश्रीनगरसरःश्रेणिक्षीरसागरावतारश्रीमन्नरसागरपुरवरनिवासि-
विलासिव्यवहारिरत्नराशिसातिशयपुण्यप्रभाप्राग्भारभ्राजिष्णुमूर्तिः, परमपुरुषाभिलष-
णीयपुरुषार्थत्रयसंसाधनयथापूर्वप्रवर्द्धमानमत्यतिशयः, निजगतागतभ्रमविप्रतारितानेक-
मानुष्यकदुर्धरचपलकमलाकरेणुकासङ्कलनालानस्तम्भः, पुरातनजन्मसम्यक्परिचरितश्री-
जिनवरोपदर्शितश्रीधर्ममार्गप्रसादप्राप्तप्रभूतविभूतितया पुनरपि तमेव मार्गं प्रत्युत समु-
न्नतिं नेतुकामितया जगति विख्यातकृतज्ञतागुणः, स(श)चीवरयितेव विबुधसंसदुपश्लोक्य-
मानगुणगणोऽपि गोत्रपालनसाह्लादहृदयः, वैश्रवण इव श्रीदोऽपि न कुबेरतया प्रसिद्धः,
प्रचेता इव समुद्रस्थितिरपि न पुण्यसंप्रयोगे पश्चिमाशानुषङ्गिहृदयः, किं बहुना-गणनी-
योऽग्रणीगुणिनाम्, वर्णनीयो वरीयाँल्लब्धवर्णानाम्, स्पृहणीयः प्रथमः प्रगल्भानाम्,
अभिनन्दनीय आदिम उदाराणाम्, मार्गणीयो धुरीणः सन्मार्गगामिनाम्, कीर्त्तनीयो धुरि-
धीराणाम्, प्रशंसनीय आदौ प्रसन्नानाम्, बोद्धव्यो धौरेयोऽनुद्धतानाम्, ग्रामणीः शम-
शालिनाम्, सुधाकरमय इव यशसि, सुधामय इव वचसि, सौभाग्यमय इव महसि,

कारुण्यमय इव हृदि, तन्मय इव मुदि, आलस्यमय इव रुषि, सर्वगुणमय इव वपुषि, परीक्षानिरीक्षणीयसङ्घपुरुषपदवीदक्षणाक्षमलक्षणविभूषणः मन्त्रीश्वरमूञ्जापरमश्रावककुल-
कनकाचलधरणीसमलङ्करणकल्पकारस्कराङ्कुरः श्रीशासनप्रभावकः मन्त्रीश्वरवीरासुश्रा-
वकः स्वकीयपूर्वजसहोदरमन्त्रिमण्डलिकवचनानुपालनप्रवीणः श्रीमहातीर्थद्वयाद्वैतयात्रां
५ जगिति संसृष्टयिषुरपि, महाराज्यस्थितिरिव सधरधीसखान् विना श्रीसुगुरुनन्तरेण महीयः
श्रीसङ्घयात्रादिधर्मकार्यविधिः समुन्नतिभाक् कल्याणाभ्युदययुग्मं अविनश्वरपुण्यसम्पत्
सकललोकचमत्कारकृत् समस्तसंकटघटाभित् परश्रीहृत् सर्वथापि न संपनीपद्यते-इति
हृदयालुः स्वहृदयेऽवधारयन्, परारिपरदैषमः प्रहितनानाप्रकारसंभक्तिकविज्ञप्तिसंभारोऽपि,
समाकारणायास्माकं सम्प्रति विशेषेण प्रस्तावं समधिगच्छन् समानेतुमस्मान्, प्रकृतिविनी-
१० तात्मानं समानन्दितसज्जनवितानं साधुजनमानसकुलेशयकेलिसारङ्गं श्रीगुरुवदनाम्बु-
दक्षरद्वचनामृतबिन्दुसङ्ग्रहस्पृहासारङ्गं प्रसन्नतागुणानुकृतसारङ्गम् उदारतासहोदरीकृतसा-
रङ्गं मन्त्रिमण्डलिकाङ्गजं निजभ्रातृव्यं मन्त्रिसारङ्गं प्राजेधीयिष्ट । समागतश्चासौ तत्र नम-
स्कृत्य श्रीकरहेटकाधीश्वरं श्रीपार्श्वजिनवरम् । भेटयित्वा च पुरपुरन्दरं सादरम्, समावर्ज्य च
समग्रं श्रावकनिकरं तत्क्षणमेवास्माकं वन्दननमस्करणपूर्वं श्रीतीर्थयात्रायै प्रस्थापनक्षमाश्रमणं
१५ प्रदेदीयाश्चक्राणः । वयमपि बहुवासरेभ्यः श्रीतीर्थयात्राकरणेनात्मानं पवित्रयितुमाः,
सम्प्रति प्राप्तप्रस्तावाः, तत्रत्यं महाग्रहपरं श्रीगुरुदर्शनविरहकातरं परमपुण्यभक्तिसमवायं
साधुराजरामदेवप्रमुखं श्रीसमुदायं भूयसा प्रयत्नेन संबोध्य, तदामन्त्रितश्रीतीर्थयात्राप्रस्थि-
तसकुटुम्बगीतार्थप्रभूतश्रावकसङ्कुलेन मन्त्रिसारङ्गसूत्रितनिराबाधसार्थेन सह श्रीकरहेटक-
प्रभुपार्श्वजिनप्रसादमुररीकृत्य शिरसि प्रधानशकुनसन्तानदत्तानुमतयः फाल्गुनशुक्ल-
२० दशम्यां प्रतस्थिवांसः ।

*

[मार्गागतप्रसिद्धतीर्थनमस्कारवर्णनपुरस्सरं, पत्तनपुरप्रवेशवर्णनम् ।]

§ २३. अन्तरा च नवखण्डमेदिनीविदितमहिमानं सर्वातिशयनिधानं सकलकल्याणमूल-
निदानं नागद्वदमहास्थाने जिनवरं श्रीनवखण्डपार्श्वनाथनामानम्; श्रीमदीडरगिरिमहादुर्ग-
शृङ्गशोभाकारिशातकौम्भकुम्भं युगादिप्रदर्शितलोकद्वयोपकारिधर्म-कर्मसंसर्गप्रारम्भं
२५ युगादिभग्नमोहसंरम्भं युगादिजनमनःकामितकामकुम्भं श्रीचौलुकयाधिपविधापितोत्तुङ्ग-
तोरणरमणीयविहारविहितवसतिं महोदारमूर्तिं श्रीयुगादिजिनपतिम्; श्रीबृहति नगरे च
सौवोत्तुङ्गमण्डपद्वारशिखरस्तम्भादिश्रीचमत्कारितसनातनायतनविभ्रमाभिरामप्रासादो-
दरविभ्राजमानौ विलोकनमात्रसम्भावितभङ्गुरीभवद्भवाभिमानौ पुण्यप्रलेपमयौ जीवत्स्वा-
मिप्रथमतीर्थनाथ-श्रीमद्वर्द्धमानौ; श्रीसिद्धपुरे च श्रीसिद्धचक्रवर्त्तिश्रीजयसिंहमहीपकारिते
३० शाश्वतिकचैत्यावतारे विधिवदनसङ्घाद्वारे विलोककलोकलोचनावलीसमानन्दनकाचकर्पूर-
शिलाकानुकारे बहुविधपञ्चालिकामालिकादिविच्छित्तिभङ्गीसकलायतनसारे रम्ये श्रीविहारे
सन्निविष्टाश्चतुर्दिशाभिमुखोपविष्टाः श्रीपरमेष्ठिचतुष्टयमूर्त्तीश्च नमस्कृत्य; तथा आ श्रीकर-
हेटकपार्श्वजिनभवनं सर्वेषु श्रीतीर्थस्थानेषु मन्त्रिसारङ्गेण श्रीमहातीर्थयात्राविधास्यमानप्र-

भूतविभवव्ययोदारतावर्णिकां दर्शयतेव कारितं सविस्तरं श्रीमहापूजाध्वजारोपनृत्यगानदानाटोपप्रमुखप्रभावनाविधिम् । संदृश्यानुमोद्य च सम्मुखागतसंख्यातीतश्रावकलोकमयश्रीपत्तनीयश्रीसमुदायसमन्विताः, प्रातः समुदयश्रियं शेऽश्रीयमाणे मङ्गलकलशशालिनि श्रीमदंशुमालिनि मधुमासप्रथमद्विगुणषष्ठीवासरे श्रीपत्तनपुरवरे भासुरसमुदयरमाभ्राजं श्रीशान्तिनाथतीर्थराजं नमश्चकृमः स्म । तत्रत्यं श्रीसमुदायं बहुदिवसदर्शनोत्सुकं प्रमोदयाश्चकृम च ॥ ५ ॥

[अथ मन्त्रिवीराप्रारब्धतीर्थयात्रोपक्रमवर्णनम् ।]

§ २४. तदनु मन्त्रीश्वरवीरेण वज्राद्रिणेव मनसि धीरेण स्वमनोरथावलीं महतीं फलेग्रहीं कर्तुमुपायनीकृतामितस्वापतेयराशिना भेटितः प्रकटविसङ्कटदुःसहाभिमानः श्रीखानः । तेनापि पुरपरिवृढेन निरन्तरं समाराध्यमानस्त्रीयश्रीदेवगुरुचरणप्रसादातिरेकात्तदीयपुरातनपुण्यपुण्यभाग्यसौभाग्यसदाकृतिसौम्यतादिरमणीयगुणप्रसन्नीकृतमानसेन तस्य कृतः प्रसादः । समभिनन्दितो बाढं मधुराभाषणादिना । व्यतारि च चतुःशिखरमिषचतुष्ककुब्जविलासिकमनीयकीर्तिकन्यिकापृथक्पृथक्क्रीडापर्वतकविराजितेन दीप्रतरसुवर्णसूक्ष्मतन्तुजालसर्वतोऽग्रथितेन शिरस्त्राणेन सहिता कलकनकमयकिङ्किणीश्रेणिमिषमूर्त्तिमन्नेतृप्रकटप्रतापलवकृतालङ्कृतिः पट्टकूलमया समस्तोत्तमजनमनोजनितधृतिः प्रशस्या कायावृतिः । प्रसादीकृतं च कृतसुकृतकर्मान्तरायदुर्जननिकायमनोरथमालानिद्राणं सकलमहीवलयप्ररोपितप्रमाणं श्रीफुरमाणम् । तदनन्तरं तदनुज्ञातस्तत्प्रदत्ताकल्पसमलङ्कृतवपुः, पुरुषोत्तम इव त्रिविष्टपजनतामनोमोहकारिण्या तथा श्रिया समालिङ्गितः, सहस्रलोचन इव जयेनान्वितः सरलशालिहोत्रारूढः, पुरमुख्यव्यवहारिमानवलक्षानुगम्यमानः, गर्ज्ज्मीमूतस्फीतध्वनिविडम्बिना तारस्वरितस्वरेण मङ्गलपाठकघट्टैरुपस्तूयमानः, सावधानगन्धर्ववृन्दैः प्रत्यग्रसर्वाग्रिमरम्यग्रामगान्धर्वोद्गैरैर्गौरवातिरेकं प्राप्यमाणः, वाद्यमानानवद्यवाद्यवृन्दोदात्तस्वरैः स त्रिजगति प्रख्याप्यमानः, कुतूहलरसनिभालनधावंमाननगरलोकवनितावितानविस्मेरनेत्रकञ्चोलकैः पीयमानसौभाग्यलावण्यरसः, मध्ये पुरं प्रवेशकमहोत्सवपूर्वं प्रविश्य श्रीविधिमन्दिराधीश्वरं श्रीशान्तिजिनवरं नमश्चकार मन्त्रीश्वरवीरः । श्रीपुण्यशालायां श्रीगुरुंश्च सादरं प्रणम्य समासादिततदुपदेशादेशः सौवावासमयासीत् ।

*

§ २५. ततश्च पूर्वमेव प्रगुणीकृतसमग्रसामग्रीकोऽसकौ सज्जीचकार चारुदारुमयं मनोहारिविचित्रचित्रनिचयम्, व्योमाग्नोल्लेखिशिखरप्रान्तवर्त्तिकान्तकनककलशविसारिरश्मिवारभासुरितसप्तहयम्, भग्नसकललोकचञ्चलविलोचनरयम्, दिव्यभवनमिव विचित्रपुत्रिकाभ्राजिष्णुमहारम्भस्तम्भम्, तुलितायामविष्कम्भम्, देवलोकभूवलयमिव कण्टकिङ्किणीकुतूहलकोलाहलायमानचतुरस्रश्रीश्रेणिपरिकरितया चतसृषु दिक्षु यदक्षया खेलन्त्या दिविचरमनांसि भ्रमयन्त्या वैजयन्त्या शोभमानम्, प्रायो मिथ्यादृशामपि समदृशां मनोमृगकदम्बककेलिगिरिम्, गरीयोगिरिमिव कचित् कनीयःशिखरराज्या राजितम्, कचिन्नभोभ्रमणभ्रमखिन्नैरिव निश्चलोपविष्टैः कलविङ्ककुलैः कलितैः समीराभावान्निःकम्पैरिव विनीलघनभेदसान्द्रदुम-

समूहैर्विहिताह्लादम्, कचिद् द्विरदविशदरदखण्डैर्मण्डितम्, कचिद् भूरिरसरमणीयकटक-
काम्यम्, कचिल्लयस्तिमितैरिव समकलापटुभिर्विद्याधरवनितावृन्दैर्विधीयमाननाट्यरङ्गम्,
कचित् केसरिकरिहरिप्रभृतिभिर्वनमृगपूगैर्विभ्रमकरम्, कचिच्च परितोरणप्रसक्तमत्तवारणम्,
किं बहुना - संसारार्णवनिमज्जन्तुजाततारणपोतायमानम्, मूर्त्तिमयपुण्यस्कन्धायमानम्,
आकल्पविकल्पमानवर्णनाभिरपि लेशतः स्तूयमानगुणवितानम्, विचक्षणवर्णनार्हविविध-
वस्तुविस्तारालयं श्रीदेवालयम् ।

*

§ २६. ततश्च तस्मिन् श्रीदेवालये नानावनराजिमण्डलीलताग्रभागविकसितसितासितहरित-
पीतकुसुमस्तवकप्रसरदस्तोकविरोकपञ्चवर्णीभूतभासि श्रीमधुमासि, कुमुदिनीप्राणप्रियप्रसृ-
मरपीयूषभरवर्षिकौमुदीसमुदयप्रमोदितजन्तुलक्षे प्रथिमपक्षानुगामिगुणबहुलक्षे द्वितीयपक्षे,
सकलदुरितप्रवासरे षष्ठीवासरे, विस्तारितविततकल्याणसुधाधारे श्रीसोमवारे, समाह्वान-
मिलितासु अविकलपुरप्रधानज्ञातिषु कुतुकाकृष्टचित्तवृत्तिप्रेरितासु पिण्डीभूतासु तासु तासु
जातिषु, समुच्छलिते पञ्चविधातोयप्रपञ्चितोदये महति ध्वनिलये, निभृतस्वरसञ्चारितचतु-
र्वर्णकर्णामृतधारे प्रवर्त्तमाने च श्रीदेवगुरुसम्बन्धिनि कुशलकारिणि मङ्गलगीतोद्गारे, निर्मि-
ताशेषसुरासुरनरनिकराक्षेपः श्रीवासक्षेपश्चेक्रीयते स्मास्माभिः । ततश्च तत्र सविशेष-
श्रीवासक्षेपपूर्वं पूर्वप्ररोपितधर्मपथः विहितमहाविघ्नौघमाथः कलिकदमलक्षालनाद्वितीय-
पाथः श्रीप्रथमतीर्थाधिनाथः सविस्तरं निवेशयामहे ।

तदनु च मन्त्रीश्वरवीरा-मन्त्रिसारङ्गसुश्रावकयोः श्रीजिनधर्मप्रभावकयोः श्रीसङ्घाधी-
श्वर्याविर्भावको वासक्षेपः समसूच्यत ।

[मन्त्रिवीरा-मन्त्रिसारङ्गसंचालितशत्रुंजयतीर्थयात्रासंघप्रस्थानवर्णना ।]

§ २७. अनन्तरं ताभ्यां सङ्घपुरुषाभ्यां निजौदार्यगुणसमुत्पादितसुपर्वपादपुरुषाभ्यां परः-
सहस्रैर्महार्घयोग्यैरीश्वरलोकोपभोग्यैर्विशिष्टवसनैः, समतिक्रान्तगणनाप्रकारैः प्ररोप्यमा-
णयशःप्रासादानुरूपवृत्तस्वरूपकलसा(शा)कारैर्मञ्जुलसरसनालिकेरवारैः, अकीर्त्तिवर्त्तिका-
वित्रासनगुलिकोपमानैः समुल्लङ्घितप्रसृतिमानैः प्रत्यग्रैः क्रमुकवितानैः, कीर्त्तितरुणन-
र्त्तकीहरितांशुकपरिधानैः समस्तपत्रजातिप्रधानैः सारमरकतमणिपत्रविमलैरखण्डितैर्नाग-
वल्लीदलैश्च सत्कृत्य सकलं महाजनलोकम्; सविशेषपूजाप्रकारैरुचिताधिकोपचारैः श्रीचतु-
र्विधश्रीविधिसङ्घं च समाराध्य बहुविधप्रचुररुचिरचीरचामीकरालङ्कारप्रभूतसारासारैः अनु-
गृह्य च याचकनिकरम् श्रीनरसमुद्रं विमुद्रोन्निद्रैर्यशोराशितरङ्गैर्विलङ्घितमर्यादं व्यधीयत ।

ततश्च तस्मिन्नेवाहनि यामत्रयानन्तरं प्रसन्नतामुपेयुषि वासरातपे प्रशस्यवेलावसरे,
नगरत्रिकचतुःपथचत्वरशृङ्गाटकविसङ्कटीभूतेषु, हर्षायल्लकाकुलकलकलकलारवोन्मुखी-
कृतगगनचरेषु, पृथुलाभिख्यनेपथ्याभरणरमणीयेषु, मण्डलायितेषु परोलक्षेषु प्रजाव्रजेषु;
पौण्ड्रकिकेण भालस्थलेन, काज्जलिकेन नयनयुगलिकेन, पात्रलतिकेन कपोलमण्डलेन,
कौण्डलिकेन कर्णयुगेन, दैसिजालिकेन नासावंशेन, वार्त्तगुणिकेन वदनेन्दुना, मौक्ताहारि-
केण हृदयस्थलेन, काङ्कणिकेन करकमलप्रकोष्ठद्वितयेन, आज्जलीयकिकेन प्रदेशिनीसमूहेन,
माञ्जीरिकेण चरणयामलेन, पारिकर्मिकेण कामनीयाकल्पिकेन, औदाराकारिकेण लावण्य-

रसिकेन च शरीरेण समीक्षिषु पौरपञ्चजनराजिविलोललोचनेषु; देवभूयं देशतः कुर्वाणासु
 राशीभूतासु सीमन्तिनीमालासु वामकरकमलदलतलपिहितलपनेषु, दक्षिणकरैरुद्धप्रलम्बि-
 तैरन्तरिक्षपथायाममिव प्रमातुं प्रवृत्तेषु, दानशौण्डपुरुषमुखाभिमुखपुनःपुनःप्रेष्यमाणे-
 क्षणेषु, गाथार्यागीतिसुरीतिवृत्तकवित्वषट्पदादिबन्धुरबन्धमुक्तकप्रबन्धविचक्षणेषु विततो-
 दात्तस्वरेण पापत्रयमानेषु मङ्गलपाठकेषु, बहुतरकाम्बविक-तौरिक-दौन्दभिक-झार्झरिक-
 पाणविक-मार्दङ्गिक-वैणविक-वैपश्चिक-सौरनारिक-दौल्लिक-प्रमुखशिल्पिसङ्घाताहन्यमाननिज-
 निजानवद्यवाद्यवृन्दपरिस्फुटदस्फुटसाटोपध्वनिडम्बरप्रमुखरितपौरसुधाकुट्टिमहर्ष्येष्वपि-
 -‘साध्विदं साध्विदं; कियत इदं कियत इदं; समुचितमिदं समुचितमिदं; पुण्यमिदं पुण्यमिदम्’ - इत्येवमनुमति-
 दातृत्वमाश्रितेषु, प्रतिपदं मेदुरानन्ददायिषु लास्यताण्डवादिनृत्यं नरीनृत्यमानेषु कलाशा-
 लिषु खेलकेषु; अन्तरेण सङ्घपुरुषमन्दिरं पुरगोपुरं च सम्मर्दविगलितोष्णीषादिवसनशिरः-
 करोरःप्रभृतिनानाभरणेषु भूमितलभागमनुपेयिवत्सु, मिलितामितजनतातोद्यकोलाहला-
 रवप्राचुर्याद् विफलीभूते वचनव्यापारे, केवलं प्रवृत्ते भ्रूविक्षेपकरशिरःकम्पादिप्रकारेण प्रयो-
 जनसञ्ज्ञाव्यवहारे, अहमहमिकया त्वरमाणभूचरतुरगरथनिकरचरणचालितपुरःसञ्चारि-
 धूसरबहलरेणूत्करव्याजेन कौतुकधावमानस्खलितमानिनीजनश्रुतिहारविकीर्णमुक्ताफल-
 प्रवालकलधूतरजतादिमणिकजालव्याजरचितविभूषायां सहप्रस्थितायां तीर्थयात्रानुरागेण
 नगरवसुन्धरायाम्, क्रमेणान्तःपुरमेव विगलितेषु दिनकालकलालवकलापेषु, चिरं कुतूहल-
 मवलोक्य साद्भुतं वृत्तान्तं चिकथयिषाविव द्वीपान्तरं जिगमिषिते गभस्तिमालिनि, पुष्क-
 राजिरावलोक्यमानपरिमण्डराकालससच्छददलदयामलबहुलमायूरातपत्रमिषेण विहितवेष-
 परावर्त्तेषु समायातेषु श्रुतमहोत्सवनिदिध्यासासमुत्सुकेषु द्वीपान्तरविहारिहरिणलाञ्छनेषु,
 प्रसृमराशोकपल्लवारुणसायंतनरागदम्भेन निभालनाध्यवसितासु धृताङ्गरागासु विचित्रा-
 म्बरधारिणीषु दिग्वधूषु, क्षणेनास्ताचलचूलान्तरिततरणिपश्चिमारुणकिरणकिञ्चिदवकाश-
 कुवलयमालामलिनाङ्कुरिततिमिरवर्त्तिव्यासस्तोकोल्लसितसितकरोदयपिशुनपूर्वककुब्भास-
 विलासिविचित्रयोपदेशेनान्तरितदर्शनैः श्रीजिनशासनप्रभावनाप्रहृष्टैः साधर्मिकानुरागि-
 भिर्नभश्चरैः, श्रीसङ्घमहोत्सवसमवेतमानवश्रेणिपरस्परसम्बाधादिवातपवत्र्मश्रमसमुद्भूतो-
 ष्मस्वेदादिसन्तापनिर्वापेप्सया मोमुच्यमानासु गालितकुङ्कुममृगमदचन्दनद्रवसर्वतोधा-
 रासु, तदनु क्रमेण पूर्वदिग्वर्णिनीललाटपट्टरजततिलकायमाने प्रस्थितलोकसंमुखीनाजिग-
 मिषु, शुभायतिसूचिसुधारसधारावलीधवलितकल्याणकलशायमाने श्रीदेवालयप्रथमार्चि-
 चिषया प्राग्दिग्वनितया सहेलं गृहीतसचन्दनरसशुक्लीयमाने, सुमुदिते श्रीताराधिपतौ
 विमलोदयं समासेदुषि प्रस्फुरितवति च प्रतिदिशं प्रकाशायमाने, मूर्त्तिमति प्रतापानलकणो-
 त्करे इव जागरूकदीपिकाविताने; किं बहुना -

30

लोकास्तोकतया प्रवृत्तवति चासंवर्षभावेत्युरःपेषं वीक्ष्य विसंस्थुलाः प्रियतमाः सौवीः पराश्लेषतः ।

क्रुद्धा यत्र निवारिताः सहचरास्ताभिः प्रियाः साम्प्रतं, युक्तायुक्तविचारणा यदि भवेत् स्नेहाय दत्तं जलम् ॥५१॥

भावाः केऽपि बभूवुरत्र ननु ते जाते यदीयस्तवे, तावन्तो घटिता नु वाद्यविषयो येषामुदारैः स्वरैः ।

ते केऽप्युत्सवराशयोऽजनिषत प्रेक्ष्यात्र यान् किञ्चिदामूको जल्पति संश्रृणोति बधिरः पङ्कुरीनृत्यते ॥ ५२ ॥

तावल्लोकघटा निशम्य चलिता यस्मिंस्तडागस्थिता मार्गे शोषणदुःखिताः प्रतिदिनं सद्भोज्यलाभोत्सुकाः ।
 क्षुद्रैः श्रीव्ययशङ्किभिर्विघटिताः सेर्ष्यं ततो दुर्घटं मत्स्यी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥५३॥
 तत्र क्षणे संमुखमागतायाः कस्या मुखं दर्पणचारुदृष्टम् ।
 दृक्खञ्जनौ हास्यदधीनि सिद्धिं ब्रूते ब्रुवाते ब्रुवते मृगाक्ष्याः ॥ ५४ ॥

अपि च - क्रमात् -

रेणूत्करे प्रौर्णवितार्थजाते नावीक्ष्य तं दीपकिकाग्रजेन ।
 चोत्पादितेऽहर्मुखविभ्रमेऽपि चन्द्रोदये नृत्यति चक्रवाकी ॥ ५५ ॥
 आलोकितशेषकुतूहलेशावस्तंगते वीक्षकदेहभाजाम् ।
 प्रदर्शिताल्पोत्सवकस्तदानीमयं शशी वह्निकणान् प्रसूते ॥ ५६ ॥
 लोके विचित्रे मिलितेऽपि यत्रासमञ्जसत्वं न यशः प्रपेदे ।
 किं वा मृगाक्षीशतमेलकेऽपि रामामुखं चुम्बति कार्तिकेयः ॥ ५७ ॥

किं भूयसा -

तं देशं न मृशामि सौवमनसि प्रायो यदीया जनाः, अस्मिन् संमिलिता नहि व्यतिकरे सत्कौतुकान्वेषिणः ।
 नूनं तानि न कौतुकानि भवने जातानि यानीह नो, किं ब्रूमः किमु कुर्महे किमपरं लेखे लिखामोऽथवा ॥ ५८ ॥

*

इत्येवं प्रवर्त्तमानबहुविधप्रशस्यसमस्यापदपोषणार्थोल्लेखिस्वरूपनिकुरम्बप्रवर्द्धितसुधी-
 जनधिषणोन्मेषप्रसरे प्रकर्षं गतवति समस्ताश्चर्यप्रकरे - 'अहो अहो ! भाग्यम्, अहो अहो ! सौभाग्यम्,
 अहो अहो ! पुण्यप्रकर्षः, अहो अहो ! साहसोत्कर्षः, अहो अहो ! श्रीतीर्थयात्रारसतर्षः, अहो अहो ! सुगुरुवचनसंघर्षः ।
 वत वत ! यशस्विता, वत वत ! मनस्विता, वत वत ! महस्विता, वत वत ! प्रवीणता, वत वत ! उदारता, वत वत !
 चारुता, वत वत ! अगर्वता, वत वत ! आर्जवाखर्वता । कटारि कटारि ! राजप्रवादः, कटारि कटारि ! साधुवादः, कटारि कटारि !
 १५ प्रागल्भ्यम्, कटारि कटारि ! श्रीशासनप्रभावनावालुभ्यम्, कटारि कटारि ! वचनमाधुर्यम्, कटारि कटारि ! विवेकिता, कटारि
 कटारि ! विदग्धता, कटारि कटारि ! स्थैर्यम्, कटारि कटारि ! धैर्यम्, कटारि कटारि ! गाम्भीर्यम्, कटारि कटारि ! उद्भटता,
 कटारि कटारि ! पूर्वकृतसुकृतप्रकटता' - इत्येवं प्रतिजनं प्रतिवदनं प्रसर्पति श्रीसङ्घपुरुषस्य श्लाघोद्धोषे,
 सीमानं जग्मुषिरं सर्वरसपोषे श्रीशत्रुञ्जय-श्रीउज्जयन्तमहातीर्थद्वयारोहणार्थप्रस्थितश्रीसङ्घ-
 पतिप्रकटितरूपद्वयनिर्मलयशःपुञ्जानुकारिदधिदुग्धवार्द्धिडिण्डीरपिण्डपाण्डुरभद्रकरिकलभा-
 २० नुहारिदुर्द्धरभारधरणधौरेयधवलसबलकलकार्त्तस्वरच्छुरितसुस्वरघर्घावलीवलपितगलकन्द-
 लकौसुम्भांशुकशृङ्गारितशृङ्गाग्रभागमहाभागसु भगदर्शनार्हस्पर्शनार्हवर्णनार्हबृहद्देहश्रीगेह-
 स्थूलवृषणयुगलाकृष्यमाणस्य निजजातिलब्धसर्वगुणप्रमाणस्य स्वरूपसारङ्गलोचनाशरीर-
 स्येव दक्षिणावर्त्तभ्रमरमणीयनाभिचक्रस्पृहणीयस्य महारथस्य मध्यमारोपितस्य सुप्रसाधित-
 मनोहरनेपथ्यसुघटितसुवर्णरत्नालङ्कारभासुरीकृतप्रतीकप्रतानप्रधानसुरकुमारावतारमहे-
 ३० भ्यव्यवहारिकुमरचतुष्टयस्थूला मलकतुलितप्रमाणसरसमुक्ताफलकणाकलितकनककङ्कण-
 क्राणवाचालसुकुमारकरकमलप्रतिदिशचाल्यमानजाह्नवीसमुच्छलदधोगलज्जलकल्लोललीला-
 वलम्बिनिकुरम्बीकृतसूक्ष्मतन्तुमृणालजालाभधवलकुन्तलविशेषसंगुम्फितरोमगुच्छविक्षेप-
 प्रख्यापितसकलमहीवलयवर्त्तिसुविज्ञानविच्छित्तिविचित्रदेवालयकुलैकातपत्रैश्वर्यस्य असं-
 भाव्यशोभालयस्य श्रीदेवालयस्य निष्क्रमणमहोत्सवो बोभूयाम्बभूव ।

[पत्तननगरादारभ्य शत्रुञ्जयगिरिं यावत् मार्गगतप्रयाणस्थानवर्णनम् ।]

§ २८. निष्क्रम्य च श्रीनरसमुद्रपुरगोपुरात् क्रमक्रमेण पुरतः पुरःसरैस्तन्नियोगनियुक्तैः साव-
हितैः पुरुषनिकरैः, ततोऽप्यग्रतो बृहद्भानुदेदीप्यमानदीपिकाप्रकरैः, ततोऽपि रोहिणीरमण-
मधुरसान्द्रचन्द्रिकाप्रसरैश्च प्रदर्श्यमानमार्गः, कुमरगिरिग्रामपरिसरे प्रथमप्रयाणमकार्षीत् ।

अनन्तरं सङ्घपुरुषप्रहितभूर्तिमयात्मीयहृदयङ्गमसाधर्मिकानुरागतरङ्गोच्छलच्छीकरा-
कराकारकाश्मीरजरसच्छटाच्छोटनलगितशोणबिन्दुमण्डलीकर्बुरितनयनाह्लादकारिकज्जलज-
मलिनाम्बुधाराविरचितवर्णावलीपवित्रसप्रणयलिखितकुङ्कुमपत्रिकापङ्क्तिसमाहृत-गौर्जर-
मरु-मेदपाट-सपादलक्ष-माड-सिन्धु-वागड-श्रीकौशलादिमहामण्डलनिवासिलोकसमायात-
कतिपयविषयजनपरिवृतेन, कणेह्यभोजितसमस्तनागरजनजातिविततवासोवितरणप्री-
णिताशेषदर्शनप्रदेदीप्यमानप्रशस्याशीर्वचनपीयूषप्रवाहस्त्वप्यमानभाग्यसौभाग्यपुण्ययशो-
मण्डलेन सङ्घपुरुषमन्त्रीश्वरवीरासुश्रावकेण सह वयमपि सपरिवारा माधवमासप्रथमतृती-
यादिने तत्रैव प्रथमप्रयाणे प्रबभूवांसः ।

§ २९. ततस्ततः प्रस्थितः श्रीसङ्घः श्रीसलक्षणपुरे मन्त्रि-सं० गेहाङ्गज-मन्त्रिङ्गरकारितसवि-
स्तरतराश्रीप्रवेशकोच्छ(त्स)वपूर्वं प्रविश्य समुच्चशृङ्गस्खलितनिरवधानगगनचरस्वरिताविहारे
बहुसमाकारितसर्वजन्तुजातामारिघोषणापोषिताकल्पानल्पकीर्त्तिकीर्त्तनीयसं०सा० कोचर-
विरचितोद्वारे श्रीविधिविहारे तत्पुण्यपुरुषविशदयशोमुक्ताहारशृङ्गारणोदारेन्द्रनीलमय-
नायकमणिसोदरं प्रभावभरितब्रह्मस्तम्बोदरं सैन्धवाभिधानं श्रीपार्श्वजिनवरं नमस्कृत्य,
स्नानविलेपनमहापूजामहाध्वजावारितशत्रुमार्गणद्रविणपोषणादिप्रकारैः श्रीजिनशासनं स-
मुन्नतिं प्रापय्य, दिनद्वयानन्तरं श्रीशङ्खपुरवरे वरेण्यलावण्यपुञ्जविराजितनिरन्तरजागरूक-
प्रौढराढाकेलिसदनसौववदनविडम्बितपार्वणसुधाकरमण्डलम्, लोचनपथविषयीभावमा-
त्रेण विद्रावितोपद्रवमण्डलम्, अहर्निशदासायमानमानवदानवदेवम्, सुरभूरुहमिवावन्ध्य-
सेवम्, श्रीपार्श्वनाथदेवं सादरं नमस्यित्वा, तद्भवने महाध्वज-महार्चा-गीतनृत्यावारितशत्रु-
सकलार्थिसन्तोषणादिविधिभिरगण्यपुण्यरोचिष्णुयशोराशीन् समतिक्रान्तसीमासमुद्रान्
समचेचायीत्, अनेनायीच्च धन्यतां दिनचतुष्टयीं तत्र ।

§ ३०. ततश्च श्रीपार्श्वजिनसौम्यदृष्टिप्रसादविहिताङ्गरक्षः श्रीसङ्घः श्रीपाटल-श्रीपञ्चासर-
ग्रामयोः श्रीनेमिजिन-श्रीवर्द्धमानजिनौ साहमहमिकं प्रणम्य, प्रातर्मण्डलग्रामे साटोपमा-
वेशनिकां व्यरीरचत् । तत्र च महाविस्तरेण बलाधिकसा० कडुयासुश्रावकस्य पाश्चात्यपद-
वीप्ररोपः, तथा वाग्भटमेरवीयपरीक्षिविक्रमसैन्धवसा०राजा-पत्तनीयसा०कान्हड-स्तम्भ-
तीर्थीयश्रे०गोवलसुश्रावकाणां च महाधरपदसंस्थापकः श्रीवासक्षेपोऽस्माभिश्चेत्कीयाम्ब-
भूवे । तदनु सं० वीराकेण पटकूलकायावृत्तिप्रभृतिशृङ्गारप्रदानेन सम्मानितास्ते विशेषश्री-
देवगुरुभक्तिसाधर्मिकाराधनतर्षकतोषणादिमहिमाभिः श्रीशासनयशः साधिकं सप्रका-
शमकार्षुः । तथा सखकीयवर्गानुयायिलोकसङ्कुलसधरलक्षमणापरपक्षीयमुख्यश्रावकत्रयस्य
सङ्घपतिपदसंस्मृचकं श्रीतिलकं विधाय मन्त्रिसङ्घपुरुषवीरासुश्रावकेण सङ्घपतिपदस्थापना-

चार्यविरुदोपार्जना सहचरीचक्रे । तथा सकलजनमनोरञ्जकस्य निर्मेरश्रीदेवगुरुश्रीगच्छभ-
क्तिकान्तानितान्तैकान्तवशीकृतमनोभावस्य श्रीखरतरसङ्घसुवर्णसुवर्णप्रभावप्रकटीभावप-
रिज्ञानकषपटस्य ऐषमस्त्याधुनिकश्रीसङ्घविशेषयशःसौभाग्यस्योत्तेजकस्य श्रीशत्रुञ्जयाचल-
चूलाचूडायमानश्रीमानतुङ्गविहारभूहारायमाणश्रीयुगादिजिनसंस्थापनसञ्चितसुकृतसम्भा-
रस्थिरीभूतयशःशरीरसाधुतेजःपालसुश्रावकाङ्गजन्मनः प्रतिप्रभातप्रभूतसन्मानदानपूर्व-
भोजनादिप्रकारप्रीणितवनीपककलापकलापिमण्डलाभिनन्द्यमानसुवर्णवादाम्बुदस्य सा०
कटुकसुश्रावकमधुरस्य सर्वश्रीसङ्घस्य मध्ये सर्वकार्येषु प्राधान्यमजनिष्ट । एवमभूत् सक-
लोऽपि रङ्गः प्रकृष्टः, बत श्रीखरतरश्रीसङ्घः सर्वत्रोत्कृष्टः । ततः प्रत्यूषे सामस्येन प्रस्थितो
म्यानद्वापदेशस्योपकारं बहुदिनानि निर्मायात्र मिलितोऽनुपदीनोऽस्माकमुद्यतविहारी

॥ पं० हर्षचन्द्रगणिः ।

§ ३१. अथानन्तरं च प्रचलदुच्चैस्तरशिखरचारुदेवालयचतुष्टयोपरिवर्त्तिनीभिर्वैजयन्तीभिः
शब्दायमानकिङ्किणीकोलाहलच्छलेन स्वसखीप्रायतारकदिव्यविमानशृङ्गसङ्गतवैजयन्तीनां
वर्त्तमानस्वरूपाणां वाचिकानीव पुनः पुनः कथयन्तीभिर्नभश्चरैः सातिशयशोभः, चलच्चक्रची-
त्कारमिषेण—‘धन्योऽसौ यत्प्रसादेनास्माकमचेतनानामपि श्रीतीर्थयात्रा जघटे’—इत्येवं परस्प-
रस्पृष्टयेव तद्वर्णनचर्चा कुर्वाणैः शकटसञ्चरैः संकुलः, विस्मारितसञ्छायमन्दिरौदरैर्बहुलश-
य्यापालैर्विपुलः, अनवस्थितजनाशाभिरिव दूरं धावमानाभिर्वाहिनीभिरभिलषणीयः, चिर-
कालचित्तसञ्चितश्रीतीर्थयात्रामनोरथैरिव सवपुलतैर्नृत्यचतुरतुरङ्गमैः प्रथमं गन्तुं पुरः प्रस-
र्पद्भिः प्रोत्साह्यमानः, सशिरस्त्राणैर्वर्मितवपुर्भिः क्षत्रियसुभटैर्विघटितपरबलशङ्कः, प्रति-
मुहूर्त्तवाद्यमानभेरीढोलोलबणखरसुरनारिकादिवाद्यनिनादोत्पादितपर्यन्तग्रामाकस्मिकात-
कितायातपताकिन्यातङ्कः, प्रभूतसर्वाभिसारसञ्चरिष्णुविकरालकरवालशेल्लतरवारिप्रमुख-
हेतिविततिविस्तरत्तेजःपुञ्जतरलिततनुलतिकपादातिक्रजैः पुरोऽनुगम्यमानः, प्रतिग्रामकुतु-
कावलोकनागतजनताप्रथमनेत्रविप्रतारणचतुरविकटप्रकटोन्नतावयवसमवयैः श्रीसङ्घसौ भा-
ग्यासहिष्णुदुर्मनायितागतदुर्जनमनोरथस्खलनमूर्त्तिमदपायैः निजदर्शनस्पर्शनपरिमलवर्ध-
रखरादिभिः श्रीसङ्घस्य निर्धारितपरकृतचक्षुर्दोषादिकोपप्लवोपायैः प्रतिदिनसमग्रश्रीसङ्घसा-
मग्रीभारवहनाध्यवसायैः क्रमेलकनिकायैर्विस्मयं विदधानः, प्रतापाकृष्टैरिव सौभाग्यवञ्चितै-
रिव प्रतिप्रयाणं नगरग्रामग्रामीभिरुपनीयमानप्रधानतुरगादिकौशलिकेन खोत्तमनायकेन
प्रकर्षप्राप्तप्रतिष्ठां वहमानः, कविवाणीभिरिव मधुररसवर्षिणीभिः सुरभिसैरिभीभिरभिसा-
र्यमाणः, प्रष्टौहां समूहैर्विस्तार्यमाणायामः, प्रतिसंनिवेशं प्रतिवासरं श्रीदेवालये सविस्तरत-
राष्ट्राहिकापूजाभिषेकगीतनाट्याहर्निशहल्लीसकादिमहामहिमाविलासैर्विशेषाभिरम्यभावं
वेञ्चीयमाणः, सत्कीर्त्तिमण्डलैरिव गुणविधीयमानविस्तारैः विशालवंशाधारैः बहुप्रकारैः
शारदाभ्रशुभ्रदेहद्युतिवारैः केवलं परिमितमेदिनीप्राप्ताच्छादनप्रचारैः प्रधानपटकुटीपटमण्ड-
पपटभित्तिप्रतिसीराप्रमुखमार्गोपयोगिहर्म्यनिकरैर्द्विधापि सञ्छायः, विशेषतोऽभिमुखाग-
तेन सौराष्ट्रमण्डलतः अन्तरा भडियाउद्रस्थानमिलितेन सुराष्ट्रमण्डलाधीशमनःप्रसादपु-
ण्डरीकसरोवरेण परोपकारादिबहुप्रकारगुणव्रजावर्जितनिखिलप्रजेन स्वकीयस्वापतेयव्यय-
करणसमुद्धारितश्रीअजागृहपुरश्रीपार्श्वजिनप्रासादसत्कमण्डपदेवकुलिकादिबहुविधस्थानेन

सरलताधिष्ठितगात्रेण उदारतापूरितमनःपात्रेण सन्तापोच्छेदनिमित्तसंसेव्यमाननिरन्तरस-
रससामोदशिशिरश्रीदेवगुरुभक्तिचारुचन्दनेन मन्त्रीश्वरमुंजालदेवनन्दनेन सं० वीराग्रजेन
तत्कालशुभंयुतयाऽक्षततृतीयादिने मुख्यसङ्घपतिप्राग्भाराविर्भावकास्मत्कृतश्रीवासक्षेपप्ररो-
पिताधिकप्राभवेण सङ्घपुरुषमन्त्रिपूर्णसुश्रावकेण सम्पूर्णा सनायकतां दधमानः श्रीसङ्घः
सुखंसुखेन प्रयत्नेन पथि वहन् श्रेणीभूतप्रवररथसमाजव्याजविरचितजङ्गमसेतुबन्धबलेन 5
समुत्तीर्य दुर्गमदुस्तरमहारणार्णवम्, श्वस्तनेऽहनि घोघावेलाकूलस्थाने महत्तरप्रवेशकमहो-
च्छ(त्स)वपुरस्सरं श्रीनवखण्डपार्श्वजिनाधिराजं प्राणंनम्यत ।

[श्रीशत्रुञ्जयगिरिपरिसरकृतसङ्घशिविरनिवेशवर्णनम् ।]

§ ३२. एवंविधेषु हर्षकल्लोलेषु जायमानेषु, विशेषतस्तत्र गोक्षीरपानान्तःशर्कराशिलाकाग-
मोपमः, रसारूढव्याख्यानान्तःप्रस्तुतार्थपोषिमधुरसुभाषितोल्लापसमानः, आह्लादभन्द- 10
जनकः, श्रीगच्छकार्यप्राग्भारनिर्वाहणविहितास्मत्साहायकानां समग्रविद्यानदीनदीवल्लभ-
प्रायाणां श्रीविनयप्रभमहोपाध्यायानां सङ्गमो घनतरदिनेष्वभवत् ।

§ ३३. तदनु च प्रस्थाय ततश्चारुदारुकरिदन्तरचनाविशेषशंसनीयसुखासनचामीकरच्छुरित-
दण्डचामरावलीविशालमायूरातपत्रादिनानाचिह्नैः सम्भावितमहाराजसैन्यविभ्रमः श्रीसङ्घ
उपश्रीविमलाचलपरिसरं शिविरमकरोत् । जातश्च प्रभातसमये चारिमास्पदं तत्कालमही- 15
वलयान्तराविभूत आनन्दकन्द इव, संसारसागरपरिभ्रमणखिन्नप्राणिगणविश्रामान्तरीपाव-
तार इव, चातुर्गतिकदुःखपारावारपरपारप्रापणसेतुबन्ध इव, दुर्गमभीष्मभवारण्यविहारि-
रागद्वेषकषायहृषीकमहादस्युपेटकवित्रासितानां जन्तुजातानां शरण्यदुर्ग इव, शिखराव-
सानसमासीनपीनसुधापङ्कशुक्लिततुङ्गविहारवारनिभेन निःसीमात्मीयमहिमाधरीकृताखि-
लवसुन्धराधरजयार्जिते धवलयशःपुञ्जमिव नित्यं मूर्त्तिमन्तं निदेधीयमानः, दूरादवेक्ष्य- 20
माणश्चेतप्रान्तवर्त्तिसार्वमन्दिरनिकुरम्बेण समुदयमानतुषारमयूखमण्डलेनोदयभूधर इव
दृश्यमानः, उज्ज्वलकेवलिमहालयच्छलेन भोगीन्द्र इव विकासिकुसुमशेखरं शिरसि संय-
मितं वहमानः, किं वा योगीन्द्र इव बहुसमयाभ्यस्तं प्रकटीभूतं मूर्त्तिधारिणं शुक्लध्यान-
पिण्डमिव ग्रसमानः, किं वा सङ्ख्यातीतखकीयवित्तव्ययीकरणेन विक्रीषूणां महीयोव्यव-
हारिपुरुषाणां मुक्तिक्रयाणकं तद्वर्णिकामिव प्रांश्वकृतशृङ्गकरेण प्रदर्शयन्, किं वा श्रीसङ्घ- 25
समागमसमुत्थं हर्षप्रकर्षं बहिः किरन्, किं वा स्वं प्रति लोकत्रयीलोकविहितेन सादरपूजा-
सन्मानेनात्मानं बहुमन्यमान इवापरपर्वतानामवहीलनाय स्फुटादृहासमिवोद्वमन्, ईषदु-
न्मिषददभ्रदर्भाङ्कुरप्रकरदम्भेन खसमीपवर्त्तिनं श्रीसुविधिसङ्गमवलोक्य प्रीणितान्तर
इव रोमाश्रसश्रयं विष्वक्दु(?)द्वहन्; किं बहुना-देवदानवमानवमनोऽसम्भाव्यप्रभाववि-
भवः; यतः-

अस्य प्रभावजलधेरपरं पराप्यते, पारं कथं कथमहो ! नु नृदेवमात्रकैः ।

ख्यातिं गतस्त्रिभुवनेऽत्र दृषन्मयोऽपि यः, सर्वाङ्गिलोचनसुखाय सुधारसायते ॥ ५८ ॥

मन्येऽहमस्य महिमा परमाणुदृश्वनामप्यास्पदं नहि करोति धियं ह्यचिन्त्यभूः ।

सन्तारणाय जगतामचलाश्मकोऽपि यः, पोतायते निपततां भवभीष्मसागरे ॥ ५९ ॥

सरलताधिष्ठितगात्रेण उदारतापूरितमनःपात्रेण सन्तापोच्छेदनिमित्तसंसेव्यमाननिरन्तरस-
रससामोदशिशिरश्रीदेवगुरुभक्तिचारुचन्दनेन मन्त्रीश्वरमृंजालदेवनन्दनेन सं० वीराग्रजेन
तत्कालशुभंयुतयाऽक्षततृतीयादिने मुख्यसङ्घपतिप्राग्भाराविर्भावकास्तकृतश्रीवासक्षेपप्ररो-
पिताधिकप्राभवेण सङ्घपुरुषमन्त्रिपूर्णसुश्रावकेण सम्पूर्णा सनायकतां दधमानः श्रीसङ्घः
सुखंसुखेन प्रयत्नेन पथि वहन् श्रेणीभूतप्रवररथसमाजव्याजविरचितजङ्गमसेतुबन्धवलेन 5
समुत्तीर्य दुर्गमदुस्तरमहारणार्णवम्, श्वस्तनेऽहनि घोघावेलाकूलस्थाने महत्तरप्रवेशकमहो-
च्छ(त्स)वपुरस्सरं श्रीनवखण्डपार्श्वजिनाधिराजं प्राणंनम्यत ।

[श्रीशत्रुञ्जयगिरिपरिसरकृतसङ्घशिविरनिवेशवर्णनम् ।]

§ ३२. एवंविधेषु हर्षकल्लोलेषु जायमानेषु, विशेषतस्तत्र गोक्षीरपानान्तःशर्कराशिलाकाग-
मोपमः, रसारूढव्याख्यानान्तःप्रस्तुतार्थपोषिमधुरसुभाषितोल्लापसमानः, आह्लादभन्द- 10
जनकः, श्रीगच्छकार्यप्राग्भारनिर्वाहणविहितास्तसाहायकानां समग्रविद्यानदीनदीवल्लभ-
प्रायाणां श्रीविनयप्रभमहोपाध्यायानां सङ्गमो घनतरदिनेष्वभवत् ।

§ ३३. तदनु च प्रस्थाय ततश्चारुदारुकरिदन्तरचनाविशेषशंसनीयसुखासनचामीकरच्छुरित-
दण्डचामरावलीविशालमायूरातपत्रादिनानाचिह्नैः सम्भावितमहाराजसैन्यविभ्रमः श्रीसङ्घ
उपश्रीविमलाचलपरिसरं शिविरमकरोत् । जातश्च प्रभातसमये चारिमास्पदं तत्कालमही- 15
वलयान्तराविभूत आनन्दकन्द इव, संसारसागरपरिभ्रमणखिन्नप्राणिगणविश्रामान्तरीपाव-
तार इव, चातुर्गतिकदुःखपारावारपरपारप्रापणसेतुबन्ध इव, दुर्गमभीष्मभवारण्यविहारि-
रागद्वेषकषायहृषीकमहादस्युपेटकवित्रासितानां जन्तुजातानां शरण्यदुर्ग इव, शिखराव-
सानसमासीनपीनसुधापङ्कशुक्लिततुङ्गविहारवारनिभेन निःसीमात्मीयमहिमाधरीकृताखि-
लवसुन्धराधरजयार्जिते धवलयशःपुञ्जमिव नित्यं मूर्त्तिमन्तं निदेधीयमानः, दूरादवेक्ष्य- 20
माणश्चेतप्रान्तवर्त्तिसार्वमन्दिरनिकुरम्बेण समुदयमानतुषारमयूखमण्डलेनोदयभूधर इव
दृश्यमानः, उज्ज्वलकेवलमहालयच्छलेन भोगीन्द्र इव विकासिकुसुमशेखरं शिरसि संय-
मितं वहमानः, किं वा योगीन्द्र इव बहुसमयाभ्यस्तं प्रकटीभूतं मूर्त्तिधारिणं शुक्लध्यान-
पिण्डमिव ग्रसमानः, किं वा सङ्ख्यातीतस्वकीयवित्तव्ययीकरणेन विक्रीषूणां महीयोव्यव-
हारिपुरुषाणां मुक्तिक्रयाणकं तद्वर्णिकामिव प्रांश्वकृतशृङ्गकरेण प्रदर्शयन्, किं वा श्रीसङ्घ- 25
समागमसमुत्थं हर्षप्रकर्ष बहिः किरन्, किं वा स्वं प्रति लोकत्रयीलोकविहितेन सादरपूजा-
सन्मानेनात्मानं बहुमन्यमान इवापरपर्वतानामवहीलनाय स्फुटाट्टहासमिवोद्गमन्, ईषदु-
न्मिषददभ्रदर्भाङ्कुरप्रकरदम्भेन स्वसमीपवर्त्तिनं श्रीसुविधिसङ्घमवलोक्य प्रीणितान्तर
इव रोमाञ्चसञ्चयं विष्वक्दु(?)द्रहन्; किं बहुना-देवदानवमानवमनोऽसम्भाव्यप्रभाववि-
भवः; यतः-

अस्य प्रभावजलधेरपरं पराप्यते, पारं कथं कथमहो ! नु नृदेवमात्रकैः ।

ख्यातिं गतस्त्रिभुवनेऽत्र दृषन्मयोऽपि यः, सर्वाङ्गिलोचनसुखाय सुधारसायते ॥ ५८ ॥

मन्येऽहमस्य महिमा परमाणुदृशनामप्यास्पदं नहि करोति धियं ह्यचिन्त्यभूः ।

सन्तारणाय जगतामचलाश्मकोऽपि यः, पोतायते निपततां भवभीष्मसागरे ॥ ५९ ॥

सर्वत्र सन्ति बहुधा जिनराजमूर्तयो, लोकाः परं यदिह सर्वदिगन्तवासिनः ।

हर्षात् समेत्य रचयन्ति तथा प्रभावनां, शङ्के तदस्य सकलं महिमाविजृम्भितम् ॥ ६० ॥

एवंविधः समग्राग्रजाग्रदद्भुतातिशयवसतिः श्रीशत्रुञ्जयोर्वीधरः सकललोकलोचना-
म्भोजगोचरः स्फारीवभूव चास्य मनसि तत्तादृशाह्लादोत्करः । विशेषेण स्निग्धलपनेप्सि-
तासरसनालिकेरकमुकादिभिः पूजाविधानेन प्रथमोत्साहविधीयमानामितवित्तदानेन च
परमहृदयङ्गमभावोल्लासनेन च अकृतसुकृतराशीनां दुर्लभं श्रीसिद्धाचलदर्शनं फलिनं
चकार श्रीसङ्घः ।

§ ३४. तदनु च क्रमेण श्रीपादलिप्ते पुरे त्रिकरणविशुद्धिकारिणं त्रिभुवनसाम्राज्यवितारिणं
श्रीमूलविहारस्थश्रीपार्श्वजिन-ललतासरः कण्ठस्थापिप्रासादप्रसाधि श्रीवर्द्धमानप्रभुपर्वतपद्या-
मुखविभूषि श्रीनेमीश्वरार्हत्रयसङ्गमं वन्दननमस्करणरूपनपूजनमहाध्वजारोपनिरन्तरजन-
भोजनादिविधानैः फलदायिनं यशोदायिनं निरमासीत् ।

[सङ्घकृतशत्रुञ्जयपर्वताधिरोहणवर्णनम् ।]

§ ३५. ततश्च श्रीसङ्घः प्रमथ्य प्रथीयः कलिकालबलं मृदित्वा दुर्दमवाहीकान्तरासहनानां च
बलम्, प्रबलप्रमदाकुलितहृदयः प्रगुणीकृतमहोद्यमहयः सज्जितप्रायोगिसदुपकरणनिचयः
श्रेणीकृतबालवृद्धतरुणजनचयः करगृहीतसधरभारक्षमसरलसुकुमालयष्टिकावलीविरली-
भूतविषममार्गस्खलनभयः प्रतिपदप्रवर्द्धमानजिनदर्शनस्पृहालयः क्षणक्षणनिरावरणीभव-
ज्जिनदर्शनान्तरायक्षयविधायिपुण्यसमुदयः प्रेङ्खत्पदन्यासैरचिरेणैव प्रभुगुणैराकृष्यमाण
इव श्रीभूधरमूर्द्धानमध्यारुक्षत् ।

§ ३६. तदनु समतिक्रान्तपुरःस्थशृङ्गोऽकस्मादुन्नमितग्रीवसमुदाक्रान्तबहुलशैवलपटलः सार-
समतस्य इव शारदपूर्णमासीनिशीथशोभिनं तारतारकनिकरपरिवारितं सुधामयूखमण्डलम्,
दूरीकृतावरणपरिच्छदनवोत्पन्नगीर्वाण इव नानाप्रकारसारविहारशालागवाक्षादिचक्षुष्यस्था-
नादिहृदयङ्गमं दिव्यविमानम्, विघटितघातिकर्मचतुष्टयमुनीन्द्र इव सानन्तालोकं चतुर्दश-
रज्ज्वात्मकलोकम्, अनेकदेवगृहिकामठमन्दिरगवाक्षचतुष्टिकादिव्यदेवकुलावलीचारुप्राकार-
तोरणादिसुन्दरम्, दर्शिताद्वैतवादं श्रीमूलप्रासादं समीक्ष्य; किमेतत् किमेतदिति हर्षाश्चर्य-
कुतूहलकलितमनाः प्रथमं प्रथमकारणं सकलतीर्थाणां सकलजगज्जननीं भगवतीं मरुदेवीं धुरी-
णकेवलज्ञानसिद्धिस्थाननिमित्तास्थानावस्थितां समुपास्य; ततश्चाग्रतोऽभ्रंलिहविहारोदरविरा-
जिनम्, समस्तविद्यामन्त्रौषधरसरसायनसाधनविधिसाधीयः प्रतापिसौम्यलोचनविलासम्,
महाप्रभावितया प्रतिप्रभातं प्रभाभर्त्रापि प्रथमं करजालाश्लेषमिषेण प्रत्यग्रप्रसूनमालाभिरि-
वाभ्यर्च्यमानम्, प्रतिशुक्लपक्षं राकाबलक्षत्विषापि सौवचन्द्रिकाचयादिमपरिचयव्याजेन सु-
धारसधाराभिरिवाभिषिच्यमानम्, कलौ कल्याणाकरम्, अद्भुताकृतिधरं श्रीशान्तिजिनवरं
सादरं समाराध्य च; क्रमेण नानाविधमनोहरप्रासादसौन्दर्यामृतरसं नेत्रपुटकैरास्वादयन्
कुक्कर्मभिः सह नृत्यमानचञ्चरणैः पद्यापथकर्करोत्करं परिचूर्णयन् क्षणात्परमपदपुरप्रतो-
लीमिव प्राकारद्वारमविक्षत् । ततोऽपि वामदक्षिणपृष्ठपुरोभागविभ्राजिष्णुश्रीखरतरविहार-
श्रीनन्दीश्वरेन्द्रमण्डपोज्जयन्तावतारादिश्रीखर्गारोहण-त्रिलक्षतोरणादिस्थानरामणीयक-

निरीक्षणेन निजनयनानि वचनागोचराद्भुतरसामृतदीर्घिकासु चेक्रीडयमानः पुलकाङ्कुर-
पक्ष्मलवपुर्महानन्दमन्दिरारोहणारोहणपद्धतिष्विव सोपानपङ्क्तिषु स्पर्द्धया चटन् विहार-
मण्डपाङ्गणभूमिषु जगाम ।

[शत्रुञ्जयतीर्थाधिष्ठितश्रीयुगादिजिनदर्शनजाताह्लादादिवर्णनम् ।]

§ ३७. दृष्टश्च सकलेन्द्रियाप्यायकः सकलत्रिलोकीमूलनायकः सकलश्रेयःश्रेणिप्रायकः सक-
लशर्ममालाप्रदायकः सकलापायनिकायत्रायकः सकलकलाधायकः वर्णनीयरूपः अवर्णनीय-
स्वरूपः सुखेन प्रणेमुषां प्राणिनां रागद्वेषद्विषन्तौ निग्रहीतुम्, इहलोकपरलोककामितार्थौ
समर्थयितुम्, लोकद्वयभये निराकर्तुम्, बहिरन्तः पवित्रयितुम्, स्वर्गापवर्गमार्गौ प्रदर्शयितुम्,
द्रव्यभावपूजे अङ्गीकर्तुम्, गृहीतरुचिरोद्धरद्विरूपो जगदादिमभूपो मारुदेवः श्रीयुगादि
देवः । ततश्च-

वरप्रणामैः पञ्चाङ्गैरष्टाङ्गैरपि कैश्चन । दण्डप्रणतिभिः कैश्चित् स्पृशद्भिर्मेदिनीतलम् ॥ ६१ ॥
जैनदर्शनपाथोधिहर्षोल्लोलैर्विलोलितैः । सर्वतो लुठनैः कैश्चिद् बालकैरिव भूतले ॥ ६२ ॥
कोशीभूताम्बुजाकारैः करैः शिरसि रोपितैः । नमो नमो जिनायेति जल्पद्भिर्भासुरैः स्वरैः ॥ ६३ ॥
नामं नामं निजं शीर्षं भूयो भूयः प्रहर्षुलैः । कैश्चिदेवं प्रणम्योच्चैर्भावभङ्गीतरङ्गितैः ॥ ६४ ॥
सौरभाभोगसंयोगभरिताशेषदिङ्मुखैः । चारुवल्लीदुमोद्भूतैः कौसुमैर्मालिकाचयैः ॥ ६५ ॥
प्रत्यग्रनागवल्लीनां दलैः पूगीफलैः कलैः । सारगन्धरसाकारैर्नालिकैरैर्मनोहरैः ॥ ६६ ॥
सञ्जातपुलकाङ्कुरैर्भक्तिपूरैर्भृतान्तरैः । बीजपूरैर्गुणादूरैः परैश्च विपुलैः फलैः ॥ ६७ ॥
नवाङ्गयुक्तैरप्येकैरद्वैतोदारतान्वितैः । नवाङ्गमुक्तैः सुव्यक्तैरन्यैः सौवर्णटङ्ककैः ॥ ६८ ॥
प्रसूनैः काञ्चनैः काम्यैर्लोकलोचनषट्पदैः । मुक्तातारैर्महाहारैर्वृत्ताकारैर्विशेषकैः ॥ ६९ ॥
अहो ! नयनसौम्यत्वमहो ! आस्यप्रसन्नता । अहो ! भालविशालत्वमहो ! नीरागता तनोः ॥ ७० ॥
अहो प्रभावप्राकट्यं विश्वैश्वर्यमहो ! अहो ! । अहो ! जगति पूज्यत्वमहो ! जगति गौरवम् ॥ ७१ ॥
अहो ! दयालुता काऽपि काऽप्यनिद्रालुता रुचि । शरण्यजनरक्षार्थं काऽप्यहो ! स्पृहयालुता ॥ ७२ ॥
इत्थं यथास्थितस्थूलगुणाविर्भावनापरैः । अर्थच्छन्दोऽक्षरन्यासविद्वज्जनमनोहरैः ॥ ७३ ॥
शुश्रूषुजनताश्रोत्रपीयूषरसवर्षिभिः । मेघगम्भीरनादेन कविभिश्च स्तवैर्नवैः ॥ ७४ ॥
संसारवासनापूरहृत्पूरापहृतात्मनाम् । सशर्करपयःप्रायद्वग्विलासमुखप्रभः ॥ ७५ ॥
ऐहिकामुष्मिकानेककामितार्थसुरद्रुमः । श्रीसङ्घेनैवमाह्लादाद् भेटितो भुवनाधिपः ॥ ७६ ॥

[सङ्घपतिमन्त्रिपूर्णमन्त्रिवीराकृततीर्थमहिमा - मालारोपणमहोत्सवादिवर्णनम् ।]

§ ३८. अनन्तरं च सङ्घपुरुषमन्त्रिपूर्ण-वीराभ्यां सकलश्रीसङ्घसहिताभ्यां निरन्तरं सुगन्धि-
जलस्नपनचारुकाचघनसारमृगमदमिश्रितचन्दनद्रवविलेपनबहुलपरिमलाकृष्टासंनिकृष्टदिग-
न्तरसञ्चारिचञ्चरीकगणगीयमानगुणगणविकचचम्पककेतकविचकिलबकुलमालतीकुन्दमच-
कुन्दकलहारहीवेरकशतपत्रिकासहस्रपत्रिकाविकस्वरेन्दीवरप्रमुखपुष्पप्रकरकृतमहापूजन-
निजकीर्त्तिनर्त्तकीदिवारोहणार्थप्रलम्बितगुणायमानमहामूल्यमहाध्वजप्रदानप्रासादद्वार-
शृङ्गारतोरणायमानजगतीजनवितानमनोनयनविनोदनविच्छित्तिविज्ञानमनोज्ञहृदयहारि-

पापोपतापनिराकारिपुण्यबहुणश्रेणिप्रशंसाविस्तारिभरितश्रीचतुर्विंशतिजिनमूर्तिधारिप्रधानपट्टसूत्रमयसुरचितप्रधानपरिधापनिकावितरणश्रीजिनमज्जनावसरपरोपकरणरूपसुरूपरसितकलशभृङ्गारवारविश्राणननिःशेषसुषमास्पदालेख्यश्रीविशेषितरङ्गमण्डपसौभाग्योदयपट्टांशुकमयरुचिरचन्द्रोदयप्रदेशनादिघनतरप्रकारैर्विशेषतः श्रीमहातीर्थमहिमा स्फारीचक्रे ।

- ५ § ३९. तदनु विदधिरे मनोहल्यभोजितामितमानवज्ञातिप्रकारा यथेच्छदीयमानाहारा अवारितशत्रुवाराः । प्रददिरे चतुर्दिग्वलयमेराविलासिधवल्यशःप्रसरप्राप्तिप्रथमनिदानानि, त्रिलोकीतलनिलीनलोकमनोवशीकरणसातिशयरक्षाविधानानि, समूर्द्धकम्पं चमत्कारितस्थूललक्षलक्षहृदयानि, कम्पितमितम्पचानि, द्विविधरजतशृङ्गारसुकुमारचारुचीवरसंभारप्रभृतिप्रभूतदानानि मार्गणगणेभ्यः । प्रववृते श्रीमूलप्रासादादाप्राकारप्रतोलीं समन्तादेहिरेयाहिरा-
 १० प्रवृत्तैर्दिव्यशृङ्गारधारिभिः समृद्धलोकैस्त्रिदिवायिताधिकभूधराधित्यिकः श्रीइन्द्रमहोत्सवः । तथा पुनरपि श्रीमूलविहारे श्रीमूलनायकामृतमयप्रसन्नलोचनविलासविस्तारे सकलखपक्षपरपक्षहृदयाक्षेपकारी द्विजिह्वजिह्वास्तम्भकारी समस्ताधिष्ठायकमनःप्रीतिविस्तारी शब्दायमानमहावाद्यविताननादोत्पादितप्रतिनाददम्भेन जयवादप्रदानमुखरीभूतप्रासादमण्डपस्तम्भशिखरविवरदेवगृहिकादिस्थाननिकरः, विवर्णयिषुलब्धवर्णरसनाश्रमविधायी श्रीप्रतिष्ठा-
 १५ महोत्सवो ज्येष्ठवदितृतीयायां कारयांबभूवे ताभ्यां सङ्घपतिपुरुषाभ्याम् । प्रतेष्टीयाश्चक्रिरे तत्रास्माभिरष्टषष्टिबिम्बानि, प्रभाते च प्रशंसापदं महासविस्तरः श्रीमालारोपणमहोत्सवश्च व्यधीयत । तथा -

भूयोभिः किमु भूरियोजनमिताः पञ्चाप्यमी मेरवो, यत्र स्तम्भतुलां धरन्ति स कथं भो मानतुङ्गो बुधाः ।
 आ ज्ञातं समतीर्थधारकतया सौभाग्यलक्ष्म्या तया, तुङ्गोऽसौ भुवि पूजया तनुभृतां तेनास्तु सत्याभिधः ॥ ७७ ॥
 २० प्रासादाः प्रतिपर्वतं प्रतिपुरं सन्ति प्रभूताः परं, सौभाग्यं भुवि मानतुङ्गभुवनस्यैवाद्भुतं मन्महे ।
 यस्मात्स्थानकरामणीयकदिदृक्षार्थं विसृष्टं मनो-नेत्राभ्यां सहितं मुदा प्रथमतो दाधाव्यते तं प्रति ॥ ७८ ॥

- § ४०. एवंविधे निखिलतीर्थावतारे सर्वत्र प्रभविष्णुप्रभावभास्वरश्रीमत्स्वरतरगच्छमहामहिमसमुल्लासिपरमपूर्वपुरुषाधारे युगप्रधानश्रीजिनकुशलसूरिसुगुरुसुगुणयशोराजकुमारक्रीडाराजधानीप्रकारे श्रीमानतुङ्गाभिधानश्रीस्वरतरविहारे श्रीमूलप्रासादावतंसविशेषाः पूजादि-
 २५ महिमविधयो विनिर्मिमिरे सङ्घपुरुषाभ्याम् । प्रसादिताः सपर्याप्रकारैः समाराधकभविकाबन्ध्यप्रसादाः श्रीमज्जिनरत्नसूरिपादाः । अनन्तरं सर्वश्रीविमलाचलालङ्कारजिनविहारेषु महाध्वजारोपादिपूजा चक्रे । तथाऽस्माभिरपि पुलकाङ्कुरकोरकिताङ्गवारैः सपरिवारैः प्रतिप्रसादं प्रतिविम्बं प्रतिदिनं पञ्चशक्रस्तवदेववन्दननमस्कारस्तुतिस्तवनप्रणिधानविधानैस्तत्तादृशविशदपुण्योदयनिबन्धनश्रीसङ्घसहितसङ्घपतिविहितमहामहिमानुमोदनैश्च पवित्रपानी-
 ३० यस्नानैरिव निजात्मा विमलयांबभूवे ।

इत्थं दिनाष्टकं यावत् प्रमदोत्सुकैः सहर्षकोलाहलैः सुशृङ्गारोल्बणैर्यात्रागतलोकगणैः श्रीविमलाचलः श्रीतीर्थङ्कररूपनावसरमिलितैः सुरासुरसमूहैः सुराचल इव शुशुभे ।

[शत्रुञ्जयतीर्थयात्रानन्तरं गिरिनारतीर्थं प्रति प्रतिष्ठासोः संघस्य प्रयाणवर्णनम् ।]

§ ४१. तदनन्तरं श्रीसङ्घः समुत्तीर्य श्रीशत्रुञ्जयात् तत्प्रेमविरहकातरः श्रीउज्जयन्ताचलं प्रति प्रतिष्ठासुः पितृगृहात् सुदुस्त्यजात् श्वशुरगृहं प्रति प्रस्थितस्य वधूजनस्य भावं मानसे दधानः प्रचचाल । श्रीविनयप्रभमहोपाध्यायाश्च प्रत्यासन्नकाले श्रीतीर्थनमस्करणात् तदा शरीरस्यापि तादृक्सबलताया अभावाच्च पुनरपि प्रति श्रीस्तम्भतीर्थं प्राचाल्यन्त ।

§ ४२. प्रस्थितश्च श्रीसङ्घः प्रतिप्रयाणं नानास्थानमिलल्लोकव्राजैरन्तरा पुरग्रामस्वाम्युपनीय-मानतुरगादिवाहनसमाजैश्च प्रतिदिनं वलक्षपक्ष इव नवनवकल्लोलैरिव समुद्र इव वर्द्धमानः, प्रतिपदं श्रीखरतरगच्छमहिमानं प्रकर्षपदवीं प्रापयन्, वेगेन सरलसरससारसहकारादि-कारस्करप्रमदवनविनीलितपरिसरे श्रीअजातगृहपुरे प्रभूय प्रोत्तुङ्गतोरणमण्डपवातायनादि-पदरमणीये जनमोहनशोभासुन्दरे श्रीशिखरबद्धजिनमन्दिरे जीर्णमूर्त्तिं तरुणीयमानमहि-मस्फूर्त्तिं सेवकजनसाहाय्यकरं श्रीपार्श्वजिनवरं दिनत्रयं सादरं समुपास्य; तदनु संमुखायात-ज्जर्णापुराधिपानुमतः सविस्तरप्रवेशकोत्सवपूर्वं तन्नगरमतिक्रम्य; तदनु कोटीनारपुरे श्री-गिरिनारमहातीर्थाधिष्ठायिन्यास्तत्पथाध्वनीनश्रीसङ्घरक्षाविधायिन्याः श्रीनेमिनाथभक्तभ-व्याम्बिकायाः श्रीअम्बिकाया आराधनं विधाय; श्रीगौरवद्वारेण तत्साहायकं च समधि-गल्य; ततोऽपि च निरन्तरं सागरोत्तरोत्तरतरङ्गवृन्दविनोद्यमानप्राकारे श्रीदेवपत्तनपुरे पुरसारे जाज्वल्यमानमणिगणमण्डितमस्तकानामपि परमैश्वर्यराजिनामपि गर्वपर्वतप्रान्तवि-श्रान्तमनसकेशरिणामपि तृणायितेतरनराणामपि सङ्घस्याभूतपूर्वं श्रीसोमनाथविहारद्वारा-ग्रतो गणनमार्गातिक्रान्तक्षत्रियभूदेवजटाधरधोरणीवर्ण्यमानयशःप्रभावम्, तथा रीत्या, तथा स्फीत्या, तथा विच्छिन्त्या, तथा विभूत्या, तथा स्फूर्त्या, तथा कीर्त्या, मध्येपुरम् अन्तरा राजपथं श्रीप्रवेशकमहामहं समनुबोभूय, श्रीप्रासादेषु भीष्मभवव्यालमहादुःख-गरलमूर्च्छनाकुलभविकुलसमाश्वासनाय श्रीचन्द्रकान्तप्रक्षालजलसदृशदृष्टिविलासान् श्रीच-न्द्रप्रभस्वामिप्रमुखजिनवरान् प्रणम्य सहर्षम्; तदनु श्रीमाङ्गल्यपुरे संमुखागततदधिपानु-ज्ञातप्रवेशकमहःपूर्वं विप्रतिपित्सुमिथ्यादृष्टिजनश्रीजिनशासनाचिन्त्यशक्तिव्यक्तनाय प्रक-टितमूर्त्तिमत्प्रभावपल्लवं श्रीनवपल्लवपार्श्वनाथं नमस्कृत्य; वयं च श्रीविधिसमुदायं श्रीसमु-दायसहितसंमन्त्रिपूर्णेन कारितायां चारुदारुसुधारसादिप्रसाधितायां श्रीविधिमार्गपौषध-शालायां दिनत्रयावस्थानेन समनुगृह्य च; ततः प्रस्थाय प्रत्यूषे-

आ ! किं सारमसाररत्नघटितः किं वा सदान्दावृतः, किं वा क्रन्दितसालिभोजतनया नेत्राञ्जनैः पङ्कितः ।
किं दाह्यागरुभोगजन्मभिरहो ! श्यामायितोऽग्निध्वजैः, रित्थं संशयमावहन्तमचलं रैवन्तमालोकत ॥ ७९ ॥

[गिरिनारपर्वताधिरोहण - तदधिष्ठितश्रीनेमिजिनपूजा-महोत्सवादिवर्णना ।]

§ ४३. तदनु श्रीजीर्णदुर्गस्थानके सुधारसमिश्रितघनसार-चूर्णनिर्मितं नयनानन्ददायिनं श्रीपार्श्वप्रभुं सविस्तरमभ्यर्च्य, प्रायो देवानामपि दुर्लभसङ्गमस्य सुकृतप्राप्यदर्शनश्रीदि-व्यतीर्थविभूषितस्य विनीलवनराजिविराजितभूवल्लयस्य परोलक्षाभिश्चक्षुर्भिरिव विकस्वर-कारस्करप्रसूनप्रकरैः श्रीसङ्घमार्गं सरलमूर्त्तैः पश्यतः, वृक्षाग्रशाखासक्तसरससुरभिपुष्प-

मकरन्दपिपासामिलितरोलम्बकोलाहलच्छलेन गम्भीरखरेण श्रीसङ्घं समाकारयतः, मन्दा-
निलान्दोलितलताप्रतानचलत्पल्लवव्याजेन यात्रिकजनानामागमनसञ्ज्ञां प्रददतः, जाज्व-
ल्यमानमणिधातुजातोद्गच्छन्मयूखजालमिषेण समागततीर्थपथपथिकसन्माननायाभ्युत्था-
नमिव विरचयतः श्रीरैवताचलस्य शृङ्गं रङ्गेण समारुरोह । अद्राक्षीच्च तत्र तत्रभवतामा-
दिमं श्रीयादवकुलजलनिधिसुधाकरं करकमललावण्यजितविद्रुमं द्रुममिव च्छायाभूषित-
भूवलये सदा पूर्वाशाभिमुखमपि पश्चिमाशाभिमुखम्, किं बहुना-दृष्टमात्रमपि सकल-
कल्याणोदयप्रदायिनम् । यतः-

अहर्षतिध्वान्तघटाभिरस्तं, नीतोऽप्यसौ यज्जटिति प्रभाते ।

महोदयं संलभते तदन्ते, मन्ये प्रभोरास्यद्यत्र हेतुः ॥ ८० ॥

तथा-

दोषाकरोऽसौ क्षतकोऽपि लब्ध्वा, महोदयं यत्प्रतिपक्षसंस्थः ।

परां समृद्धिं भजतेऽनिशं स, पूर्वैक्षितस्वामिमुखप्रभावः ॥ ८१ ॥

एवंविधसद्यःफलेग्रहिमहिमाकरं श्रीनेमिजिनवरम् । तदनु तत्रापि महत्या भावनया महत्या
द्रव्यपरम्परया समाराधितः श्रीसङ्घलोकेन प्रभुः । विहितास्तत्रापि सावशेषाः सर्वेऽपि
विधयोऽहमहमिकया श्रीशत्रुञ्जयवत् सङ्घपुरुषमन्त्रिपूर्ण-मन्त्रिवीरासुश्रावकाभ्याम् । प्रव-
र्त्तिताः श्रीशत्रुञ्जयावतारश्रीयुगादिजिनश्रीकल्याणत्रयाम्बिकासुवनावलोकनाशृङ्ग-शम्बु-
प्रद्युम्नशृङ्गसहस्रान्नवणादिस्थानेषु महापूजाध्वजादिमहिमाः । तथाऽस्माभिरपि सपरिच्छदैः
समुच्छलद्भावनालहरीसमुल्लोलितहृदयैरवन्दि प्रणयधीयत संतुष्टुवे च श्रीनेमीश्वरः । समा-
राध्यते स्मापरोऽपि सर्वप्रासादेषु तीर्थकरनिकरः । एवं प्रारोपि श्रीसङ्घपुरुषाभ्यां द्वयोरपि
महातीर्थयोर्महारङ्गः । समजनिष्ट दुष्टासहनमनोरथभङ्गः । लेभे सकलेऽपि भूमिवलये
यशोनादः । प्राकाशि लोकत्रयान्तः श्रीखरतरश्रीविधिसङ्घजयवादः । प्रोत्सर्पिताः प्रतिपदं
काम्यकीर्त्तिध्वजाः । प्रीणिताः सर्वेऽपि मन्त्रिमूञ्जा-मन्त्रिमण्डलिकप्रभृतिपूर्वजव्रजाः । किं भूय-
सा पञ्चदिनानि महतीं प्रभावनां विधाय श्रीमन्नेमीश्वरश्यामलधवलतनुकटाक्षप्रभापूरकलि-
न्दतनया-जाह्नवीसङ्गमस्नानेन बाह्यं शरीरम्, निर्मलश्रीस्वामिभक्तिसुधाप्रवाहपानेन चान्तरं
वपुः पवित्रयित्वा, श्रीसङ्घलोकः श्रीउज्जयन्ततीर्थात् समुदतारीत् ।

[गिरिनारतीर्थात् स्वस्थानं प्रति प्रयियासोः-सङ्घस्य प्रस्थानवर्णनम् ।]

§ ४४. ततः श्रीतीर्थाद् वियोगाक्षमः श्रीसङ्घो गृहं प्रति प्रविचलयिषुः स्वर्गलोकाद् भूलोकं
प्रति प्रयियासोर्गीर्वाणस्याभिप्रायं पुण्यन्नपि नियतिबलात् प्राप्यात् । प्रभूतः श्रीमाङ्गल्यपुरे ।
स्थापयाम्बभूविरे तत्र तत्रत्यश्रीसमुदायाग्रहेणास्माभिः श्रीललितकीर्त्युपाध्यायाः पं०
देवकीर्त्तिगणि-साधुतिलकमुनियुताः ।

§ ४५. ततः प्रस्थाय श्रीदेवपत्तनपरिसरेऽवस्थानमचकल्पत् । तत्र च बभूव भूयसा विस्तरेण
श्रीदीक्षामहोत्सवः । तस्मिन् अविनश्वरश्रीदेवगुरुभक्तिभाण्डागारस्य, प्राय आधुनिकश्रावक-

श्रेण्यां स्थिरश्रीगच्छगुरुपुण्यभावसारस्य, समाष्टकं समारभ्य श्रीगुरुपार्श्वप्राप्तमहातीव्रब्रह्म-
व्रतकौक्षेयकविक्षिप्तमन्मथभटविकारस्य, पूर्वमेव श्रीगच्छेन सह विहितसखिकारस्य, वर्षचतु-
ष्टयमभिव्याप्याभ्युपजिगमिषितदीक्षाप्राग्भारस्य, तदर्थग्रथितवर्षद्वयश्रीगुरुचरणपरिचर्या-
व्यापारस्य, अस्माभिरपि सकलकुटुम्बानुज्ञामुत्तरयद्भिर्बाढं विहितनिर्वाहस्य, पुनरपि किय-
न्त्यपि दिनानि दुर्मनायितेन निजकर्मसुस्पृष्टकर्मदृष्टान्तेन कृतगृहप्रचारस्य, साम्प्रतं भूयो-
ऽपि श्रुत्वा श्रीतीर्थयात्रायां सर्वसङ्गमं संबोध्य स्वं कुटुम्बं लात्वा चानुज्ञां कृतश्रीसङ्घपथानु-
सारस्य, श्रीसङ्घेन सह विशेषेणान्तरा लाभायितश्रीतीर्थयात्रासमर्जितपुण्यपुण्यसंभारस्य,
निरुद्धकलत्रपुत्रवित्तबान्धवादिमूच्छोद्धारस्य, दर्शितभावसूरपुरुषाचारस्य, समर्थितसर्वपरी-
क्षाप्रकारस्य, मं०सीहाकुलालङ्कारस्य अभङ्गुरसंवेगाधारस्य तितीर्षितसंसारार्णवपारस्य मन्त्री-
श्वरदान्दपुत्रमन्त्रिखेतसिंहसुश्रावकस्य, श्रीमालहृशाख्यचाम्पासुश्रावकसुतस्य पद्मसिंह-
बालकस्य चास्माभिः श्रीआर्हती सर्वविरतिर्व्यतारि । तयोर्नाम्नी 'क्षेममूर्त्तिमुनि-पुण्यमूर्त्ति-
मुनि' इति । तथा -

शङ्के श्रीविमलाचले गिरिवरे श्रीउज्जयन्ते तथा, जातो निष्क्रमणोत्सवो न यदिहाभूत् तत्र हेतुर्ह्यसौ ।

सौराष्ट्रे विषये सदुत्तमतमा तीर्थत्रयी गीयते, तस्याः श्रीऋषभेश-नेमिशशिनामत्रैव यत्सङ्गमः ॥ ८२ ॥

§ ४५. तदनु पदे पदे श्रीसङ्घपूजनसाधर्मिकवात्सल्यरात्रिजागरादिमहोत्सवरङ्गैः सविशेष-
नृत्यगीतवाद्यविनोदैश्च दक्षिणपूर्वायै मुग्धायायिव कियत्यै प्रजायै स्थितौ, नूनं तथा संरम्भा-
टोपौ यथा श्रीतीर्थमन्वथ प्रचलत्येष इति भ्रममावहन् केषाञ्चित् परस्परोभयभ्रान्तिवलनप्रचल-
नपाक्षिकीं च समुत्पादयन्, नवलक्षद्वीपेनावसजलखातिकां समुत्तीर्थ श्रीअद्भुतादिजिनादि-
जिनान् नमस्कृत्य, क्रमेणातिक्रम्य श्रीजिनरत्नसूरि-श्रीजिनकुशलसूरि-श्रीतरुणप्रभसूरिसुगुरु-
पादप्रसादसाहाय्येन जनमनश्चमत्कारिणा जङ्गलभूवलयमिव दुस्तरमपि खोचितविरचनाया-
भ्यर्णीभूतप्रभूतभीष्मकाष्टिककटमपि, अनभिज्ञाध्यवसितासहनहसनावकाशमपि गृहा-
ङ्गणवत् सुखेन दुर्गमं रणं श्रीशेरीषकपत्तने जगदेकजाग्रन्महिमानं श्रीलोडणपार्श्वजिनमन-
सीत् । तत्र च सं० वीरेण महातीर्थवन्महामहिमां वर्णनीयतमविस्तारां कृत्वा पूर्वतीर्थविहित-
प्रभावनाविधीनामुपरि शातकौम्भश्रीकलशाधिरोपणं चेक्रीयाञ्चके ।

[पुनरागतसंघस्य पत्तननगरप्रवेशवर्णनम् ।]

25

§ ४६. तदनु श्रावणमासाद्यैकादश्यां श्रीसङ्घः सङ्घपतिवीरकारितनिष्क्रमणमहोत्सवाधिक-
तरमहिमश्रीप्रवेशकमहोत्सवपूर्वं श्रीनरसमुद्रपत्तनमध्यं प्रविवेश । तदस्य श्रीप्रवेशकोत्सव-
महिमा निस्सीमा कियती लिख्यते ? । यतः -

ते केऽप्युत्सवमेलिलोकविहिता आनन्दकोलाहला, स्ते केऽपि द्रविणव्ययाः प्रतिपदं सुस्थानके स्थानके ।

ते केऽप्युन्नतिभावभावकतमा रीतिप्रकारा अहो !, ते केऽप्यन्वयसङ्घपत्तिसुगुरुश्रीसङ्घभाग्यस्तवाः ॥ ८३ ॥

26

प्रावर्त्तन्त नु यान् निमेषरहितैर्बाष्पाकुलैर्लोचनैः, धृतैश्चापि मुहुर्मुहुः स्वकरणत्राणैः किमु ध्यायिनः ।

एते साधुजनास्तथा खलजनाश्चित्ते विभिन्नाः परं, स्मारं स्मारमिहान्तरायममितं प्रावर्द्धयन्त द्विधा ॥ ८४ ॥

वि० म० ले० ५

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

किं भूयसा-

तावन्ति संघटितवन्ति नु पौरुषाणि, वृद्धिं भजन्ति लहरीकुलवक्षणेन ।

यैलोकितैर्नरसमुद्रपुरं तदानीं, सत्याहतां गतमवैक्षि विलोचनैः स्वैः ॥ ८५ ॥

इत्थं सङ्ख्यपुरुषमन्त्रिपूर्ण-मन्त्रिवीर-मन्त्रिसारङ्गैर्महान् प्रारोपि श्रीजिनशासनरङ्गः ।
एष [न] गोचरोऽस्य श्रीविधिसङ्ख्यस्य महिमा ? । किं लिख्यते औदारिकशरीरैः ? । परम्-
ऐन्द्रं स्थाम विपोस्फुरीति करणे चेद् वाक्पतेः प्रातिभं, चेत्तेतोऽप्यधितिष्ठतीदमपि चेदायुर्दृढीयो भवेत् ।
एतत् श्रीविधिसङ्ख्यसम्भवमहः किञ्चित् तदा वर्ण्यते, जिह्वाग्रे च सरस्वती भगवती स्वैरं नरीनृत्यते ॥ ८६ ॥

इति रहस्यम् ।

[अथ विज्ञप्तिलेखप्रेषकश्रीजिनोदयसूरिकृतोपसंहारवर्णनम् ।]

॥ ४७. तथा-पुरालिखितास्मद्वेतुतीर्थप्रणामलहनकप्रहिंतिं प्रति श्रीमतां सपरिवाराणां ससमु-
प्यानां कृते श्रीमेदपाटदेशस्थनानाविधापूर्वश्रीतीर्थनमस्याकरणं धवलाक्षताः, श्रीशत्रुञ्जय-
हातीर्थे श्रीयुगादिजिनादिजिननमस्कृतिर्नागवल्लीदलानि, श्रीउज्जयन्तादिमहातीर्थेषु श्री-
मीश्वरप्रमुखजिनपदवन्दनं पूगीफलानि च प्रहितानि सन्ति साह्लादमङ्गीकार्याणि । तदेवं-
धानि श्रीप्रभावनास्वरूपाण्यधिगम्य श्रीमदाचार्यैः सपरिवारैः स्वमानसे महाहर्षप्रकर्षो-
रणीयः । एषा चतुर्मासी श्रीपत्तने क्षेमेण कृता । तत्रत्यानां सर्वसाधुश्रावकश्राविकाणां
मग्राहमस्मदीयानुवन्दना-धर्मलाभौ वाच्यौ । अत्रत्यः श्रीचतुर्विधोऽपि श्रीसङ्ख्यः सादरं
मेदाराध्यानां पादौ द्वादशावर्त्तवन्दनया वन्दते । अस्मदुचितं ज्ञाप्यम् । विशेषाश्रिष्टि-
तो ज्ञेयाः । श्रीपञ्चकल्याणिकैकादशीदिने ॥ ५ ॥

श्रीमल्लोकहिताचार्यपादपद्मे गुणोल्बणे । भृङ्गायते सदा साधुर्मैरुनन्दननामकः ॥ १ ॥

श्रीजिनोदयसुसूरिभिरेष प्रैषि सूरिहृदयङ्गमलेखः ।

श्रीशलोकहितसूरिवराणां विश्वविश्रतयशःप्रसराणाम् ॥ २ ॥

॥ श्रीलेखलेखराजशीर्षोपरि परिष्कारशेखरश्रीधरं काव्यम् ॥

संवत् १४३१ वर्षे जिनपञ्चकपञ्चकल्याणकपवित्रैकादशीदिवसे श्रीपत्तनपुरवरस्थितेन
शेखरतरगच्छाधिपतियुगप्रधानश्रीजिनोदयसूरिसुगुरुसार्वभौमराजादेशेन तच्छिष्यलेशेन
रुनन्दनगणिना श्रीअयोध्यापुरीसंस्थितानां श्रीलोकहिताचार्यवर्याणां निमित्तमयं महा-
खाधीश्वरः समर्थितः ॥ ५ ॥

॥ श्रीचतुर्विधश्रीविधिसङ्ख्यस्य लेखकवाचकानां च शुभमस्तु ॥

॥ अस्मिन् लेखे ग्रन्थाग्रमुद्देशेन श्लोक ११०० ॥ श्रीः ॥

संवत् १४३७ वर्षे आश्विनपूर्णिमास्यां श्रीकपिलपाटकपुरे
पुस्तिकायां लिखितः श्रीलेखः ।

परिशिष्टम् ।

॥ श्रीलोकहिताचार्यस्तुतयः ॥

सच्छायागमविश्रुताः सुमनसां श्रेयोगुणानां मताः, सर्वत्रास्वलितैर्विहारविधिभिः पुंस्कोकिलानां हिताः ।
विद्यामोदलसद्विनेयमधुपा दृष्टा वसन्तश्रियः, श्रीआचार्यवरा न कस्य सुदृशः स्युः सम्मदालीकराः ॥ १ ॥
यैः श्रीसूर्यसहोदरैर्दरहरैर्नानातमःसंहतेः, श्रीसङ्घस्य विकाशिभिः प्रतिपदं जाड्यापहैः प्राणिनाम् ।
अन्यैः श्रोतुमपि क्षमा न जगती पादैर्निजैः पाविता, ते नन्दन्तु दिगन्तवित्तमहसः श्र्याचार्यवर्याश्चिरम् ॥ २ ॥
ध्यानज्ञानचरित्रदर्शनमहासौभाग्यभाग्यश्रियां, प्रासादा बहुलक्षमा मुनिवरा नन्दत्वमी केलये ।
सोपानन्ति गुणाः सुधामयशसा शुभ्रेषु येषूज्ज्वल-स्तप्तस्वर्णघटेत् प्रतापनिवहः कीर्तिः पताकायते ॥ ३ ॥
प्राच्यालोकततेर्हिताचरणतो दुष्प्रापपुण्यागतैः, यैर्दध्रे भुवि नाम सान्वयतया चन्द्रेन्द्रमेवादिवत् ।
प्रागुबुद्धस्य न शङ्कशुक्लनतया रूढ्येव केषां न ते, श्रीमल्लोकहिताभिधानमधुराः श्र्याचार्यवर्या मुदे ॥ ४ ॥

॥ शुभं भवतु, मङ्गलं भवतु ॥

*

॥ गुर्वावली ॥

उद्योतनः सूरिभूत् क्रमेण, श्रीवर्द्धमानो रहितश्रमेण ।
जिनेश्वरो रोषितसाधुधामा, सांवेगिकः श्रीजिनचन्द्रनामा ॥ १ ॥
जज्ञेऽभयः सूरिथाङ्गदक्षश्चैत्यप्ररोपी जिनवल्लभाख्यः ।
योगीन्द्रचक्री जिनदत्तसूरिर्नरोत्तमः श्रीजिनचन्द्रसूरिः ॥ २ ॥
वादीन्द्रजेता जिनपत्न्यधीशः सौभाग्यभूः सूरिजिनेश्वरः सः ।
जिनप्रबोधः श्रुतहेमसानुर्भव्याम्बुजेऽभूज्जिनचन्द्रभानुः ॥ ३ ॥
गुरुजिनकुशलेशः स्थापितश्र्यादिमेशः, प्रभुरथ जिनपद्म शारदाकेलिसङ्ग ।
समजनि जिनलब्धिः सूरिराद् संविदब्धिः, स्तदनु च जिनचन्द्रः श्रेयसे मेऽस्ततन्द्रः ॥ ४ ॥
समस्तसूरीन्द्रविराजिनो दयारसालया मोहभटाजिनोदयाः ।
द्विजावलीप्रीतिकृते जिनोदयाः शुभाय मे श्रीगुरवो जिनोदयाः ॥ ५ ॥
भविकपङ्कजबोधदिवाकरः, शुभकलावलिकेलिसुधाकरः ।
जयति सम्प्रति रूपरतीश्वरः, प्रभुरयं जिनराजयतीश्वरः ॥ ६ ॥
॥ इति व्याख्यानश्रीगुर्वावली ॥

वर्षे नाम शते चतुर्दशमिते युक्ते त्रयस्त्रिंशतौ, श्रीमत्पत्तनपत्तने शुभदिने षष्ठ्या सिते फाल्गुने ।
यैः श्रीलोकहिताभिधानगुरुभिः पट्टे स्थिरं स्थापिता, स्तेऽमी श्रीजिनराजसूरियतिपा नन्दन्तु सङ्गान्विताः ॥ १ ॥

॥ शत्रुंजयतीर्थस्तुतिः ॥

द्विक्षेत्रेऽत्र यस्मिन् सकृदपि निजहस्तार्जितं वित्तबीजं सद्बुद्धारोपितं सत् प्रथमजिनदशोलासपीयूषसिक्ते ।
 तच्छेन्मन्दिरेषु प्रतिभवमपि तद् वर्द्धमानर्द्धिसौख्यैश्चित्राली तत्र तीर्थं भवति सुकृतिनः कस्यचिद् साङ्गपत्यम् ॥ १ ॥
 ये दक्षाः क्षितिपालदस्युदहनादिभ्यो धनं रक्षितुं, कुर्वन्ति व्ययनच्छलेन जगतां व्यासं प्रभोः साक्षिकम् ।
 अत्र श्रीविमलाचले भवशतेष्वप्याप्यते तत्सुखा, चित्रं प्रत्युत वर्द्धमानमपि तैस्तीर्थप्रभावो बत ! ॥ २ ॥
 स्पृष्ट्वा यस्य रजःकणा अपि भुवः शुद्धिं श्रितां तादृशीं, सृज्यन्ते किल नान्यतीर्थपयसाऽप्युत्पद्यते यादृशी ।
 तत्र श्रीविमलाचले शुभवतां लभ्ये युगादीश्वरं, धन्याः केऽपि समेत्य सङ्गसहिताः कुर्वन्ति नेत्रोत्सवम् ॥ ३ ॥
 यद्भ्यानं हरतेऽङ्गिपातकततिं यद् यात्रयाऽभ्यागमः, शक्तिं यच्छति मोक्षमार्गवहने यस्येक्षणं च क्षणम् ।
 शुद्धानन्दरसस्य यत्र चटनं विश्वाधिपत्ये किला, रोहस्तं विमलाचलं भजत भो त्यक्त्वाऽन्यकृत्यं जनाः ! ॥ ४ ॥

॥ इति शत्रुञ्जयवर्णनाकाव्यं समाप्तम् ॥

*

भो भव्याः ! सुजनप्रिया वयममी पुण्याध्वपान्थाः कियत्, -कालं युष्मदुपाश्रये सुखमये विश्रम्य हृष्टा गुणैः ।
 यामः सम्प्रति कार्यसिद्धिविधये स्यान्नौ पुनः सङ्गमः, कर्तव्या गुणचिन्तनेन शुभगैर्नान्योन्यविस्मरणा ॥ १ ॥
 श्रीरामोऽयमवैति सर्वमनघं सीता सतीत्वं पुरा, सन्तश्चापि तथा हुताशनजलीभावाज्जगुस्तद्व्रतम् ।
 यत्तस्याः कथमप्यभूत् परमहो ! तै राक्षसैः संस्तव, -स्तेनान्या विचिकित्सतीह जनता कष्टं तदार्यात्मनाम् ॥ २ ॥
 भावी मे स कदा पवित्रदिवसः कल्याणकेलीरसः, श्रीमद्धर्मगुरोर्मते सुरतरोर्यत्रास्यचन्द्रं मुदा ।
 वीक्षिष्ये स्मितलोचनैः कुवलयैः पाता च तद्गीः सुधां, तत्पादैः पविता शिरश्च हृदये चिन्ता सतामीदृशी ॥ ३ ॥
 यैरत्यन्तपरोपकारनिपुणैर्निःस्वामिकाङ्कुरवन्नीत्वाऽहं निजकाश्रयं किल तथा वात्सल्यकुल्यारसैः ।
 सिक्तः संजघटे यथा ननु जनेच्छायाः फलाद्यैर्गुणैः, किञ्चित्सेव्य इवाभिनौमि किमहो ! तेषां प्रभूणामिह ॥ ४ ॥
 या नित्यं कमलाश्रयैकसुतनुर्युक्ता महातेजसा, स्वाधीनप्रमदोल्लसन्मुखगुणा गोलीनचित्तस्थितिः ।
 कामोत्पत्तिविवर्द्धनातिनिपुणा वन्द्या क्षमाभृद्भजैः, सा भूयात् तव पद्मयोनिगिरिशोपेन्द्रव्रयी प्रीतये ॥ ५ ॥
 सौवप्रतापभरकुग्रहलासनाशी, सन्मार्गबोधचतुरः कमलावकाशी ।
 लोकैस्त्रिसन्ध्यमहितो भुवि सर्वदर्शी, हन्यात् तमांसि भवतां सविनायकोऽयम् ॥ ६ ॥

॥ इति विज्ञप्तिसमहालेखपरिशिष्टरूपाणि काव्यानि ॥

स्वरतरगच्छालंकारहारभट्टारकश्रीमञ्जिनभद्रसूरिं प्रति

महोपाध्यायश्रीमज्जयसागरपण्डितप्रवरैः लिखितो

विज्ञप्तित्रिवेणि

नामको विज्ञप्तिपत्रस्वरूपो महालेखः ।

१. प्रस्तुतार्थप्रस्ताविका प्रथमा वेणिः ।

*

[आदौ मङ्गलवाचका जिनादिनमस्काराः ।]

॥ नमः सर्वविदे ॥

जयति लसदनन्तज्ञाननिर्भाससान्द्रो निरुपममहिमत्वादार्हतः कोऽपि भावः ।

त्रिभुवनजनभाग्यागोचरो यत्र नित्यं विलसति कृतवासा निर्भरं सा शिवश्रीः ॥ १ ॥

जगन्नित्यं किञ्चित् तदितरदनित्यं च सदियं यदज्ञानाद् भ्रान्तिः स्फुरति मृगतृष्णेव भुवने ।

क्षणेन क्षीयन्ते दुरितनिवहा यत्परिचयात् तदेवाङ्गीकुर्मो निरभिविधि जैनेश्वरमहः ॥ २ ॥

दौर्गत्यदोषमुच्छेत्तुं विबुधा यामुपासते । कल्पवल्लीव सा जैनी चतुर्विंशतिरिष्टदा ॥ ३ ॥

विश्वाशाः परिपूर्णतामुपगता वाञ्छार्थलाभांशुभिः, नृणां तामसमण्डलीव विलसद्वैरादिवार्त्ताऽपि हि ।

मार्गामार्गविचारचारिमधरा जाता समस्ता मही, यस्यैवाभ्युदये स शान्तिसविता सुप्रातराविष्क्रियात् ॥ ४ ॥

योऽद्विष्टचित्तोऽपि रिपून् जघान, विरक्तचित्तोऽपि भुनक्ति मुक्तिम् ।

सदाऽभिजातोऽपि हि नाभिजातः, स कामितं कामितमातनोतु ॥ ५ ॥

महामृगाङ्कः सततं प्रजानां सन्तापनिर्वापकपादसेवः ।

विस्मेरयन् कौमुदमादरेण जिनेन्द्रचन्द्रोऽजित एष पायात् ॥ ६ ॥

यैः क्षिप्तानि जगन्त्यपायकुहरे प्राप्तावकाशैः पुरा, स्थानं नश्च हृतं प्रणेशुरधुना पापाः क्व दोषा इति ।

तानन्वेष्टुमिव भ्रमन्ति भुवने प्राप्नोदया यद्गुणाः, स श्रीमाञ्जु जिनसम्भवो भवतरुच्छेदे कुठारायताम् ॥ ७ ॥ ²⁰

नन्दत्वसौ श्रीजिनपोऽभिनन्दनो यद्दानशौण्डीर्यगुणैकलिप्सया ।

प्रविश्य हेमाद्रिदरीं सुरद्रुमा भृङ्गस्वरेण प्रसभं जपन्ति किम् ? ॥ ८ ॥

भ्रूभङ्गं न बभार भालशिखरे नो शोणिमानं दृशोः, प्रागल्भ्यं हृदये नवा शममये नाङ्गे तथोत्सेकताम् ।

हत्वा मोहभटं तथापि युधि यो निर्द्धाटयामासिवान्, भव्यस्वान्तपुराजिनः स सुमतिर्द्धर्मे मतिं वर्द्धयेत् ॥ ९ ॥

शशधरकरैः सायं दूये दिवा तु विहङ्गमैः, विंदलितमहं स्थानं हेयं तदेतदशर्मदम् ।

इति सरसिजं तोयं हित्वा किलाङ्गतयाऽभज, जगदभयपदं पादं पद्मप्रभस्य स शर्मणे ॥ १० ॥

भक्तिरागनिभृतेषु मुनीनां मानसेषु चिरवासवशात् किम् ? ।

रक्तकोकनदरङ्गदभी(भां?)शुः स्पष्टयत्वभिमतं जिनषष्ठः ॥ ११ ॥

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

अन्तर्दीप्रसुबोधदीपकलिकोद्भूताञ्जनौघा इव, श्रीसंवेगसमुद्रवीचिविलसलीलाप्रकारा इव ।
रेजुर्यस्य शिरस्युदंशुमणयः पञ्च स्फुरन्तः स्फुटा, भद्रालीं दृढयेदधं विघटयेद् देवः सुपार्श्वः स वः ॥ १२ ॥

विलसदतुलशुक्लध्यानसद्गुणसिन्धोरविरललहरीभिः प्रोद्धताभिः प्रकर्षात् ।
हिमहिमकरगौरा यत्तनुः प्लावितेवाऽशुभदशुभभिदे स्याद् देवचन्द्रप्रभोऽसौ ॥ १३ ॥

कृपासृताब्धिः सुविधिः समार्धिं सन्धातुमुत्साहयतां मनो वः ।
यस्माद् बुधाश्चिन्तितवस्त्ववाप्य तृणाय चिन्तामणिमप्यमंसत ॥ १४ ॥

अभ्रान्तवृत्तिमधुरो हरिणाश्रितोऽयं भव्याञ् जनानवतु शीतलशीतलांशुः ।
यद्विम्बमुज्ज्वलकलं भृशमीक्षमाणा लोकत्रयी प्रमदतः कुमुदांबभूव ॥ १५ ॥

श्रेयांसः श्रितवत्सलः सृजतु वो नित्यं श्रियं श्रायसीं, पञ्चाङ्गप्रणिपातनिर्मितिवशाद् यत्पादपीठाग्रतः ।
रेजुर्मञ्जुरजोऽवगुण्ठननिभाद् भालेषु भव्यात्मना, मेते योग्यतमा इतीव तिलकाः पुण्यश्रिया निर्मिताः ॥ १६ ॥
स्वर्भूर्भुवःस्थायुकलोकपूज्यः श्रीवासुपूज्यो जयताञ्जगत्याम् ।

सस्पन्द्येव श्रमणत्वलक्ष्म्या यस्मिस्तनुश्रीरपि भाति रक्ता ॥ १७ ॥

कलियुगतया भीष्मग्रीष्मे प्रसर्पति भूतलेऽजनिषत कृशा आशानद्यो मदीयमनोभुवि ।
विमल ! तदलं वर्षत्वेषा प्रसादपयोभरं तव पदपरीष्टिस्तत्पूरं सुवृष्टिरिवोच्चकैः ॥ १८ ॥

सभाजनप्रीणनकृत्सभाजनो महोदयस्थो विलसन्महोदयः ।
यकः सदाऽनन्तगुणालिनिर्मलो मनःकर्पिं पातु नताननन्तजित् ॥ १९ ॥ (-गूढैकक्रियम् ।)
त्रैलोक्यलोकतिलकोऽस्ति जिनो गुणद्व्या तस्याऽप्युपर्यहमिति प्रमदादिवोच्चैः ।
नृत्यत्यशोकविटपी चटुलैर्दलैः किं ? यद्धर्मसद्गुणानि स धर्मजिनः शिवाय ॥ २० ॥
भवाभ्यन्तरे कर्मधर्माकुलत्वाद् गुणश्रेणिनिश्रेणिमालम्ब्य योऽलम् ।
सुखं मुक्तिवातायनं प्राप्य शेते सदा निर्वृतः शान्तये स्तात् स शान्तिः ॥ २१ ॥

कुन्तुं कान्त ! नमस्कुरु, प्रियतमे ! कः क्षुद्रजन्तुं नमेत् ?
भर्तः ! श्रीतनयं वदामि, मदनः किं ? नैष सूर्यात्मजः ।
किं मन्दोऽयमयि प्रभो ! नहि जगत्प्रद्योतकस्तीर्थकृतः ;
दम्पत्योरिति वक्रवाक्यविषयः पुण्यात् सुखान्येष वः ॥ २२ ॥

पूर्वोपार्जितपापकर्मपटलान्येधन्ति यत्राङ्गिनां, खद्योतन्ति मृगाङ्गचण्डकिरणाद्या यत्र तेजस्विनः ।
विश्वव्यापकमप्यनक्षविषयं यद्भासते सर्वतः, तज्ज्योतिः प्रणिदध्महे भयभिदे देवारतो नापरम् ॥ २३ ॥
देवो वाञ्छनसातिगोचरगुणोऽर्वाचीनदृग्देहिनां, मल्लिः पल्लवयेन्मतिव्रततिकां सोऽयं वसन्तोपमः ।
यस्माद् विश्वजनप्रमोदजननीमासाद्य रम्यां रमां, भव्यारामगणा इह प्रतिदिनं सेव्या न कस्याभवत् ॥ २४ ॥

यो ध्यायमानोऽपि हि कृष्णवर्णस्तनोति सद्धर्मधियं बुधानाम् ।
सुश्यामलश्रीजलदायमानो जयत्यधीशो मुनिसुव्रताख्यः ॥ २५ ॥

तापं तापमपारदुस्तपतपःसद्भ्रान्तशतासिना, छिन्दानं तरसात्मकर्मगहनं दृष्ट्वेनमादीक्षणात् ।
आत्मोच्छेदभियेव नो ववृधरे केशा नखा यस्य वै, श्रामण्ये विरहन्नमिर्जिनपतिः सम्पत्तये जायताम् ॥ २६ ॥
मोहाख्यो नृपतिर्विकीर्णहृदधिष्ठानाद् विनिर्द्वाटितो, देवेनेति ततो विभग्नसकलोपायान्तरोऽयं किल ।
स्थानप्राप्तिकृते दिवानिशमसौ रागच्छलात् पिच्छलं, यत्पादाब्जयुगं भजत्यभिमतं दत्तां स नेमीश्वरः ॥ २७ ॥

किं भाद्राम्बुधरा अमी समुदिता आश्वासयन्तो जगत् ?, किं वैताः फलभारमुन्नतनवः प्राप्ता भुवं खल्लताः ।
श्रीवामेयशिरस्यलजनितां छत्रश्रियं बिभ्रत, इत्थं भ्रान्तिकराः स्फटाः सुमनसां कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ २८ ॥
 कीदृक्षे हि विधौ भवन्ति विफलाः पुंसा प्रयासाः कृताः ?,
 भानोरुत्तरदक्षिणोभयगतौ के कारणं वर्णिते ? ।
 का विश्वं निजसङ्गमात् प्रकुस्ते सौभाग्यभाग्योज्ज्वलं ?,
 को वा सेवकसत्फलः कलियुगे **वामेयनेता जयी ॥ २९ ॥** (-प्रश्नोत्तरम् ।)

श्रीवीरः पुरुषोत्तमः क्षपयतात् पापं नृपश्रेणिका, -सेव्याहिद्वितयः क्षमाभरधरः कल्याणकायं दधत् ।
 यः सत्यागदयान्वितः प्रविलसत्सद्दर्शनोत्सर्पणात्, तं क्षिप्त्वा नरकं समाधिमुदितं स्वस्थं जगत् संव्यधात् ॥ ३० ॥
 अर्हन् सिद्धः प्रबुद्धः प्रकटगुणगणः पारगोऽनङ्गभेदी, **वीरो** विश्वाधिनाथः किशलयतु स वोऽतुल्यमाङ्गल्यमालाम् ।
 व्योमेवाद्यापि यस्य प्रविदितमहिमोल्लासनं शासनं तत्, चित्रं सूर्याढ्यमप्युज्ज्वलसुशशिकुलं भाति निस्तारकं यत् ॥ ३१ ॥
वर्द्धमानजिनेशस्य वचनाय नमोनमः । अज्ञानध्वान्तविध्वंसाद् तदेव दिवसायते ॥ ३२ ॥

*

दिनादितापसहितोऽपि हि तापहारी रुद्धप्रमादविसरोऽप्यमितप्रमादः ।
 यो निर्द्धनोऽपि धनधान्यसमृद्धिहेतुनामस्मृतिर्नमत तं गुरुमिन्द्रभूतिम् ॥ ३३ ॥
 नमः क्षमाधरोद्घाय **श्रीसुधम्महिमाद्रये । जज्ञे गौरीदृशी यस्मान् महाव्रतिमनःप्रिया ॥ ३४ ॥**
श्रीमद्वीरजिनेशवंशविशदप्रासादशृङ्गाङ्गणे, रङ्गचारुसिताम्बरप्रविलसत्कीर्तिध्वजाबन्धुरे ।
सदृत्तः कलधौतकुम्भतुलनामुच्चैर्दधे यश्चिरं, प्रज्ञां पलवयत्वसौ गणधरः श्रीमान् सुधर्म्मो मम ॥ ३५ ॥
 जयति जगन्ति पुनाना वाङ्मालाभिः **सरस्वती देवी ।**
 करकृतमणिमिव कवयो विश्वं पश्यन्ति यदनुभवात् ॥ ३६ ॥
 सदुक्तिमुक्ताफलताम्रपण्यै नमोनमः श्रीगुरुराजवाण्यै ।
 जडस्वभावोऽपि हि यत्प्रसङ्गात् सिन्धुः स रत्नाकरतामवाप ॥ ३७ ॥
 यदीयवागञ्जनस्य मनोदृशि निवेशनात् । विन्दन्ति गूढमप्यर्थं जनास्तं गुरुमर्थये ॥ ३८ ॥
 तदेवं सम्यगाराध्याऽऽराध्यपादान्महादरात् । लेखोऽयं लिख्यते किञ्चिद्गद्यपद्यमयो मया ॥ ३९ ॥
 क मे तुच्छतमा बुद्धिर्महान् कायमुपक्रमः ? । तदहं मातुमिच्छामि कुम्भैरम्भोऽम्बुधरेपि ॥ ४० ॥
 गुरुप्रसादतो यद्वा ममाप्यत्रास्ति योग्यता । मेकोऽपि हि भुजङ्गास्यं चुम्बेन्मात्रिकयोगतः ॥ ४१ ॥
 विश्वाम्ब ! मे हृदि सरस्वति ! सन्निधेहि स्या[द् येन] सम्प्रति फलेग्रहिरुद्यमोऽयम्* ।
 यद्वा चकास्ति गुरुभक्तिरचिन्त्यशक्तिः सैव प्रमाणमखिलार्थविधौ ममास्तु ॥ ४२ ॥

*

[श्रीजिनभद्रसूरिसमधिष्ठित - गूर्जरदेश - तदीयराजधानीभूत - अणहिलपुरवर्णनम् ।]

§ १. अस्ति समस्तशस्तवस्तुवास्तुभूतभारतविश्वम्भराविस्तारस्फुरत्तिलकायमानः स्फाय-
 भानः सकलसम्पत्त्या समानः स्पृहणीयतया स्वर्गलोकस्य, सत्पुरुष इव बहुलक्षणभासुरः,
 नाकलोक इव सुधर्म्मास्थानसुन्दरः, शब्द इव प्राग्रहरः सर्वविषयाणाम्, नदीपतिरिवेन्द्रि-
 रासङ्गोल्लसदङ्गमहाशेषनागाधिरूढप्रौढपुरुषोत्तममहनीयाभ्यन्तरः, सगरभूपालमूर्तिमद्य-

शोविलासायमानलसद्वीचिवितानेनोदन्वता परिचितपरिसरः, सारः सकलसंसारविस्तारस्य,
 आकरः सदाचारव्यवहाराणाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, सङ्केतास्पदं समस्तशस्यदिश्यसम्प-
 दाम्, आपणो नयनैपुण्यादिक्रयाणाम्, रोहणो विनयविवेकविचारादिगुणमणिगणानाम्,
 मध्यप्रदेशस्फारहारायमानार्हद्विहारोदारो गूर्जरो नामा जनपदः । यस्मिन्नश्रान्तसुकृतकर्म-
 ५ क्षणनिर्माणात्युत्सहिष्णुवर्द्धिष्णुधर्मपुरुषार्थप्रदत्ताशाः प्रशान्तदुरितोपप्लवाः श्रीआर्हत-
 धर्मराजराजधान्यः पुरुषायुषजीविन्यः प्रजाः । अपि च वर्णविनाशो व्याकरणेषु, क्षण-
 क्षयिभावस्ताथागतसिद्धान्तेषु, भूतविकृतिवादः सांख्येषु, जडस्वभावात्मजल्पस्तथा छल-
 कौशलोद्भावनं निग्रहस्थानानि चाक्षपादमतीयसिद्धान्तेषु, वक्रचारिता ग्रहगोचरे, ग्रहावेशो
 राशिषु दृश्यते श्रूयते वा, न च वास्तव्येषु लोकेषु । यत्र तुरङ्गशोभिताः प्रासादा इव
 १० मन्दुराः । यत्र च लहरिसङ्कुला नद्य उद्यानभूमयश्च । यत्र च कौटुम्बिकगृहा इव बहुधाना
 विपणिभागाः, व्याकरणप्रबन्धा इव विलसद्बहुव्रीहयः, कचिद् दृश्यमानद्विगवश्च, अव्ययी-
 भावानुभावोत्सर्पितक्षेत्रप्रमोदाः सद्रन्द्वाश्च वप्रप्रदेशाः । किं बहुना ? -

व्योमोपमा व्योम एव सुधायाश्च यथा सुधा । तथा गूर्जरदेशस्योपमानं यदि गूर्जरः ॥ ४३ ॥

यत्र ग्रामा इवारामाः सदाशुकविराजिताः । निवासा इव कासारा लक्ष्मणश्रेणिसङ्कुलाः ॥ ४४ ॥

१५ तत्र लसल्लक्ष्मीदेवीनिवासकमलोपमानं अणहिल्लपाटकं नाम पत्तनम् ।

अश्रान्तोद्भवदुत्सवोत्सतमुदुल्लोलवलीसङ्कुलं, रङ्गद्वारिसितच्छदं शुभति यत्पद्माकराम्भो भुवि ।

यत्रोच्चैः स्फुटपुण्डरीकपटलान्त्या भ्रमन्वेतना, रम्ये हर्म्यगणे सुधाधवलिते नूनं निलीना रमा ॥ ४५ ॥

मुक्तामणीविद्रुमशुक्तिशङ्खान् राशीकृतान् वीक्ष्य यदापणेषु । लोकैर्वितर्क्येत जलावशेषश्चित्रीयमाणैर्हृदये पयोधिः ॥ ४६ ॥

अनेकसूर्यावलिशालिमध्यं नानाबुधाढ्यं बहुमङ्गलं च । श्रीदैर्महेशैरमितैः परीतं यत् पत्तनं खं प्रति जाहसीति ॥ ४७ ॥

२० सन्नरागमना यत्र मुनिपर्षच्च भूभृताम् । राजहंसा इव जनाः सर्वदा मानसङ्गताः ॥ ४८ ॥

यत्र च-

कलाकीलालकल्लोला लोकाः केलिकुलाकुलाः ।

कलिकालेऽकलङ्काला लीलां ललुः कलां किल ॥ ४९ ॥ (द्विव्यञ्जनचित्रम् ।)

बुधा इव जना यत्र चित्तरङ्गोपशोभिताः । मनुष्येशा इवावासा मत्तवारणराजिताः ॥ ५० ॥

२५

किं च-

§ २. चिरन्तनपुरुषातिशायिभविष्यत्सप्रभप्रभावकश्रावकहृदयशयाखर्वगर्वसर्वस्वापहारि-
 हारिचरितत्रिभुवनप्रशंसनीयत्रिभुवनपालदेवकुलकाननोल्लासभासनसुरभिसमयानुकारि-
 काश्मीरदेवीमहासतीसदुदरस्फारवैडूर्यवर्यवसुन्धराखनिसम्भवदतुल्यामूल्यमहाधर्मप्राति-
 हार्यावार्यार्ज्यजनस्तुताप्रत्नरत्नायमानश्रीकलिकालकेवलिविरुदविशदावतारप्राप्तचातुर्विद्यमा-
 ३० द्यदनिन्द्यपारावारपारश्रीजिनशासनाम्बराम्बरमणिसुगृहीतनामधेयसिद्धश्रीहेमसूरिमुखो-
 च्छलदतुच्छाच्छपिच्छलोन्मूर्च्छच्छुचिरुचिरुचिरामृतच्छटायमाननिस्समाननिरूपमाननिर्वि-
 गानप्यानज्ञानवर्द्धमानपरमतत्त्वमयसमयवितानव्याख्यानविशेषनिःशेषनिर्वासिताऽऽना-
 दिकालालीनानवीनसादीनवपीनाहीनदुर्वासनाविषापस्मारसारसकलजगज्जन्तुजीवातुकल्प-
 निर्विकल्पामारिघोषणामिषोद्घोषिताऽऽकल्पान्तकालकालावस्थायनिवर्त्तनीयकीर्त्तनीयकी-

र्त्तिकमलाकटाक्षसाक्षात्कृतश्रीकुमारपालभूपालसम्भावितनव्यनव्यभव्यभव्यजनस्पृहणी-
यतत्तदुत्तमकरणीयजातिप्रतिभूभूतप्रभूततत्तादृक्षविशदप्रासादस्थाननिध्यानवशोद्भिद्यमा-
नरोमाञ्चनिकायाऽऽधुनिकधार्मिकनिकायविधीयमाननानाविधधर्मोत्सवारम्भसुभगं यज-
यति जगत्पुराणि पराणि । किञ्च-

यत्र हर्म्येषु धर्म्येषु पञ्जरस्थाः शुकादयः । नमस्कारं पठन्तः स्युः पुत्रेभ्योऽपि सतां प्रियाः ॥ ५१ ॥
सहस्रलिङ्गाख्यसरःसलिलेन शुचित्विषा । यत्रापूर्णं सदाप्याभाद् धनेनेव पुरं च तत् ॥ ५२ ॥
न्यायमार्गान्वितो यत्र राजा राजेव तज्जनः । तद्वत्प्रामाणिको लोकोऽप्येवमेव व्यवस्थितः ॥ ५३ ॥
साधवो यत्र मान्यन्ते दानश्रद्धालुभिर्जनैः । साधुभिश्च यथाकालं तेऽपि धर्मानुशिष्टिताः ॥ ५४ ॥
विमानानीव यत्रोच्चैर्धर्मस्थानानि निश्चितम् । नित्योत्सवानि राजन्ते विबुधप्रीतिदानि च ॥ ५५ ॥
माणिक्यमौक्तिकस्वर्णराशीन् विपणिगाञ् जनः । वीक्ष्य चक्रे रोहणाब्धिमेरूणामागमभ्रमम् ॥ ५६ ॥
सधना यत्र च जनाः सदाचाराः ससम्मदाः । स्वर्गभुक्तावशिष्टस्य धर्मस्यांशा इवाङ्गिनः ॥ ५७ ॥
सलज्जाः सदयाः सौम्याः सरूपाः समहोदयाः । लोका यत्र निरीक्ष्यन्ते सुषमाकालजा इव ॥ ५८ ॥

[अणहिल्लपुरसमवस्थितश्रीजिनभद्रसूरिगुणवर्णना -]

तत्र पवित्रसुत्रामपुरापास्मयचयव्ययकरे पुरे-

जडपरिचयोद्विशा नूनं विहाय कुशेशयं, कमलनिलया देवी येषामवाप पदद्वयम् ।
स्फुरति नितरां तस्मादेवेन्द्रोऽलसदाशया, तदतिवरीवस्यासक्तानां गृहेषु तनूभृताम् ॥ ५९ ॥
सत्यं सन्ति सितोपलाशशिकलासद्धारहूरादयो, मिष्टाः किन्तु यदीयवागमधुरिमा कोऽप्यद्भुतो वर्तते ।
संकुप्तामृतभोजना इव जना यां कूणिताक्षाः सकृत्, पीत्वा सार्वदिकं लभन्ति सततं सन्तोषपोषं परम् ॥ ६० ॥
शाणोत्तीर्णमणीव कान्तिकलिता दातेव चौदार्यभाक्, रम्भावन्मृदुला शरद्विमलिताऽऽशेव प्रसन्नाऽधिकम् ।
सन्माधुर्यगुणा सितेव सुधया सिक्ता नु सूक्तावली, येषामाननसम्भवा श्रुतिगता कांस्काञ्च संमोदयेत् ॥ ६१ ॥

जगद्गानन्दरसैकसत्रं येषां मुखं निश्चितमिन्दुबिम्बम् ।

निपीय तद्वागमृतं किमन्यथा सच्चन्द्रकान्ता बभुराद्रितान्तराः ॥ ६२ ॥

अग्रे सत्यमरूरुपन् सपदि ये स्याद्वादवादद्रुमं, यस्याध्यक्षपरोक्षमानयुगलं मूलं प्रकाण्डं कृपा ।
शाखाः सप्तनया जिनप्रवचनं पत्रप्रकारं विदुः, तत्त्वज्ञानमुशन्ति पुष्पपटलं मोक्षं तु सम्यक्फलम् ॥ ६३ ॥
यैः कुन्देन्दुतुषारहारधवलैर्ब्रह्माण्डमाभूष्यते, यैर्वक्तुं हृदि कल्पितैरिह जनो मूकोऽपि वाञ्छीयते ।
यैः कर्णातिथिभिः प्रमोदजलधिश्चन्द्रैरिवोलास्यते, तेषामद्भुतसम्पदां गुणगणानामास्पदं ये परम् ॥ ६४ ॥
लोकालोकमहीधरप्रतिहतो भानोः प्रकाशोऽपि हि, विस्फूर्जद्द्युतिवज्रिणोऽपि कुलिशं पाथोधिना स्वल्प्यते ।
सर्वत्रास्वलितप्रचारमतुलं विभ्राजते यद्यशो, दुग्धाम्भोध्वयगाहनादिव चिरं गौरं जगल्लङ्घनम् ॥ ६५ ॥
ज्योत्स्नोच्छ्रायविनाकृतेव मलिनच्छायेव मुक्तावली, साशङ्केव हि दुग्धसिन्धुलहरी स्वर्गापगा निम्नगा ।
शुक्ता त्यक्तमुदेव तुच्छगरिमैवोच्चैस्तुषारावली, नैर्मल्यातिशयात् परादिह जिता यत्कीर्त्तिकान्त्या किल ॥ ६६ ॥
क्षारो वारिनिधिर्बुधैर्निगदितो दोषाकरश्चन्द्रमा, विष्णुश्चापलतान्वितोऽपि चपलासङ्गाधिकश्रीर्धनः ।
देवेन्द्रस्तु सुराधिपोऽपि बहुरूग् भास्वान् विषादी हर, स्तत्केनात्र समं विशुद्धगुणिनो यत्कोपमा कल्प्यते ॥ ६७ ॥
गिरो येषां मुखोद्भूताः कतकक्षोदसोदराः । कालुष्यक्षपणाक्षेपाच्छोधयन्ति जडाशयान् ॥ ६८ ॥
व्याख्याक्षणे मुखे येषां स्फीतदन्तद्युतिच्छलात् । माधुर्यं शिक्षितुं वाचः प्रत्यासीदति किं सुधा ? ॥ ६९ ॥

सुस्त्रिधां मधुरास्वादां येषां दौर्गत्यहारिणीम् । पीत्वा वाचं सुधां चापि युक्तं स्युर्विबुधा जनाः ॥ ७० ॥
 द्राक्षाः सङ्कुचिताः काष्ठं जग्राहास्ये सितोपला । यदीयवाक्यमाधुर्यजिता नष्टा सुधाऽपि हि ॥ ७१ ॥
 अन्तःस्थज्ञानकल्पद्रुकुसुमानीव यन्मुखे । सुस्त्रिधा मधुराकारा राजन्ते रदनद्युतः ॥ ७२ ॥
 व्याख्याक्षणे मुखे येषां नूनं नर्नर्त्ति भारती । तन्नूपुरध्वनिरिव लक्ष्यते देशनाक्रमः ॥ ७३ ॥
 दोलीकृत्य यदीयं तु जिह्वाञ्चलं चलाचलम् । तथाविधवचोव्याजाद् वाग्देवी खलु खेलति ॥ ७४ ॥
 सुधा बुधा मुधा नूनमनूनाऽपि गुणैः परम् । यद्वचःपानसंतुष्टश्रोतुरेष वचःक्रमः ॥ ७५ ॥
 मन्ये सरस्वती तावद् येषां जिह्वाधिदेवता । तत्रानुकूलवृत्तीनां यस्मात् सर्वार्थसिद्धयः ॥ ७६ ॥
 येषां सिद्धरसौपम्यं दधाति वचनक्रमः । सुबुद्धिस्वर्णतां याति यत्प्रसङ्गात् कुबुद्धयः ॥ ७७ ॥
 मुखं शुक्तिपुटं येषां वचनानि तु मौक्तिकाः । तल्लाभे प्रयतन्ते तु पुण्याढ्या एव केचन ॥ ७८ ॥

यद्वाग्वह्नी सप्तभङ्गी रङ्गन्मण्डपगोत्सृता ।

सुभाषितफलैः कस्य करोत्युत्कण्ठुलं न हृत् ? ॥ ७९ ॥ (—वाणीवर्णनम् ।)

महानुभावा निहताङ्गितापस्तोमा निरुद्धाधिविधा निकामम् ।

पुण्यप्रकाशा नियतेन्द्रियाणां जगन्मुदे गीश्च यशांसि येषाम् ॥ ८० ॥ (—महाद्भुतम् ।)

दौर्गत्यभेदिनी रङ्गद्विभावभासिनी रयात् ।

येषां वाणी च पादाब्जे शिवर्द्धिं तनुतां सताम् ॥ ८१ ॥ (—अद्भुतम् ।)

ऋते येन नो भूपतिर्नापि रङ्गः, सजीवोऽप्यजीवोऽस्त्यहो ! जीवलोके ।

तदेवानुभूतं यदीयं जनानां, मुदे कारणं तत्र ही सत्प्रसङ्गः ॥ ८२ ॥ (—प्रहेलिका ।)

तपोभिर्दुस्तपैर्यत्तु दुरापं योगिनामपि । तत्सिद्धात्ममयं ब्रह्म येषां वाक्यादपीक्ष्यते ॥ ८३ ॥

तार्किकाणां मते ख्याताः ख्यातयः सदसन्मुखाः । सत्ख्यातिरेव येषां तु सिद्धा प्रमाणिनामपि ॥ ८४ ॥

यद्वाणीवारिदोऽपूवो राजते विश्ववह्मभः । हरत्येव जगत्तापं शंवरं तु न मुञ्चति ॥ ८५ ॥

सत्यातपत्रमिव पादयुगं यदीयं सच्छायमेत्य गततापभरा महीयः ।

सातत्यतोषमवगत्य भवन्ति सन्तः सातान्विता भुवि नृपा इव संशुभन्तु ॥ ८६ ॥ (—छत्रबन्धः ।)

स्फीतसातं वितन्वन्तं शान्तस्वान्तं मतश्चुतम् । गीतव्रातततं कान्तं सन्तनं तं नुत द्रुतं ॥ ८७ ॥

(—गौमूत्रिकाचित्रं षोडशदलपद्मं च ।)

वरारावरसासार ! नवराजजरावन ! । रसानुत तनु सारं दयया ततयायद ! ॥ ८८ ॥ (—अर्द्धभ्रमः ।)

महनीया मतिमतां महामहिमसंगताः ।

मते नतानां ददतां महात्मानः समाहिताः ॥ ८९ ॥ (—बीजपूरबन्धः ।)

मरालीवातिविमला मनोवृत्तिर्यदीयका ।

मनुते बहुनालीकं कस्मान्न मानसं गता ॥ ९० ॥ (—आसनबन्धः ।)

स्मयं क्षयं नयन्तो ये कुप्रावचनिकाङ्गिनाम् ।

सम्यग्धर्म्मोपदेशेन पुनन्त्येनं जनं पुनः ॥ ९१ ॥ (—चामरबन्धः ।)

वारम्बारं हरन्ते ये सूर्या इव वचोऽशुभिः ।

जगद्गुर्वासनाध्वान्तव्रातं ततं द्रुतन्वतः ॥ ९२ ॥ (—चामरबन्धः ।)

॥ इति चित्राणि ॥

§ ३. अपि चाविकलसकलसकलमञ्जुलकविकुलविमलमुखपद्मपद्मनदोद्गच्छदतुच्छपिच्छल-
बहुलरसपेशलसरस्वतीसुरसरस्वतीविलसत्सरलतरलसमुज्ज्वलाविरलगद्यपद्याद्यमयलक्षणा-
न्वेषिकीप्रकटनाटकालङ्काराद्यानवद्यह्यविद्याविलाससुस्थूलकलोलमालारङ्गतुङ्गततरङ्गतति-
तरत्कान्तकीर्त्तितरुणकलहंसिकाश्लाघ्यतमा ये "शोभन्ते । "याँश्च निर्मलगुणपरीतान् सदा-
मलकोपमानमुक्तान् समुज्ज्वलान् सद्गुणान् हारानिव हृदयावनिभागान्नापसारयन्ति क्षण-
मपि गुणगृह्या महान्तः । "यैश्च चित्रकूचरित्रैर्जगज्जैत्रातिमात्रतरः सम्पदन्धम्भावुकसर्व-
जनीनस्वास्थ्यभरलुण्टाको विवेकोत्सेककुट्टाकदुर्विधः कुसुमायुधः शान्तदान्तैरपि पराजि-
त्यानङ्गीकृतः । "येभ्यः सदभ्यस्तप्रशस्तवास्तवस्तुत्यपवित्रचरित्रविचित्रशतपत्रपद्मपद्महृदेभ्यः
प्रभृतां परिस्तृतस्वर्भूषणोऽन्तरालां विशालामुत्कलोलमालां स्फुरत्कीर्त्तित्रिदशशैवलिनीं
स्थाने स्थाने श्रुतिपुटाञ्जलिभिः पाद्यं पाद्यं प्रायः के के विबुधविसरास्तुष्टिपुष्टिजुष्टा न समा-
पनीयन्ते । ["..... "..... ?] "येषु च वर्यचातुर्यगाम्भीर्यौदार्यस्थैर्यार्जवमार्दवमहिम-
गरिमादिमा रमणीयास्तत्तदुणगणाः कलियुगभयत्रस्ता इव युगपद्वासं विदधति । अपि च-

लब्धप्रतिष्ठा नवसु ग्रहेषु ये सूरभूता अपि भूतलेऽस्मिन् ।

चित्रं न सार्द्धं विबुधैर्विरोधं वहन्ति विश्वं न च तापयन्ति ॥ ९३ ॥

§ ४. ते नवीनपीनशारदेन्दुसुन्दरकुन्दकुमुदकेतकोदरसोदरदरद्विचिकलकुलकुवलयदल-
धवलसकलजगज्जङ्गलानिस्तुलस्थूलयशःपटलधवलीक्रियमाणत्रिभुवनभवनभित्तिभागा
गगनप्रदेशा इव सद्मङ्गला अपि बुधसेविता अपि चन्द्रोदयभासि वसतौ शोभमाना अपि
नभोगसम्पन्ना अपि घनाश्रया अपि न च ये ग्रहान्विताः, पुरुहूता इव नाकविख्याताः,
वैनतेया इव नागमाधिक्षेपकराः, पद्माकरा इव नालसहिताः, शब्दशास्त्रप्रदेशा इव नाम-
सम्पन्नाः, सुकविकृतकाव्यप्रकारा इव नानायतिश्रितपादाः, आर्यानुगताश्च; सत्तमाः शान्त-
चेतसाम्, विशिष्टाः प्रतिष्ठावताम्, अग्रेगण्या गणवताम्, आश्रयाः स्थेयःसंयमश्रियाम्,
आद्या विद्यावताम्, वर्या आर्याणाम्, सारसूरीन्द्रपट्टकमलाकमलिनीकमलिनीवल्लभा जग-
हुल्लभशुभप्रभावप्रकटश्रीसूरिमन्त्रप्यानध्यानसन्धानविधुतसबाह्याभ्यन्तराधिव्याधिप्रसराः
सर्वाङ्गसुन्दराः सुगृहीतनामधेयाः परमध्येयाः श्रीजिनभद्रसूरिसुगुरुसार्वभौमाः, पं० पुण्य-
मूर्तिगणि-पं० मतिविशालगणि-वा० लब्धिविशालगणि-वा० रत्नमूर्तिगणि-पं० मतिराज-
गणि-वा० मुनिराजगणि-पं० सिद्धान्तरुचिगणि-पं० सहजशीलमुनि-पं० पद्ममेरुमुनि-पं०
सुमतिसेनगणि-विवेकतिलकमुनि-क्रियातिलकमुनि-भानुप्रभमुनि-प्रमुखसुमुखकल्मष-
पराङ्मुखसुखसन्तोषविशेषप्रेङ्खत्प्रेक्षोल्लेखकृतपातकनिष्पेषदूरापसारितद्वेषविशुद्धवेषविधुत-
विगाननिस्समानन्यत्कृतमानसम्यग्ज्ञानविनीतदोषवितानदूरञ्जनीयजनरञ्जनसार्थजन्यस-
र्वाङ्गीणगुणोद्गामरक्रियाकाण्डशौण्डीरधीरमोहामप्रकामसंयमारामविहारदक्षमुमुक्षुसित-
पक्षशिरोविसरशेखरीक्रियमाणक्रमणराजीवरजोविस्तारा वर्णनातीतगुणप्राग्भारा विज-
यन्तेतमाम् ॥ ५ ॥

[विज्ञप्तिपत्रप्रेषक - उपाध्यायश्रीजयसागरसमुल्लिखितस्वकीयस्थानादिवर्णनम् -]

§ ५. अन्यच्च, अस्ति विविधवसुधावलयभालभूषणललामोपमानो नानाग्रामाकरपुरपत्तन-
सन्निवेशसरित्सरोवरघनविपिनाद्यास्थानरामणीयकस्पृहणीयतमोद्देशः प्रसृमरामेयश्रीनिवे-

शसम्पन्नशर्मादेशः, विमलतरतुरङ्गरङ्गतरङ्गशृङ्गतरत्तरुणलक्षणचटुलचक्रवाकचलदूबकोटका-
रण्डवमण्डलीमण्डितोपान्तया पुण्यागण्यपानीयया पश्चिमपयोधिमभिसरन्त्या स्थूलोल्लोल-
मालाविलासच्छलादूरात्सङ्गमोत्कण्ठया कोमलभुजलताः स्वपतिं प्रति विस्तारयन्त्येव नदीमा-
तृकजनोज्जीवनजीवनया लालसहंसया विपाशया, चन्द्रभागया, ऐरावत्या, सिन्धुमहानद्या
च सर्वतोऽधिभूमिं प्राप्तप्रसरयोपेक्षितजलदप्रवेशः सिन्धुनामा देशः ।

अपि च—

नानाकलिकलाकुतूहललसत्कल्लोलरत्नाकरो, देशः कस्य स सम्भवेन्न रतये प्रोन्निद्रभद्रावनिः ।
क्रीडाक्रीडविहारिणो रचितबिम्बोकानशोकानलं, लोकान् यत्र निरीक्ष्य वेत्ति जनता स्वर्गोऽयमेवास्ति किं ! ॥९४॥

किञ्च—

यो धनैः सङ्कुलोऽप्युच्चैः सदाऽऽयोधनवर्जितः । वनानि यत्र पान्थानामवनानि भवन्त्यहो ! ॥ ९५ ॥
सदम्भा यत्र तटिनी सङ्कुरङ्गा वनावनिः । सक्षया च पुरी ख्याता जनता न तु यत्र हि ! ॥ ९६ ॥
धनानि यत्र लोकानां विपुलानि मनांस्यपि । परार्थकरणेष्वेव रमन्ते सर्वदाऽपि हि ॥ ९७ ॥

तस्य महामण्डलस्य मुखमण्डनं श्रीमन्मलिकवाहनाभिधानं श्रीनिधानं पुटभेदनं
वरीवर्त्ति ।

तथा च—

रङ्गद्वैरीगणश्लाघ्यं श्रीदपुण्यजनाश्रयम् । महेश्वरकृतास्थानं यत् कैलासायते पुरम् ॥ ९८ ॥
वनानि नन्दनायन्ते विमानन्ति महागृहाः । दातारः स्वर्दुमायन्ते यत्रामरावतीसमे ॥ ९९ ॥

जना धनैर्यत्र परं जयन्ति दानेन सर्वानपि रञ्जयन्ति ।

कलिप्रभावं परिगञ्जयन्ति देवान् गुरुंश्चापि सभाजयन्ति ॥ १०० ॥

कूलङ्कषाशालितसन्निकर्षेऽत्राभ्रंकपावासलसदध्वजेषु ।

विसृज्य चापल्यगुणं स्वकीयं श्रियः स्थिरा आढ्यगृहेष्वभूवन् ॥ १०१ ॥

यस्मिन्नन्यान्यदेशीया नैगमा लाभकाङ्क्षिणः । निवसन्ति सुखं पद्माकरे मधुकरा इव ॥ १०२ ॥

तत्र श्रीजिनमतप्रभावकश्रावकसङ्कुले श्रीजयसागरोपाध्यायाः, मेघराजगणि-सत्य-
रुचिगणि-पं० मतिशीलगणि-हेमकुञ्जरमुनि-पं० सप्त(मय)कुञ्जरमुनि-कुलकेशरमुनि-
अजितकेशरमुनि-स्थिरसंयममुनि-रत्नचन्द्रक्षुल्लकपुरोगप्रोत्सर्पत्परमार्थसाधनाभियोगसु-
स्थितमनोवाक्काययोगसारानगारपरिवारप्रसाधिताध्याया वर्त्तन्ते ।

तान् श्रीजिनभद्रसूरीश्वरांस्तथाभूतांस्ते श्रीजयसागराभिषेकाः सादरमप्यपास्तदरं सब-
हुमानमवमतमानं साञ्जसमप्यनसमञ्जसं सप्रश्रयं सविनयं सहर्षं सरोमोद्धर्षं सानन्दं
सविस्रयं त्यक्तस्त्रयं सोल्लासं सप्रकाशं दिवसकरसम्मितावर्त्तवन्दनेन सुखसम्पत्तिसाधनेन
शिवाध्वस्यन्दनेन दुष्कर्ममर्ममशिलोच्चयच्छेदनसङ्गन्दनेन घनाघनेनेव विनयाङ्कुरविपिनमु-
ल्लास्य आलस्यं च परास्य सुस्फीतिपुण्यप्रीतिस्यूतसदूयुक्तिभक्तिभावं प्रकाशसञ्ज्ञवो गलि-
तमन्यवो विज्ञपयन्ति । पुनरेतदर्थसङ्ग्रहश्चेत्थम्—

नम्यान् प्रणम्य सम्यक् श्रीअणहिल्लपत्तनाभिधानपुरे ।
संस्थायुकान् सतत्रान् श्रीमज्जिनभद्रसूरिवरान् ॥ १०३ ॥
श्रीसिन्धुदेशमध्यगमल्लिकवाहणपुराजगत्ख्यातात् ।
जयसागराभिषेका वन्दित्वा ज्ञापयन्तीत्यम् ॥ १०४ ॥

*

[श्रीजयसागरोपाध्यायज्ञापितस्वकीयकार्यप्रवृत्तिवर्णना -]

§ ६. तथा च - इह हि मिहिरकरस्पृष्टानि पुण्डरीकाणीव सदुपकारतुष्टानि सज्जनजनमनांसीव धाराधरधाराहतकदम्बवृन्दानीव च विलसदुल्लासपेशलानि सुखविजयारोग्यसुभगम्भावुकानि भविकानि श्रीमत्पादप्रसादसम्पदोत्सर्पमाणानि प्रोज्जृम्भन्तेतमाम् । दूरापसारितामितशोचनं तमस्तोमविरोचनं सुखसम्पत्तिसंयोजनं प्रीणितसज्जनजनं अकाण्डामृतकुण्डमज्जनं प्रयोजनं चादः - यथा, समायासीदसीममहिमप्राज्यश्रीपूज्यराजप्रहिता सर्वजनमहिता हितावहस्वरूपपक्षभरं विस्तारयन्ती सन्मानसप्रिया नालीकवदना मधुरवाक्यपेशला कोमलपदपङ्क्तिर्लिखितिकलहंसिका चिरकालादस्मत्करकुड्मलकमलाऽलङ्कारिष्णुभावमिति । सा च तत्रत्यतत्तदशेषविशेषप्रख्यापनकूजनेनासन्मनःपरितोषमपुषत् । सा कथमिव वर्णनातिगुणा वर्ण्यते ? - "या कुमुद्वतीवातीव विमलसितपत्रप्रतिष्ठिता नालसहिता च लसन्नीलमणिवर्णनीयसुवर्णसवर्णाक्षरदक्षरभ्रमरमालालङ्कृतमध्यभागा निरुपमतमनवनवलसद्रसमकरन्दविन्दूद्भावनेन भव्यालिं तर्पयामास । "यां चाल्पद्भुतप्रचितसुरचनवचनचातुरीचारुक्तियुक्तसूक्तवर्ण्यवर्णक्रमन्यासमञ्जुलां निभालयन्तो विस्मयविस्मृतनिमेषतया निवातनिश्चलनीलोत्पलपलासायमानलोचनास्तत्तदर्थकौतुकाकूततरलितमनसो विद्वांसो बोभूयांचक्रिरे । "यथा च पर्जन्यवृष्ट्येव विविधबन्धुरमधुरसद्युक्तिप्रकारसमाचारामृतासारं वर्षन्त्या तुष्टिपुष्टीश्चतुरचेतश्चातका निरातङ्गाश्च चेक्रीयांचक्रिरे । "यस्यै च शरद इव नाना सहृदयजनहृदयजलाशयपङ्ककोषिण्यै सर्वजगत्तोषिण्यै कुवलयोल्लासपोषिण्यै समस्तशस्ताशाप्रसन्नीकुर्वन्त्यै स्पृहयन्ति साधुराजहंसाः । "यस्याश्च चञ्चल्लया इवोद्वृत्तैः सरससदुक्तिसूक्तफलपटलैर्मनोबालकं रमयन्ति सन्तः । "यस्याश्च बहुलरत्नापूर्णायाः परमोदकानुभावाया विलसद्गाम्भीर्यगुणवर्याया उल्लसदविरलोज्ज्वलानवद्यगद्यमालामाद्यत्कल्लोलायाः स्फुरद्धेतुयुक्तिजातसम्पातवक्रनक्रचक्रदुरधिगमायाः पयोधिवेलाया इव मध्यं कथमप्यवगाह्य विबुधबुद्धिवेडाकष्टेन कथञ्चित् पारीणभावमनुबोभूयते । "यस्यां च सरस्यामिव मधुरघनरसप्रशस्यायां जगज्जन्तुतापव्यापनिर्वापपरायां चातुरीलहरीभिरुल्लसन्त्यां भारती भगवती हंसीव हसन्तीवोल्लसन्तीव वसन्तीव स्नान्तीव मज्जन्तीवोन्मज्जन्तीव किलन्तीव क्रीडन्तीव साक्षादिव नित्यं लक्ष्यते ।

किं बहुना ? -

विनाज्जनं लोचनयोर्विकाशनं ह्यनभ्रवृष्टिश्च वपुष्यतर्किता ।

विनापि राज्यं सुखसम्पदासीत् किमप्यपूर्णा गतिरेतदीया ॥ १०५ ॥

अपि च -

नयनसुखदां पायं पायं मुहुर्नयनाञ्चलैः, सुचिरमपि यां ग्राहं ग्राहं मुदा करकुड्मलैः ।

हृदयनिहितां कारं कारं स्फुरत्पुलकाङ्गका, वचनविषयातीतं तोषं परं स्म लभामहे ॥ १०६ ॥

§ ७. सा तादृक्षा क्षपितजगत्तापा स्वसुखावस्थानभव्यजनतत्तदगण्यपुण्योपकारविधाननव-
नवस्थानविहरणमज्जनमतप्रोत्सर्पणतत्तदन्तिषदध्यापननानाधर्मोत्सवविधापनवरव्या-
ख्यानविधानादिरूपशुभरूपस्वरूपनिरूपणदीपिका यथावसरं तदनागमहिमागममुकुलिता-
स्मन्मानसानन्दमाकन्दवृन्दोल्लासिनी वसन्तर्तुरिव सदाऽह्वाय प्रसह्य प्रसाद्या । तथा वयमत्र
5 विघटमानकमलकोशमध्यनिर्गच्छदतुच्छोत्साहवशमाद्यन्मधुकरझङ्कारकृतप्राभातिकमङ्गल-
ध्वनौ सङ्घटमानचटुलचक्रमिथुनपृथुप्रमोदौजस्विमञ्जुकूजनकोलाहलिनि सञ्जायमाने विभात-
समये, अपराशासंसर्गरङ्गद्रागात्मपल्यवलोकनोत्पन्नमन्युवैमुख्यां प्राचिदिग्विलासिनीं
कोमलतरैः स्फुरत्कश्मीरजरजोराजिमञ्जिमजित्वररञ्ज्यत्कौङ्कुमाम्भःशुभत्कौसुम्भकुसुमकिं-
शुकशुकचञ्चुरचलत्किङ्किलिपल्लवहिङ्गुलप्रवाललीलामनुभवद्भिः प्रसृत्वैः करप्रसरैः
10 प्रसादयितुमिव प्रसाधयति स्पृशति जगत्प्रबाधिप्रबोधप्रथमप्रारम्भमङ्गलकलशायमान-
मण्डले मार्त्तण्डे कलहंसशावकेषु प्रथमोन्निद्रेषून्मुद्रितलोचनेषु तत्कालोज्ज्वलमानकमला-
करकेशरैः कल्पवर्त्तं कुर्वत्सु सङ्गतिभावोल्लासभाजनजनितजिनसभाजनसभाजनस्वान्त-
पोतकान् मधुमधुररसेक्षुरसपायसमाधुर्यजैत्रश्रीवामेयचरित्रगतोपदेशपेशलपृथुलप्रातराश-
प्रदानेन पुण्यपुष्टिभाजः सम्भावयन्तः, मध्यंदिने मतिशीलगणि-सम[य]कुञ्जरमुनि-स्थिर-
15 संयममुनीन् अधीतज्येष्ठक्षेत्रसमासादिधर्मप्रकरणान् कर्मग्रन्थं कर्मविपाकाख्यमध्यापयन्तः,
तद्वयं चाभिनवकाव्यशिक्षायां योजयन्तः, रत्नचन्द्रक्षुल्लकं चाधीयमानस्वाध्यायं शब्दब्रह्म-
व्याकरणमधिजिगापयिषन्तः, परान् निर्ग्रन्थानपि तत्तल्लक्षणान्वेषिकीनिघण्टुस्वाध्यायादिग्र-
न्थपाठनेन यथासमयं सग्रन्थानादधानाः, वनीपाला इव नवनवागमान् कदाचित् सारयन्तः
प्रमादपिशुनोपप्लवाच्च निवारयन्तः, कदाचिदुच्चावचाभिग्रहोपचितपवित्रव्रतजालविटपिनो
20 भव्यजनस्वान्तमृदुलतमक्षितितलप्ररूढान् सद्युपदेशशंवरयोगेन प्रौढिं प्रापयन्तः, कदाचि-
दन्तिषन्मतिव्रततिकाः शास्त्रतात्पर्यपर्यालोचनप्रकारमण्डपोन्मुखीः समारचयन्तः, कदा-
चिदवनीपाला इव विविधविषयनयस्वरूपसात्म्यं परिभावयन्तः, कर्हिचिच्चापणिका इव
प्रमाणप्रमेयव्यवहारचातुरीं परीक्ष्यमाणाः, कदापि महासुरसेनाश्रितं नव्यं काव्यं देवा इव
निबध्नन्तः, कदाचिद् बुधवद्देवगुरुसान्निध्यात् तुष्टिपुष्टिभाजः सांयमानाचारणीयान् योगान्
25 समग्रानपि यथाकालं यथार्हं प्रयुञ्जानाः, आवश्यकेषु तेषु तेषु धर्म्येषु कर्मसु कृतावधानाः,
कदाचित् संयममयात्मारामे मनोमयूरं रंरमयन्तोऽनूपदेशा इव सर्वतः कुशलताप्रधानाः
श्रीपरमेष्ठिवर्द्धमानमहामन्त्रविद्यावीजाक्षरस्मरणत्रिषवणेन सर्वाङ्गीणं पापतापं न्यत्कुर्वाणाः,
श्रीमच्छ्रीपूज्यराजवर्यपादप्रसादसौधमध्यासीनाः प्यानशुभध्यानं दधानाः, सपरिच्छदा वि-
शदसमाधिनिस्तुषसुखविजयारोग्यसमाधिशुद्धा वेविद्यामहेतमाम् । तथा शुभवद्भिस्तत्र
30 भवद्भिर्भदन्तमहत्तरैर्यल्लिलिखानमासीद् -

“यद्युष्माभिः केषु केषु स्थानेषु पुरेषु ग्रामेषु वा विहृतम् ? क्व वा तीर्थे यात्राविशेषधर्मकर्म शर्मकार्यजितम् ?
आगन्तुकलोकवार्तया तु भवन्तो नगरकोट्टाय प्रतिष्ठासवः शोश्रूयांचक्राणास्तत्त्वं तु सम्यक्तया न जानीमः, तेन स्वकीय-
विहारयात्राप्रकारादिविशिष्टज्येष्ठपुण्यात्मकः समाचारोऽस्मच्छ्रुतिशङ्कुलीवलयगावही विधेयः” - इति ।

तत्रार्थे क्षणमेकं दत्तावधाना अवधारयन्तु गच्छेशाः, यथोत्तरार्हा भवामः ।

[श्रीजयसागरोपाध्यायकृतमरुकोट्टीर्थयात्रासूचनम् -]

§८. तथा च-इतः पूर्वमपूर्वसुपर्वश्रेणिरमणीये श्रीदत्तपुरुषोत्तमाश्रमे स्वःसमे श्रीमम्मण-
वाहणपुरोत्तमे पुरातनीं चतुर्मासीमसीमसुखसम्पत्त्या सूत्रयांचक्रिम । तदनु च सं० सोमाक-
स्तत्पुत्र-सं० अभयचन्द्रमेलितेन सङ्गेन समं श्रीमरुकोट्टमहातीर्थं भवाम्भोधितीर्थं पृथ्वी-
भक्तयो वयमवन्दिष्महि । ततश्च क्षेमेण मम्मणपुरे परमं प्रवेशोत्सवमनुभवन्तः ससङ्घा
वयं प्राप्ताः ।

इतश्च -

फरीदपुरमित्यस्ति पुरं परमवैभवम् । बहुधान्यधनसम्पन्नं सम्पन्नोज्जति यत् क्षणम् ॥ १०७ ॥

यदेव देवगुर्वाज्ञासज्जनसङ्कुलम् । पदं मुदामुदाराणां ताराणामिव पुष्करम् ॥ १०८ ॥

दीनदर्श दयन्ते ये दयन्तेऽर्थिजने धनम् । दीयते दुरितं तेषां धर्मध्यानानुभावतः ॥ १०९ ॥

श्रीमज्जिनेन्द्रशासनप्रभावकाः श्रावकाः शुचिमनस्काः ।

निवसन्ति तत्र बहुला बहुलाभा लसितलक्ष्मीकाः ॥ ११० ॥ (-युग्मम् ।)

तदा च लब्धवासराः स्फुरत्सद्भावभासुराः । तेऽस्मान्भ्यर्थयांचक्रुर्विहर्तुं स्वपुरं प्रति ॥ १११ ॥

प्रास्थिष्महि ततस्तस्मात् तदाग्रहवशाद् वयम् । साधु-भानु-समीराणां स्थितिनैकत्र युज्यते ॥ ११२ ॥

क्रमेण द्रोहडोटादीन् ग्रामानुद्दामवैभवान् । मध्ये कृत्योत्सवे प्राप्ताः श्रीफरीदपुरं पुरम् ॥ ११३ ॥

तत्र च विविधधर्मोपदेशामृतसेकेन भव्यलोकविवेकाङ्कुरानुज्जीवयतां जिनमतं प्रभाव-
यतां कांश्चिद् ब्रह्मक्षत्रियब्राह्मणादीन् जिनमतानुभक्तीन् कांश्चिद् भद्रप्रकृतीन् तैस्तैर्द्धर्मोप-
देशैः कृतार्थयतां सतां सपरिच्छदानां समाधिसमृद्धो बंहीयानननेहा व्यतीयाय ।

[नगरकोट्टमहातीर्थपरिचयप्राप्तिनिवेदनम् -]

§९. अन्यदा च प्राचीमुखमण्डने भानुमति जायमाने जगद्व्यवहारहेतौ प्रत्यूषसमये
आसीनायां राजन्यवाणिज्यब्राह्मणादिपरःशतोत्तमजाल्यजनपर्वदि धर्मोपदेशक्षणं क्षणा-
दासूत्र्य निवृत्तेष्वस्मत्सु गायनेषु च कलस्वरताललयमानबन्धुरां गीतिमुद्गायत्सु अकस्माद-
तर्कितः कुतोऽपि -

धूलिधूसरितकूर्चकुन्तलो वामहस्तविलसत्कमण्डलुः ।

क्षामकुक्षिरतिवीथ्यतिक्रमात् कोऽपि जीर्णवसनोऽध्वगोऽभ्यधात् ॥ ११४ ॥

आगत्य चोचितं विनयं व्यञ्जयन् समुदितमना मनागुन्नमितोत्तमाङ्गः पुरस्तादासांचक्रे ।
वयमपि सदाकृतिरिति तमाभाषयांचकृम - “भोस्तीर्थयात्रिक ! पथिक ! कुतः प्रष्टव्योऽसि ? केषु केषु
तीर्थेषु दृष्टपूर्वीभवान् ? ‘नानादेशविहारिणः खल्वपूर्वापूर्वस्थानदृष्टवानो भवन्ति’ - तत्कथय काञ्चिदपूर्वमृतायमानां
किंवदन्तीम् । परितोषय क्षणं पर्वदम् ।” असावपि - “श्रूयतां महाभागाः” - इत्यभिधाय सुधाकिरा गिरा
भणितुमारभत । तथा च -

“अस्त्युत्तरस्यां दिशि सञ्चितः श्रिया स्त्रीपुंसरत्नोत्कररोहणाचलः ।

देशस्त्रिगतोऽर्त्तिहरोऽधिवासिनां तीर्थैर्गरीयानचलैरिवात्र यः ॥ ११५ ॥

तत्रापि पावनं तीर्थं श्रीसुशर्मपुरे परम् । दशोरध्वन्यतां याति पुण्यैरेव हि देहिनाम् ॥ ११६ ॥

देवाधिदेवनाभेयादिकान् नत्वाऽऽलयास्थितान् । द्वेषापि परमानन्दप्राप्तं स्वं मन्यते बुधाः ॥ ११७ ॥

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

तीर्थमनादियुगीनं वाङ्मानसागोचरप्रभावाढ्यम् । यैर्दृष्टं दृष्टिभ्यां तैर्द्रष्टव्यं जगति दृष्टम् ॥ ११८ ॥

ते धन्यास्ते सुजन्मानस्तेषां वर्ण्या च वैदुषी । गत्वा जालन्धराधीशानानर्चुर्ये जिनेश्वरान् ॥ ११९ ॥

म्लेच्छव्यासेषु देशेषु निखिलेषु कलौ युगे । निरत्ययं हि तर्त्तार्थं मराविव सरोवरम् ॥ १२० ॥

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं कियद् वच्म्यपटिष्ठधीः । तदुपास्य ततः पश्चाद्वन्यमन्योऽत्र चागमम् ॥ १२१ ॥

तदेतदत्यद्भुतं स्वदृष्टमुक्तं वाच्यं न्यक्षेण तद्विदांकुर्वन्तु । गन्तव्यो नोऽद्यापि महानस्ति पन्थाः ।”-इत्यभिधाय प्राचालीत् । तदनु च तथा वार्त्तया हृतमनस्का इव चित्रलिखिता इव सञ्जातरणरणका । आग्रहग्रहिला इव वयं ससभ्या बभूविम । मनसीत्थं विचारितवन्तश्च-यदुत म्लेच्छालेऽस्मिन्नपि नीवृत्यभ्येत्य तत्तादृङ्मिथ्यादृग्दुष्टजनानननिभालनोत्पन्नमालिन्यमलस्पृशो-शोर्विमलतानिदानतत्तथाविधतीर्थदर्शनसुधासरःसम्पर्केण विशदता नापादयिष्यते तर्हि इते सरसि तृषा, सिद्धे परिवेषितेऽप्यन्ने बुभुक्षा, सति विभवेऽपि दारिद्र्यं, समुदिते भानौ मः-’-इति न्याय आयातः । ततो येन केनापि प्रकारेण यथाकथञ्चिदेषा यात्रा समा-ज्यते तदा साधु, अन्यथा पुनः क वयं क च श्रीनगरकोट्याख्यं महातीर्थमिति मनोरथो-अन्मनःपूर्वाद्रौ हिमांशुरिवोदैषीत् । एवं च ते ते श्रावका अपि यात्रायां जातोत्कण्ठा यमिव भृशं बभूवुः । विशिष्य च तदा-

साधुराणासुतश्रेष्ठाः शिष्टाचारानुसारिणः । निवसन्ति त्रयस्तत्र त्रयो वर्गा इवाङ्गिनः ॥ १२२ ॥

तेषु प्रथमकः सोमो धर्मकार्यधुरन्धरः । द्वितीयः पार्श्वदत्तोऽस्ति हेमस्तु गरिमास्पदम् ॥ १२३ ॥

तत्र तद्योग्यतां मत्वा तत्कार्यं तेभ्य एव हि । उपदिष्टं तदाऽस्माभिरुत्तमं द्युत्तमोऽर्हति ॥ १२४ ॥

ते चैवं चिन्तयांचक्रुस्ततः शुद्धाशया रहः । यायावैरैर्धनभारैः स्थावरं पुण्यमर्ज्यते ॥ १२५ ॥

गुरुपदेशाच्चेद्यात्रां कुर्मोऽत्रावसरे वयम् । निर्मलं सुकृतं कोशे विश्वे कीर्त्तिश्च तादृशी ॥ १२६ ॥

इति ध्यात्वा स सोमेन्दुः सबन्धुः साहसाग्रणीः । क्षमाश्रमणदानेन यात्रोपक्रममादधे ॥ १२७ ॥

[सा० सोमास्वीकृतनगरकोटतीर्थयात्रोपक्रमवर्णनम् -]

§ १०. ततश्च सुमहर्द्विकः सपरिच्छदो यावता तत्तत्सन्निवेशेषु सङ्गमहाजननिमन्त्रणमहा-
अप्रणिधानपुरस्सरं तत्तत्सङ्गसम्महनिकायां प्रवृत्तः, तावता वयमपि तत्रत्यसङ्गाग्रहेण
रिमावारषपुरं श्रद्धालुगृहशतसङ्कुलं समुपेयुम । तत्कीदृशम्-

धार्मिकोऽपि जनो यत्र चित्रं जीवार्दको न हि । न चापविद्याकुशलो मार्गणानपि नास्यति ॥ १२८ ॥

तत्र च वर्त्तमानाः कांश्चन परतीर्थ्यान्पि जिनशासनानुकूलमनस्कान्, कांश्चन नवनवा-
भग्रहविशेषप्रदानैश्च श्राद्धानिव वाडव-क्षत्रिय-वैश्यान् कृतार्थान् कुर्वन्तः, तथाविधधर्मो-
देशोल्लसद्देशनाप्रदीपकलिकोज्ज्वलभणेन कापथसञ्चरिष्णून् जनान् सत्पथपान्थतां कांश्चन
ापयन्तः, पुण्यफलाः कियतीरपि कालकलास्तत्रैवातिवाहयांबभूविम । अन्यदा च, तथा-
विधसर्वविकृतित्यागमयाभिग्रहग्रन्थि समासिसत्यकारानुरूपवस्तुक्रयविक्रयव्यवहारिणा
तृहरिश्चन्द्रसहचरेण सा० शिवराजसुश्रावकेण परमनैष्ठिकेन समाचञ्चूर्यमाणे सङ्गवात्स-
येऽनुतेष्टीयमाने च सङ्गसत्कारे तोष्यमाणे यथौचित्येन याचकस्तोमे गायत्सु सर्वलोक-

प्रकटं गायनेषु परिसर्पत्याकाशं स्वर्गिणामिदं वृत्तं निवेदयितुमिव वादित्रनिनादे शुभ-
वेलायां ग्रामठकुरादिलोकसमक्षं श्रीआदिजिनप्रतिमां प्रत्यतिष्ठिपामतमाम्; एवं तोष्टू-
यांचकूम च-

तंतंतुतातो तीतेतिः, तांतांतांतततोतुत । नृनानिनुन्ननानैना अन्नेनो न इनो ननु ॥ १२९ ॥

सम्पन्नमोक्षावसथो विकल्मषः समापयंस्तामसमर्थमोपमः ।

सनातनोद्दामसमृद्धिशस्यः स वः प्रदत्तामसमं शमुद्धरम् ॥ १३० ॥

वन्दितो वृषभेश ! त्वं महामहिममन्दिर ! । महाशयस्य भक्तस्य समाधिभरमीश्वर ! ॥ १३१ ॥

(-अष्टारचक्रम्, परिधिश्लोकः, क्रियागूढश्च ।)

तदित्थं सङ्घकार्यमाचर्य तत्कालागत - सा०रामा-सा०सोमा-हेमा-सा०देवा दस्सु-पुरस्सर-
फरीदपुरीयसङ्घामन्त्रेण ततो विहृत्य पद्धत्यन्तरालायातेषु तेषु तेषु बहलभक्तिभावमञ्जुलवि- 10
पुलश्रद्धालुकुलमण्डलाभिरामेषु ग्रामेषु तत्रत्यजनकारितानुत्साहोत्सृतपताकापल्लवान् पदे
पदे प्रवेशोद्धवान् साक्षात्कुर्वन्तः, क्रमेण प्रस्तुतास्पदमलमकार्ष्म । ततश्च सङ्घो गणकमुप-
वेश्य सङ्घयात्राप्रस्थानमुहूर्त्तं निश्चिकाय । तदा चावसरे गुर्वास्थास्थेमभाजः सुवहवो बहु-
मन्यन्ते स्म । यदुतेदृशे विषमदेशकालादिभावेऽप्यचिन्त्यादृष्टसामर्थ्यादमूहशं नाम कार्यं
सरेदपीति । केचन पुनः कथञ्चित्थाविधव्यवहारेण यात्राकारिष्वगारिषु साभ्यसूयास्त- 15
दुन्नतिं भाविनीमसहिष्णवोऽन्यथाऽन्यथा व्यब्रुवन् । केऽपि च मध्यस्थाः कालादिभाव-
वैषम्यं ज्ञापितवन्तः - 'यदेतादृशेन सङ्घेन दूरदेशान्तरप्रस्थानं न युज्यते' इति । महाकार्या-
रम्भे सुलभे एवंविधे लोकवादे क्षणं दोलारूढमिव नश्चेतः समभूत् । ततः पारिणामिक्या
बुद्धयेति मीमांसामहे स्म - यदुत, लोकः खलु परविघ्नसन्तोषी; यद्वा लोकवाक्यानां नैकः
प्रकारः, यदि तादृग्लोकवाङ्मात्रेण स्वीयते तदा द्वयोरपि न शोभा; न स्वयशो नापि 20
परयशो रक्षितं स्यादित्येतत् कर्म निर्मितं वरम्, अनिर्मिते तु कृत्ये मनोमनोरथासिद्धेर-
समाधिः सार्वदिकः, परेषां च प्रस्थायुकानां कलौ कालमुख्यमाविर्भविष्यति । ततश्च मनो
यावन्मनाक् सत्त्वे प्रतिष्ठाप्य श्रीदेवराजपुरमण्डनकुशलशब्दाङ्कितगुरोर्वाञ्छितकल्पद्रोः
प्रणिधानजं स्फुटरूपमुपदेशबलमासीसदाम । तदेतत् पिपासितस्य सुधापाननिमन्त्रणं नृत्ये-
च्छोर्धर्घरस्रग्वन्धनं भृशमुन्मनीभावमुदपीपदत् । ततश्च तदादेशेन सन्नाहेनेव स्वचेतःश- 25
रीरं सन्नह्य साध्यसिद्धौ नितरां बद्धाध्यवसाया जातवन्तः । धर्मो जयति । त एव पूर्वगु-
र्वादयः शरणमिति कृत्वा । इत्यलं विस्तरेण । प्रकृतं प्रस्तुमः ।

अथ च शोभने दिने प्रशस्ते मुहूर्त्ते शुभकर्मप्रायोग्ये च योगे प्रियंकरणे, उच्चैर्गृहस्थेषु
ग्रहेषु, सौम्यस्वामिदृक्सम्पन्ने लग्ने, यात्रार्हे च नक्षत्रे वर्त्तमाने, सा० सोमाकेन श्रीतीर्थप्रणि-
नंसया च प्रेरितपरमप्रमोदोल्लासेन चोत्साहितः श्रीसङ्घः प्रस्थानमङ्गलमसाधयत् । 30

मङ्गलं भगवान् धर्मो मङ्गलं जिनशासनम् । मङ्गलं तन्मतः सङ्घो यात्रारम्भोऽतिमङ्गलम् ॥ १३२ ॥

*

॥ इत्येषा विज्ञप्तित्रिवेण्यां प्रस्तुतार्थप्रस्ताविका सरस्वती-

कल्लोलाख्या प्रथमा वेणिः ॥ १ ॥

*

२. अथ तीर्थयात्रार्थसमर्थिका द्वितीया वेणिरारभ्यते ।

*

[तीर्थदर्शनार्थकृतप्रयाणावसरे संजातशुभशकुनवर्णनम् -]

१. तथा च, श्रीसङ्घस्य प्रयाणावसरे शुभोदकसम्पर्कशंसिभिः शकुनैश्चेत्थं विजृम्भितम् -
ग सङ्घस्य प्रस्तुतपुण्याशासाफल्यं सम्भावयन्त्य इव सावशेषा आशाः पुण्यप्रकाशा
सन् । परमाराध्यसान्निध्यकृतमार्गविघ्नभञ्जनस्य यात्रिकजनस्य भाविसुखव्यञ्जना इव
मञ्जना अनुकूलं ववुः । नास्ति किञ्चिद् युष्माकमवामदैवानां दुर्गममिति कथयन्तीव दुर्गा
मा शब्दं चकार । शङ्कुकर्णोऽपि स्वात्मनि प्रस्तावदक्षतामिवारोपयन् वामदिग्भागमा-
त्य कोकूयामास । मौक्तिकाख्यः श्वा सव्याह्वां श्रयन् साधूनां प्रस्थानमङ्गले सान्निध्य-
व व्यधात् ।

अपि च-

कुम्भोऽम्भोनिभृतोऽभ्यगादभिमुखं शङ्खो जुघोष क्षणं, क्षोणीशाभिगमः सवत्ससुरभेरीक्षा च ढोलध्वनिः ।
फेसर्वाभरवश्चुकूज मधुरं जातत्वरस्तिस्तिरिरेवं सच्छकुनावलीद्विगुणितोत्साहा वयं प्रस्थिताः ॥ १ ॥

[विपाशातटिनीतीरकृतप्रथमप्रयाणवर्णनम् -]

२. ततश्च नाऽतिदूर एव जम्बूकदम्बनिम्बसर्जार्जुनखर्जूरीप्रभृतिवनस्पतिश्रेणिसच्छाये
हुलकमलकिञ्जल्ककल्ककलितसौरभभास्वरेण सरित्तुङ्गाभ्रंलिहलहरिलीलान्दोलनोद्धृतपृषत-
तलेनानिलेन सेवनीयतया मनोहारिणि मुक्ताकणशङ्खबलक्षसिकतोल्लसद्भासि विपाद्-
टेनीरोधसि सङ्घः प्रथमप्रयाणविराममकरोत् ।

ततश्च -

विकचकुवल्यास्या सम्भ्रमद् भृङ्गमालोज्ज्वलबहलकटाक्षी पीनचक्रस्तनाढ्या ।

जललवणिमरम्या दर्शिताऽऽवर्त्तनाभिश्चललहरिभुजाभ्यामाह्वयन्तीव दूरात् ॥ २ ॥

कासहंसपरिहासलीलया तं रिरंसुजनमुत्सुकयन्ती ।

नव्यशष्पवसना व्यलोकि सा सिन्धुदम्भवशतो वराङ्गना ॥ ३ ॥

सन्मार्गरोधिनीं सर्वपथीनां तां च निम्नगाम् । शुद्धामिव मन्यमाना अतिचक्रमिम क्रमात् ॥ ४ ॥

[तदनन्तरमार्गागतान्यान्यस्थानप्रयाणसूचनम् -]

३. तामुत्तीर्य च क्रमेण श्रीसङ्घो नानाग्रामानिवाऽऽरामानुल्लङ्घयन् श्रीजालन्धराननु प्रच-
ाल । चलिते च तस्मिन् विस्मितान्यलोके सकलमहीवल्लयलङ्घनजङ्घालाः करकृतकरवाला म-
भुजा भुजावलग्रबलसम्पत्तयः पत्तयः केचिद् याष्टीकाः केचिद् बलाधिकाः पारश्वधिकाश्च,
ऽपि दृढवपुष्का धानुष्काश्च, केचन वीरकोटीराः काण्डीरा नैस्त्रिशिकाश्च, प्रोल्ललन्तः कूर्धन्तः
रःस्फुरन्तो गर्जन्तो नानारूपप्राप्ता मूर्त्ता वीररसांशा इव स्वामिकार्यदक्षा बद्धकक्षाः पुर-
ादुच्चेलुः । तत्पृष्ठे च स्यौरीप्रष्टा विशिष्टा भूयिष्ठास्त्वरया तुरगानपि मन्दगतिकानिव
म्भावयन्तः प्राचालिषुः । इत्थं च ते ते सङ्घजनाः केचिद् वाहनारूढाः, केऽपि गुरुदेवभक्त्यति-
यात् पादचारिणः, केऽपि मुक्तोपानहश्च वयमिव प्रस्थितवन्तः । तदा च प्रचलत्सङ्घजनान-

नोल्लसद्वहलकोलाहलनिनदैरासन्नवननिकुञ्जेष्वकाण्डकल्पान्तापातातङ्कशङ्काशङ्कुश लियत-
मनसः सम्भावितापदः श्वापदाः कान्दिशीकाः कथञ्चित् कापि निलीयावतस्थिरे । अन्यच्च
तीर्थयात्रामनोरथप्रथितपृथुप्रभावास्ताघस्यानघस्य श्रीसङ्घस्य क्रमस्पर्शवशोल्लसत्सुकृतेन
निराकृतांहोत्रजं तु रजोऽप्युच्चैर्विचचार । तथा च -

नियतं सङ्गलोकाङ्घ्रिलत्तोद्धूतो रजोव्रजः । धन्यमन्यतया मन्ये नृत्यति स्म नभोऽङ्गणे ॥ ५ ॥

एवं चाविच्छिन्नैरेव प्रयाणैर्निर्वृतिस्थानानि पुराणीव वनानि मुञ्चन्, बल्लभारागोचितानि
तरुणचित्तानीव वप्रान्तराणि साक्षात्कुर्वन्, पच्यमानगोधूमसङ्कुलानन्यजपाटकानिव क्षेत्र-
सीमन्तः सुदूरं त्यजन्, क्रमेण निश्चिन्दीपुरीपरिसरसरोवरान्तर्वर्त्तमानोदामविपिनोदण्डपद्म-
खण्डान्तरे कलहंसकलामनुभवन्निवासांचकार श्रीसङ्घः ।

अपि च -

कृताश्रितपरित्राणः सुरत्राणोऽस्ति भूधवः । परन्तपः पुरे तस्मिन्नाके नाकपतिर्यथा ॥ ६ ॥
सोऽथाऽऽकर्ण्य सकर्णानामग्रणीः सङ्गमागतम् । चित्रीयमाणहृदयो द्रष्टुं सोऽप्यौत्सुकायत ॥ ७ ॥
तुङ्गाङ्गतुरगारूढः प्रौढामात्यादिसङ्गतः । अदृष्टपूर्वोर्निर्ग्रन्थानुपेक्षोचितमाचरत् ॥ ८ ॥
अपूर्वदर्शनान् साधून् दर्शं दर्शं नरेश्वरः । विसिष्मिये समं पौरै राजहंसान् मरुत्यथा ॥ ९ ॥
तैस्तैस्तथाविधैर्धर्म्यैरुपदेशैः सुरञ्जिताः । प्रमोदमेवं मनुजास्तदा पुरीश्वरादयः ॥ १० ॥ (-गुप्तक्रियः ।)
“वनमप्यभवद्भयं नगरी तु गरीयसी । प्रदेशोऽयं प्रशस्योऽभूद् येन यूयमुपागताः ॥ ११ ॥
पुरा श्रुताः स्थ गोष्ठीषु श्रुतिभ्यामभ्युपायतः । पुण्योदयेन नः प्राप्ताः साम्प्रतं दृष्टिगोचरम्” ॥ १२ ॥
एवं स्तुत्वा च नत्वा च भूमानानन्दतुन्दिलः । सम्मान्य सङ्घपं वेगात् ततो धाम जगाम सः ॥ १३ ॥
विपाशापयसा छिन्नपिपासाः सङ्घपूरुषाः । स्वगेहनिर्विशेषेण सुखेन प्रस्थितास्ततः ॥ १४ ॥

सर्वतो विसारिणीं सरिल्लक्ष्मीं वामतः साक्षात् कुर्वतामधोऽधो विविधपादपान् सञ्चरतां
तेषाम्, व्यतीते कियत्यपि पथि साधुरिव परमोदकः सच्चित्तप्रकाश इवालब्धमध्यः स्त्रीचरित्र-
प्रकार इवासुगहनः क्षत्रिय इव महासत्त्वाढ्यः क्रीडत्कुरुकेकिबकचक्राङ्गचक्रवालशालित-
परिसरः विस्मेरारविन्दवृन्दो महानेको नदः पुरो दृग्गोचरमवततार । दृष्ट्वा चेत्यूहांचकृवांसः-

नूनं यानतया निषेव्य सुचिरं धातारमाऽऽतूतुषद्, हंसः स्वीयकपक्षिजातिनियतस्थानाय चाभ्यर्थयत् ।
तुष्टोऽसौ तदिदं पदं हि विदधे व्याघ्राद्यगम्यं क्वचित्, तस्मादत्र पतत्रिणः प्रमुदिताः क्रीडन्त्यहो निर्भरम् ॥ १५ ॥

परितोऽपि विसारिणा परितं पयसाऽत्यच्छगभीरभावभाजा ।

वनमेतदुदग्रराजधानीमिव सेवन्ति सुखं विहङ्गराजाः ॥ १६ ॥

अपि च -

स्मितकोकनदं नदमभि रभसा सम्भूय सारसा एते ।

विशमकरन्दास्वादनमत्ताः क्रीडन्ति निर्भीडम् ॥ १७ ॥

अभिकजमकरन्दमापतन्तीं स्थूलोन्नीलसशब्दभृङ्गमालाम् ।

अवलोक्य शिखी घनभ्रमेणोत्केको नृत्यति भासयत्कलापम् ॥ १८ ॥

15504

एवं च समन्तान्नदश्रियं केनचिद्वनेचरेण वर्ण्यमानां श्रुत्वा द्रष्टुमिव रविरुच्चैः पुष्कर-
देशमारुरोह ।

तदा च -

सारङ्गास्तस्कोटराणि शरणीकुर्वन्ति तापादिताः, हित्वा रङ्गममी विहङ्गमगणाः कुञ्जं भजन्तेऽञ्जसा ।
वीथ्यः पान्थनखंपचोच्चरजसा जाता अमूर्दुर्गमाः, तेजोराशिभिरुत्सृते दिनपतौ जाते ललाटंतपे ॥ १९ ॥

अयं नदपरिसरः, एते च सान्द्रद्रुमच्छायाः प्रदेशाः, एते च तुङ्गतरङ्गोद्गृहीतपृषत-
तला अनिलाश्च, यथासमयोपपन्ननिरुपाधिसुखसाधनं तदस्य वचनं तथ्यं सम्भावयं-
त्रैव सङ्घजनः समग्रोऽपि स्थितिं व्यरचयत् ।

अथ च -

प्रदेशे सजले केऽपि तस्थुः केऽपि तरोस्तले । आर्द्रदूर्वावणे केचित् पान्थानामीदृशी दशा ॥ २० ॥

हंसवत्सुचिरं कृत्वा जलकेलिं नदाम्भसि । केऽपि निर्वापयामासुर्मनांसीव वपूंष्यपि ॥ २१ ॥

समाधिमानसौ जातः प्रयाणमकरोत् ततः । अथ क्रमात् समायातस्तलपाटकसन्निधिम् ॥ २२ ॥

तत्पुरोपवनेषु चतुष्पथेष्विवोद्गन्धिसौगन्धिकेषु मन्दमृदुमरुदन्दोलिताभिर्लताभि-
यमान इवातुच्छगच्छच्छायाच्छलेन च्छत्रेणाऽऽभूष्यमाण इव पिककोकचाषादिपक्षि-
तरैः स्वागतं तद्वनाधिष्ठात्र्या पृच्छ्यमान इव कापि महाशोणाभ्यर्णे कीर्णकमलमकरन्द-
दुवृन्दसौगन्ध्यस्पृहणीये भूभागे प्रयाणविच्छेदमकरोत् सः । तत्र च पवित्रविकसित-
वनरामणीयकमनालोकितपूर्वं निर्वर्णयन्तो जना एवमूहांचक्रुः-

किममी सलिलाधिदेवतानां प्रत्यक्षाः प्रसरन्त्यहो ! कटाक्षाः ? ।

किमु वा शुचि तन्निवासयोग्या तासां सौधपरंपरा जलान्तः ? ॥ २३ ॥

किमन्यत् ? एके पद्मवनं दृशा निपिबन्तोऽङ्गुलिभिः पार्श्वगान् सौत्सुक्यमाहुः - “पश्यत
त भोः ! कथममीषु कमलेषु सुगन्धलाभलोलुपा मधुपाः पतन्ति ? । कथं चाकृतपरपीडाः साध्वापीडा इव रसमा-
त ? । अस्माभिरहो ! कूपमण्डुकप्रायैरियद्यावद्यन्तानुशीलितं तदपि गृहान्निर्गतैर्दृष्टम्” - इति । अन्ये तु दाडि-
तलेषु तेष्विव बीजपूरेषु फलितपुष्पितेषु तद्वदग्रेषु द्राक्षाखर्जूरीषु च चक्षुः क्षिपन्ति स्म,
भिलाषपराञ्जुखं नतु मुखम्; इत्येवं यावत्तदभिनवदर्शनोत्पल्लवितचक्षुरानन्दः सङ्घस्तत्र
शे यावदास्ते, तावता -

‘अभिगमणवन्दनमंसणेण पडिपुच्छणेण साहूणं । चिरसंचियं पि कम्मं खणेण विरलत्तणमुवेइ ॥ २४ ॥’

- इत्याद्यर्थजातं कृतार्थयन्निव श्रीदेवपालपुरीयः सङ्घो गुरुवन्दको दुदौके तथाविधातर्कि-
रुसमागमोत्कण्ठकितः । तदा चास्माभिरपि तथाविधोपदेशरसायनेन सम्भावितः
मास्थायैर्यं तथार्जिजत् स्वशासने यथा मिथ्यात्वकन्दकुहालेषु पुरुषेषु प्रथमां रेखां
वात्मनः समपूषत् । ततश्च - “भवन्तोऽस्मदास्पदं पवित्रयन्तु स्वपादावधारणेन” - इत्यवितथकृताग्रहं
तथञ्चित् सम्बोध्य पुरः प्रचेलिवांसः ।

[मध्यदेशप्रयाणवर्णनम् -]

ततश्च विपाशाकूलंकषायाः कूलमनुव्रजन्तः कचिद्वेतस्वतः, कापि कुमुदतः, कुत्रापि
तीयाननूपदेशान् शाद्वलान् सरसान् हृगोचरयन्तो मध्यदेशं प्राप्ताः ।

यत्र गोसङ्कुला ग्रामाः बहुक्षीराश्च धेनवः । क्षीराणि प्रचुराज्यानि नक्रपेयानि तान्यपि ॥ २५ ॥

विज्ञप्तित्रिवेणि

अपि च -

कोमलचनकाहारः कनकमयाभरणजातपरिहारः । मुग्धगतिर्व्यवहारो ग्राम्यजनेष्वेष आचारः ॥ २६ ॥
अदेयराजभागास्ते निरङ्कुशैकवृत्तयः । ग्रामीणा नागरास्तस्मात् कथंकारं हसन्ति नः ॥ २७ ॥
चिरायुषः सुसंस्थानाः सुबद्धदृढसन्धयः । ते हि कृतयुगोत्पन्ननरेभ्य उद्धृता इव ॥ २८ ॥

अपि च -

कृतनापितकर्मणो हलकर्षादिकर्मभिः । पाणिपादेषु नैधन्ते नखास्तेषां शिखा इव ॥ २९ ॥
महाकूपसमुद्रेभ्यो जलाकर्षणशेषुषी । दृष्टा ग्रामेयकेष्वेव यदि वा धूमयोनिषु ॥ ३० ॥
कृष्णोर्णामयवस्त्राणि वसाना ग्रामवासिनः । माञ्जिष्ठेष्वपि वस्त्रेषु दृष्टा नित्यमनादराः ॥ ३१ ॥
शास्त्रशिक्षां विनाऽप्येषां मतिः स्फुरति निस्तुषा । आजन्मक्षीरपुष्टानामिदं लक्षणमादिमम् ॥ ३२ ॥

यत्र च -

यासां वराशयश्चोला वराशयश्च सुन्दरः । अतोऽल्पधनयोगेऽपि पौरीभ्योऽप्यधिकाः सुखैः ॥ ३३ ॥
चण्डातकैस्तु पामर्यं आपादतललम्बिभिः । यान्ति सन्मार्जनीकार्यं कुर्वन्त्योऽध्वन्ययत्नतः ॥ ३४ ॥
ग्रामस्त्रीणां न शृङ्गारो न संस्कारश्च तादृशः । तथापि तासां सौन्दर्यं गुणाः प्रकृतिजाः खलु ॥ ३५ ॥
उच्चाश्चूडाः शिरस्युच्चैर्दधाना ग्रामयोषितः । या विनापि तदाधारं घटानुत्पाटयन्त्यलम् ॥ ३६ ॥
पशूनां परमा पुष्टिः क्षेत्रेषूपतिरुत्तमा । नव्यं रसायाः साद्गुण्यमहो ! देशस्य सौष्ठवम् ॥ ३७ ॥
पीयूषपानपर्याप्तिर्ग्राम्याणां द्युसदां तथा । तद्वासस्थानं यो ग्रामः स किं मन्येऽमरावती ॥ ३८ ॥
स्तन्यपानमबाल्येऽपि यथेच्छं दधिभोजनम् । घृतं च सलिलन्यायाद् ग्राम्याणामप्यहो ! सुखम् ॥ ३९ ॥

तदित्थं देशचर्यानुभवपारदृश्वरीं शेषुषीं सङ्घटयन्तस्तज्ज्ञानपदमध्यगा एव यावत्कति-
चिद्दिनानि स्थाने स्थाने विलम्बितवन्तः, तावदकस्मादेकतः षोडशेशयशोरथानीकस्य,
अन्यतस्तु तुरुष्काधीशशकन्दरानीकस्य च सर्वतः—“इदमागतं कटकम्, इदमागतं कटकम्, नश्यते पला-
य्यते”—इत्यादितुमुलारवो विश्वभयंकरो वीप्साबहुलः सर्वत्र प्रसारमापेदानः । ततश्च क्षणं
किंकर्तव्यताविमूढाः, पुनः प्रणिधेयप्रणिधानप्रधानीकृतमानसोत्साहबलाः, कथञ्चिदुपलब्ध-
तादृशोपायनिरपायास्तमस्काण्डमिव तादृगुदग्रभयं विद्वरडम्बरं सूर्योदयेनेव सङ्घपुण्यो-
दयेन दूरमुज्जास्य सहसा पुनर्विपाशस्तदमुपससृपिम । नाव्यां तां च क्षणात् सममापदा
पारयित्वा कुङ्कुदारुणं घटं सङ्घटयन्तो मध्यदेश-जाङ्गलदेश-जालन्धरदेश-काश्मीरदेश-
सीमासन्धिभूतं स्वाचारनिष्ठमहाजनपूतं हिरियाणाख्यमहास्थानमध्यासामासिम ।

[हिरियाणाख्यस्थाने कृतानां संघाधिपत्यादिपदानां वर्णना -]

१५. तत्र च शुचिभूप्रदेशे प्रधानधान्यक्षेत्रे महाजलाशयं समया कानुकयक्षायतनस्य
नातिदूरे शाद्वलसच्छायशालमलिमहासालमूले माधवमासि धवलैकादशीवासरे सर्वोत्तम-
वेलायां प्रस्तुतशाखापुरवास्तव्येषु मिलितेषु महाजनमेलापकेषु, परःशतैर्भट्टचट्टादिभिरुद्-
घाट्यमानेषु पुण्यपुरुषावदातेषु, मञ्जुलधवलमङ्गलप्रवृत्तासु तासु तासु नितम्बिनीषु, खेलन-
लीलामाकलयत्सु निखिलखलोच्छृङ्खलग्रामखेलकेषु, गन्धर्वविद्यां विशदयत्सु गन्धर्वजनेषु,
दानधर्मायोद्बुधितरोमसु जायमानेषु दातृजनवपुषु, पुण्यमाणेषु तैस्तैः कालोचितेषु तेषु

तेषु रसेषु; सुश्राद्धाचारधुरीणस्य तथाविधोदारकार्यप्रवीणस्य साधुश्रेष्ठसोमाकस्यानिच्छ-
तोऽपि सङ्घाग्रहात् तथाविधां योग्यतामवधारयद्विर्विधिवत्सङ्घाधिपतिपदं व्यदायि । तेनापि
पात्रापात्रसापेक्षं दानमदायि । विशिष्य सङ्घोऽपि मुत्कलकरकुङ्कुलनिर्गतेन ताम्बूलादिना
देयवस्तुप्रकारेण तथा रक्षितो यथा प्राचीनानपि सङ्घपुरुषान् विस्मारितवान् यदि भविष्य-
तीति । किं बहूच्यते, ह्युत्सवोऽयं सर्वाङ्गसुन्दरः संवृत्तः ।

तदा च मल्लिकवाहननिवासिना साधूद्वरेण पाश्चात्यवाहनपदं गृह्णता कुलमप्युद्धृतम् ।
अपि च सं० मागटपौत्रः साधुदेवाङ्गजो महाधरपदमुद्धरः सम्मदात् समुपादात् । अन्येऽपि
साधुनीवा-साधुरूपा-साधुभोजारूपास्त्रयो महाधरतामेवाधार्षुः । सैलहस्त्यं तु बुचासगो-
त्रीयसाधुजिनदत्तसुश्रावके निदधे । एतैश्च सङ्घपत्यादिभिर्यदवदानमाधायि तद्वयं वक्तुं न
शक्ताः, परन्तु तत्करणीयचिन्तनप्रभावजः पुलकस्त्वद्यापि नोदास्ते ।

किन्तु -

साधर्मिकवात्सल्यप्रमुखो यो विधिस्तदा । चक्रे वक्तेतराकूतैः स तैरेव भवेद् यदि ॥ ४० ॥

अथ कृतकृत्येषु तेषु तेषु सङ्घपुंस्तु द्वितीयदिने तदवदातं दृष्ट्वा गर्जनव्याजेन [त]द्गुणा-
नुद्गृणन् तद्दानस्पृष्ट्येवानिवारितप्रसराभिः साराभिः सलिलधाराभिः ग्रीष्मताडितां
पृथिवीमाश्वासयन्नदृष्टपूर्वमहावर्षोपलवर्षेण पान्थान् यथा कथञ्चित् कातरयन्नतिप्रचण्डपव-
ननिपातेन पटकुटीकुटीरकादि विसंस्थुलयन् माधवोऽवर्षादिति हेतोस्तत्र महाव्रतमिता
वासरा अवस्थानमवेक्ष्य लग्नाः ।

[सपादलक्षपर्वतमालागतप्रयाणवर्णनम् -]

१६. अथ सपादलक्षपर्वतभुवं सह सङ्घेनोलङ्घयितुं यथावत् प्रवृत्ताः ।

यत्र च -

पटखण्डान्यतमं खण्डं यद्वा द्वीपान्तरं किमु । परदेश्या विकल्पन्ते दृष्ट्वा शिलोच्चयानिति ॥ ४१ ॥
उच्चगां तारकश्रेणिं परिचेतुमिवोच्छृताः । शैलाश्चाग्रंकपैः शृङ्गैर्निर्झरोद्गारनिर्मलैः ॥ ४२ ॥
वीथ्यां वितस्तिमात्रायां सञ्चरन्नतियत्नतः । जनोऽधःपातभीत्यापि साधुचर्या श्रयत्यहो ! ॥ ४३ ॥
दिवापि सिद्धाञ्जनवन्नेक्ष्यन्ते भूमिगैर्नरैः । वीक्ष्यन्तेऽधिलकासंस्था वानरा इव वा नराः ॥ ४४ ॥
दुर्लभाग्रफलावाप्त्यै कर्करैः कोपयन् कपीन् । फलं तैरुत्पतां नीत्वा जनश्चक्रे समाहितः ॥ ४५ ॥
भूमिदेशोदृता वृक्षाः ये चाद्रिशृङ्गसङ्गताः । शीर्षे द्वयेऽपि ते साम्याद् बद्धस्पृद्धा इवावृधन् ॥ ४६ ॥
उच्चैः शाखाशिखालम्बा इव तारा निशागमे । वृक्षाधस्तात् सञ्चरतां कुर्वन्ति कुसुमभ्रमम् ॥ ४७ ॥
विचित्रवर्णैः कुसुमैः सम्पन्ना वनराजयः । प्रादुर्कुर्वन्त्यकालेऽपि सन्ध्याभ्ररागसम्भ्रमम् ॥ ४८ ॥

अन्यच्च -

तादृक्षतीर्थमाहात्म्यवृष्टिप्रतिहता इव । दवाग्रयो वनप्लोषा नोत्तिष्ठन्ते कदाचन ॥ ४९ ॥
मालतीयूथिकाजातिप्रमुखास्तरुजातयः । पुष्पगुच्छैर्भुर्नग्रास्तरुण्यः स्वस्तनैर्यथा ॥ ५० ॥
प्रफुल्लैः कुसुमैर्वह्यः समीरावेगवेलिताः । अवाकिरन्ति श्रीसङ्गं गुरुं लाजैरिव स्त्रियः ॥ ५१ ॥
मलिकाफुल्लकल्हारकेतकाख्याश्च शाखिनः । शाखाभङ्गेऽपि मधुरा ददुः पुष्पाणि सार्थिनाम् ॥ ५२ ॥

अपि च -

कापि - जम्बीरदाडिमात्राणि नारङ्गबदराणि च । पाकिमानि विलोक्य स्याल्लोला कस्य न लोलुपा ? ॥ ५३ ॥
फलानां कुसुमानां च कालाकालानपेक्षया । प्रसूतिः परमा दृष्टा तत्तीर्थातिशयादिव ॥ ५४ ॥
खर्जूरीदाडिमीद्राक्षारम्भाभम्भायिकादयः । छायां कुर्वन्ति सङ्घस्य खाद्यं च ददते तथा ॥ ५५ ॥
विनापि जालदीं वृष्टिं निर्झरौघाः पदे पदे । मन्ये तैर्गिरयः सङ्घातिथ्यं कर्तुमुपस्थिताः ॥ ५६ ॥

अपि च -

वहज्जरे चूतमहीरुहस्तले विश्रामयन् पान्थजनः पदे पदे ।
फलानि मिष्टानि यथेच्छमाहरन् स्वगेहसाध्यं सुखमश्रुते क्षणम् ॥ ५७ ॥

एकतश्च -

उदुम्बरवटप्लक्षाः परोलक्षाः पुरः स्थिताः । विश्रामस्थानमार्त्तानां सज्जना इव मानिताः ॥ ५८ ॥
श्रीफलाश्च फलैः स्वीयैर्निजपादतलस्थितम् । टाञ्चक्यभग्नशिरसं त्रासयन्ति खला इव ॥ ५९ ॥
अस्पृष्टमध्याः सूरस्य करैः क्वापि प्रसारिभिः । विभ्रते कुलनारीणामाचारं किल कन्दराः ॥ ६० ॥

अपि च -

अभयामलकीमुख्यवृक्षावाप्तफलैः कचित् । गान्धिकापणनामापि शङ्के विस्मारितं जनैः ॥ ६१ ॥

अपरं च -

पाद्याः कर्करिकाः कापि पत्सुखा वालुकाः कचित् । दृषत्खण्डाश्च तीक्ष्णाग्राः स्खोचितं चलतां व्यधुः ॥ ६२ ॥
कापि समा विषमा वा कापि नीचैस्तथोन्नताः । नैकरूपा भुवः शैले दशा इव भवेऽङ्गिनाम् ॥ ६३ ॥
कापीक्षुशाकटस्तोमः तिल्यं भागीणमेकशः । कौद्रवीणं च मौद्दीनं शालेयं कापि शाल्यते ॥ ६४ ॥

तदित्थं स्थाने स्थाने नवीना नवीना वनराजीः परिचिन्वन्तस्तदीयाभिः पिच्छलाभि-
श्छायाभिस्तपनातपप्रसरागोचरीभवन्तः पर्वतीयान् जनानिव तदाचारान् शुचीन् साक्षात्
कुर्वन्तः, अतिभीष्मग्रीष्मर्तुमपि तथाविधदेशस्वाभाव्याच्छिरर्तुमिव मन्वानाः, सुखेन
विपाशातटिनीं भूयोऽप्युत्तीर्य, पदे पदे समृद्धान् महाग्रामान् सम्भावयन्तो दर्शनेन तदधी-
शांश्चाभिमुखमायातानुचितालापैश्च रञ्जयन्तः क्रमेण पातालगङ्गातटमन्वसाध्म ।

अपि च -

यस्यां हि जलयन्त्रेषु दृष्ट्वा सक्त्वादिपेषणम् । के नाम न प्रशंसन्ति दाक्ष्यं पर्वतवासिनाम् ॥ ६५ ॥
पानीयमतिमुक्ताश्रि जानुदग्धाऽम्बुवाहिता । सान्द्रो ध्वनिः प्रवाहस्योन्निद्रयेद् दूरगानपि ॥ ६६ ॥
तां च तथाभूतामनिहितेष्वपि स्वयोगसन्निहितेषु सुश्लिष्टश्लक्ष्णतलेषु निश्चलेषु गण्ड-
शैलेषु परमयतनया कापि पादन्यासमुपकल्पयन्तो निरायासमुत्तीर्णाः ।

[नगरकोटपुरप्राप्ति - तदन्तःकृतप्रवेशवर्णनादि -]

§ ७. ततश्च पुनरकुण्ठानि गिरिशिरांसि त्वरितपादचारेण कुण्ठयन्त इव कापि तुङ्गतरगिरि-
शृङ्गमधिरूढा हेमकुम्भमालोपशोभितप्रभूतप्रासादपङ्क्तिदर्शनीयं विविधस्थानमनोरमं नेत्रा-
नन्दामृतप्रपोपमानं श्रीमन्नगरकोट्यापरपर्यायं श्रीसुशर्मपुरमहातीर्थं हृगोचरीकृतवन्तः ।

तथा च—

आः किं व्योमश्च्युतमिदमहो ! स्वर्गखण्डं प्रचण्डं ? किं वाप्युद्भिद्य हृद्यः क्षितितलमसकौ निर्गतो नागलोकः ? ।
रङ्गद्राङ्गेयकुम्भावलिकलितमहोदामहर्म्यातिरम्यं, दर्शं दर्शं पुरमिति वितर्कास्पदं सम्भवामः ॥ ६७ ॥

तदनु सङ्गेन प्रथमतीर्थदर्शनप्रभवन्महानन्दानुसारेण दानधर्माद्युचितमनुलङ्घयता-
तीर्थभक्तिर्व्यक्तीचक्रे । शनैः शनैरयत्नोपस्थितां कृत्रिमां सजलां नगरस्य परिखामिव
पातालगङ्गाज्ञातिजामिव वाणगङ्गां—“एगं पायं जले किच्चा, एगं पायं थले किच्चा”—इत्यादिपदानि
यतनाङ्गान्यनुस्मरन्त उल्लाघा उल्लङ्घितवन्तः । तदा च सङ्घागमनमाकर्ण्य चम्पकस्रक्कलाप-
कलितमौलयो मसृणघुसृणरसाक्तोज्ज्वलाच्छपीनवसनाः, नागवल्लीदलचर्वणेनेव विमल-
वचनेन रञ्जितवदनाः, काञ्चनमयशस्त्रिकया वर्ण्यखर्णालङ्कारेणैव भासुरितकटितटाः, खर्ण-
शृङ्गारा निजरूपशृङ्गारितखर्णा वा, निरुपाधिप्रीतिगौराः पौरास्ते तेऽभ्यागतवात्सल्यवि-
धित्सया सङ्घस्याभिमुखीना बभूवुः—इति ।

ततश्च तान् गूर्जरेभ्योऽप्यधिकितविवेकाल्लोकान् साधूचितभाषया सम्भावयन्तस्तैरेव
सह महत्युत्सवे जायमाने पुरं प्रवेष्टुमुपक्रान्ताः । चित्रमिव बहुवर्णोपशोभितं, धर्मा-
गारमिव बहुगणिकं नगरान्तरं मध्ये कुर्वाणाः, सङ्घसामाचारीविद्भिः पौरैः सङ्घार्थं क्रियमाणं
प्रवेशमङ्गलं तत्साहचर्याद् वयमप्यनुभवन्तः, शनैः शनैरपूर्वापूर्वस्थानावलोकनाद् विस्मित-
विस्मिताः, पताकापीतगगनं हृद्रेणिसङ्कुलं राजमार्गमतिक्रम्य शनैर्हृषितहृषिता इव
किञ्चित्त्वरितत्वरिताः, प्रेरिता इव परमोत्साहेन, आकृष्टा इव सुकृतलक्ष्म्या, कटाक्षिता इव
भाग्यमृगाक्ष्या, आहता इव सन्मत्या, विधृता इव धृत्या, आहूता इव सङ्गत्या, रमिता
इव रत्या, विस्मारिता इवारत्या, उपेक्षिता इव वुमुक्षया, अनवलोकिता इवातङ्गेन, अचि-
न्तिता इव चिन्तान्तरेण, विस्मारिता इव मार्गश्रमेण, अस्पृष्टा इव तृषया, अभिगमिता
इव परमानन्देन, किमप्यतितरमानन्दतुन्दिला उद्भिद्यमानरोमकन्दला महामदनभेर्यादि-
वादकेषु शब्दब्रह्माद्वैतमिव वितन्वत्सु सर्वार्थसिद्धिद्वारमिव श्रीशान्तिनाथजिनप्रासाद-
सिंहद्वारमनुप्राप्ताः—“निस्सही निस्सही नमो जिणाणं”—इत्यादित्रिस्तारस्वरेणोच्चश्रूयमाणा रोमा-
ञ्चकञ्चुकितगात्राः, तृपिता इव सुधासरः, क्षुधिता इव परमान्नं, निर्द्वेष्टा इव रत्नस-
म्भृतनिधिलामं, द्रमका इवैश्वर्यम्, काञ्चनकलशोपशोभितं साधुक्षीमसिंहकारितप्रासादे
परमम्बरतरश्रीजिनेश्वरसूरिप्रतिष्ठितं श्रीशान्तिजिनपतिं भेटितवन्तः परया भक्त्या ।
ततश्च त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य कृत्यविदा सह सङ्गेन पुराणाभिनवैः स्तवैर्गृहस्थोचितैः पुष्पैरिव
संवत् १४८४ वर्षे ज्येष्ठमासे ज्ञानपञ्चमीदिवसे सम्भावितवन्तः ।

ततश्च सफलमिव जन्म मन्वाना मार्गप्रयासमपि पूरिताशमिव गणयन्तस्तत्तन्निर्विकृत्या-
द्यभिग्रहग्रन्थि छुटितमिवावधारयन्तस्तदा तदा च पूज्यान् युष्मादृशान् पुण्यपुरुषानप्यवि-
स्मारयन्तो द्वितीयस्मिन् विहारे नरेन्द्ररूपचन्द्रकारितं शाश्वतप्रतिमानुकारि जात्यजाम्बूनद-
मयप्रतिममत्यद्भुतं श्रीवर्द्धमानस्वामिनं तमस्युद्ध्योतमिव, तथाविधकान्त्यतिशयान्नेत्रामृत-
प्रवाहमिव, परमकर्पूराणुनिर्मितमिव, परमानन्दमयमिव, दर्शं दर्शं चिरं चेतसि कारं कारं

तवन्तो भगवन्तम् । ततोऽपि देवलादिदर्शिताध्वानश्चमत्कृतचेतसो विगलितरे-
तालस्याः प्रमादातिरेकादुज्जृम्भमाणास्या बाह्याभ्यन्तररजः शिशमयिषयेव नय-
श्रुधारा वर्षन्तस्तृतीयभवनगान् युगादिजिनपादानन्ववन्दिष्महि पूर्वन्यायेनेति ।

[कङ्कदकमहादुर्गस्थयुगादिजिनदर्शन - वन्दनस्तवनादिवर्णना -]

। द्वितीयेऽहि कङ्कदकमहादुर्गमध्ये माधववक्षोलङ्कारकौस्तुभायमानानादियुगीन-
जेननिनंसयोत्पिञ्जलितहृदयान्तरालाः, प्रभवद्वर्षाश्रुप्रणालाः, क्रमेण नभोऽङ्ग-
तीर्षमालाविलसत्सप्तशालालीनसप्तप्रतोलीद्वाराणि सप्तसुखानीवाक्रामन्तः, स्वर्ण-
प्राक्कथंचिदावर्जितेन महर्द्धिना मौलभूपालप्रतिशरीरभूतेन हेरम्बाख्यप्रतिहारेण
त्रसङ्कुलं राजपथं परिचाय्यमानाः, पदे पदे जायमाने दानोत्सवे नृपकारित-
च प्रकाशमाने राजाङ्गरङ्गद्वायनिनादे उच्छलद्धवलमङ्गलध्वनिभिः प्रतिशब्द-
माणेषु सप्तप्राकारेष्विव, नृपतिसौधमध्ये वीक्षणापन्नकुतूहलिराजलोकैः पाणि-
यमानेषु, पृथुष्वपि पथिषु निरङ्कुशैरपि दौवारिकैश्चानवारिताः, अनवरतप्रणय-
व राजसमाजजनसमूहमूहमानाः श्रीनाभेयं प्रीत्या प्रणिपेतिवांसः ।

च - तत्र वृद्धास्तत्तीर्थैतिह्यमित्थमाहुः -

हे - “इदं किल कमनीयकनककुम्भोपशोभितोत्तुङ्गशृङ्गरङ्गत्प्रासादमयं महातीर्थं
नगवति श्रीनेमिजिनपतौ श्रीसुशर्मभूमीभुजा संस्थापितम्, तदिदं चाघटित-
इयंभूतमिवानादियुगीनं श्रीमद्युगादिदेवविम्बमचिन्त्यचिन्तामणिमवृतकल्पपाद-
हात्म्यमनन्तातिशयं जानन्तु । इयं च भगवच्चरणारविन्दमकरन्दचञ्चलश्रीक-
श्रीमदम्बिका, यस्याः किमप्यसामान्यमतिशयं व्यावर्णयन्ति सन्तः । अस्या
भः कुम्भसहस्रप्रमाणमपि जगद्गुरोस्तावत्प्रमाणेन स्नात्राम्भसा सह तदाशा-
तुल्यस्थानस्थितमपि नैकीभवति । प्रत्यक्षं चाधुनापीदम् । अथवाऽसम्भावित-
शनिर्गमे लघुन्यप्यमुष्मिन् गर्भागारे कृतकपादसम्पुटे भूयोऽपि स्नात्रतोयं
रितमिव क्षणादकस्माद्दृक्शोषं शुष्यति । इह हि कृतं स्तोत्रादिपूजायं सत्कृत्यं
हितं बीजमिवैकान्तेनाविसंवादि फलं स्यादित्यागमः ।” तदिदमुत्कण्ठितस्या-
तसुवर्णे वर्णिकाधानमित्याभाव्य स्ववाग्वल्लेः प्रकामफलभूतामिमां स्तुतिमित्थ-
वाम ।

तद्यथा -

जगज्जीवनं पावनं यस्य वाक्यं महोक्षध्वजं चङ्गाङ्गेयकायम् ।
तिरस्कृत्य कर्मस्थितं जन्तुतातं श्रये तं मतिश्रीकृते तीर्थराजम् ॥ ६८ ॥
गलन्त्याशु पापान्यनन्तानि तानि प्रसर्पन्त्यगण्या मुदश्चावदाताः ।
महासिद्धिरायाति कीर्तिश्चकास्ति प्रभो ! त्वां नमस्कुर्वतां शान्तमूर्तिम् ॥ ६९ ॥
छेकः कष्टोच्छेदने दीप्तिमानुर्भक्तस्यातुच्छेष्टदो भीतिभेदी ।
युक्त्या युक्तः स्वागमागाधवाक्यः सिद्धयै रोद्धा युग्मिधर्मं क्षतागाः ॥ ७० ॥

दिष्टा दृष्टे तेऽम्बुजोज्जिष्णुवक्त्रे दूरं नष्टाऽऽदिप्रभो ! क्लेशराजिः ।

नन्वारूढे भास्करे पर्वतं तं ध्वान्तं किं न क्षीयते निष्कलापम् ? ॥ ७१ ॥

रयापारसंसारनिहारसूरं रजोभारसंहारणासारनीरम् ।

कृपालं रसालं महाधीवरं सत् प्रभावं महामोऽञ्जसाऽधीश्वरं तम् ॥ ७२ ॥ (- नायकमणिः ।)

तरन्ति सन्तो विपदर्णवं ते पोतायितं येऽनुसरन्ति तेऽदः ।

नतं पदाब्जं भुवि सावधाना यस्मान् मनुष्येष्वथ शर्म भावि ॥ ७३ ॥

जगत्प्रभुः सत्यनयः स्वयम्भूः स्याद्वाद्यजन्मा निहतान्तरायः ।

तेजोमयस्तात्त्विकयोगगम्यो जीया गतेह ! त्वमघाद्रिवायो ! ॥ ७४ ॥

गीर्वाणपद्माप्यतिशायिनी सा तावच्च गीयेत मरुद्वीशा ।

बुधैर्न यावद् बहुधाहिभक्तेः शक्तिः प्रबुद्धा जिन ! तेऽस्तबाधा ॥ ७५ ॥

जन्मभूषितनिजायतवंशं देशनाजनितभव्यशिवायम् ।

साधितेष्टसुखसङ्गमरङ्गं भद्रसान्द्रमभिनौमि सदङ्गम् ॥ ७६ ॥

राकाशशङ्काननमादिदेवं वन्दे युगादौ जगदुद्धरन्तम् ।

तं रङ्गदुत्तुङ्गयशःसुरहं हरत्तमं लोकभवोरुकाराम् ॥ ७७ ॥

नय प्रभो ! सेवकमात्मसङ्गं जय प्रभावोद्वलितान्यपङ्क ! ।

नमन्महाराजकृतोरुभागधेय ! प्रयच्छाऽविकलं चरित्रम् ॥ ७८ ॥

वरं गृहं हाववती च नारी वर्णा च लक्ष्मीर्भवतोऽनुभावात् ।

वरेण्यलावण्यवचास्ततोऽहं वहे तवाज्ञां भव मे शिवाय ॥ ७९ ॥

दर्शनं दुरितरोधि तावकं नाभिनन्दन ! भवेद् भवावधि ।

मज्जतान्मम मनोहिमरश्मिस्त्वद्गुणामलमहाम्बुनिधौ हि ॥ ८० ॥

महामोहमाद्यत्तमस्तोमभानोरखण्डोत्तमज्ञानसङ्केतवास्तो ! ।

त्रस-स्थावरप्राणिमोहान्तकस्य स्तवासूत्रणात् ते जनः स्यादन्हाः ॥ ८१ ॥

रवीन्दुप्रदीपप्रभूतप्रभाभ्योऽधिकं विस्फुरदर्शनं तेऽद्य जातम् ।

दयाद्रां स्वदृष्टिं त्वमातिष्ठिपश्चेत् सुधाम्भो मदङ्गे न चित्ते विभाति ॥ ८२ ॥

षडंहिवत्खेलतु पादपङ्कजे तवाऽरुषं मे हृदयं सभन्द ! ।

कृताश्रयार्थे हि कृतिप्रकाण्डा यत्रासकृत् खर्दुमतां वदन्ति ॥ ८३ ॥

दलन्तं दरं भन्दमाकन्दराधं दयाकन्दलीकन्दमानन्दसारम् ।

नतस्त्वां शुभंयुः कुकर्माण्यधस्तात् प्रकर्त्ताऽस्मि कहींश नम्रामर ! श्राक् ॥ ८४ ॥

धराधीशधीरं महोदध्यगाधं निरस्तकुधं प्रावृषेण्याब्दनादम् ।

लसन्मुक्तिलक्ष्मीवरं मुक्तमोहं महामोऽमलज्ञानमानन्दतोऽमुम् ॥ ८५ ॥

रोचीर्वीचीप्रोलसद्देहदेशे सौम्याकारोत्प्रेक्षितान्तःप्रमोदे ।

शेषस्फूर्जद्योगलम्भप्रविष्टे दृष्टेऽधीशे जायतामिष्टलाभः ॥ ८६ ॥

व्योम्नो मानं वेत्ति यौऽजः प्रकारैर्बुद्ध्या काव्योऽप्येषु ते तीर्थराज ! ।

नो सोऽपीशो यद्गुणान् जल्पितुं ही ! तत्को मानो मेऽत्र मूर्खत्वभाजः ॥ ८७ ॥

यदाहुश्चिदानन्दसन्तानरूपं श्रितानां भयघ्नं परब्रह्मयाताम् ।

दयालो ! तदेव त्वदीयं प्रपद्ये शरण्यं पदद्वन्द्वमाविष्कृतायम् ॥ ८८ ॥

जयति जयतामर्तिच्छेदी युगादिजिनः परं, तदनु विजयन्ते योगीशा बुधा जयसागराः ।

तदधिमहिमस्तोत्रं हारं तदन्तिषदः कृतिं, दधदलसुरोदेशे भव्यो जनो जयतादयम् ॥ ८९ ॥

जन्मजीवितगिरां सफलत्वं मङ्गलं च वृषभेश ! ममाद्य ।

यत्नतोऽसमसमांसनितान्तं यन्महावृषगतेऽधिगतोऽसि ॥ ९० ॥

इति हि नगरकोटालङ्कृतेरादिनेतुः, स्तवनमजनि पूर्णं हारबन्धाभिधानम् ।

अहह ! सुकृतयोगः कोऽपि मे स्फातिमागा-दिति वदति यथावत् प्राञ्जलिर्मेघराजः ॥ ९१ ॥

तदित्थं यावता प्रस्तुतस्तवनादिविधानेन कृतकृत्या इव जाताः ।

*

[नगरकोट्याधिपनृपतिवृत्तस्वागतादिवर्णना -]

§९. इतश्च - श्रीचन्द्रोज्ज्वलसोमवंशविशदमुक्ताफलायमानावतारेण षट्त्रिंशद्राजकुली-
शृङ्गारसारेण चपलोच्छृङ्खलभूपाललक्ष्मीकरेणुकाचापलसंयमननिस्समानालानस्तम्भभूतो-
दण्डदोर्दण्डेन विषमविविधविकटसपादलक्षपर्वतमालाबलगर्विष्ठाक्षोदिष्ठविपक्षक्षोणीनाथ-
शिरोनिवेशितनिजाज्ञास्फारप्राग्भारेण प्रबलातुलशक्तिनृपतिमतल्लिकाविनयवेल्लच्छिरः-
कमलपुपूजयिषितचारुचरणेन्दीवरेण धनसमृद्ध्यपहसितधनदेन सौराज्यजनितजनानन्देन
सर्वषड्दर्शनविश्रामच्छायापादपेन विशिष्य श्वेताम्बरभिधुबलक्षपक्षपातोपलक्षितचिन्न-
क्षुषा पितृपर्यायागतखसौधमध्यस्थितश्रीयुगादिजिनभक्तिपुषा निजमुखकोमललावण्याप-
हसितचन्द्रेण भूभुगनरेन्द्रचन्द्रेण, आत्मीयप्रधानपुरुषैः सबहुमानमाहूताः सङ्घसङ्घताः,
ततश्चातुर्वर्ण्यजनमहत्तरैः परितोऽलङ्कृतं विचित्रमपि सचित्रमतुलमपि सतुलं विशालमपि
सुविस्तीर्णशालं निजशोभापराभूतपुरहूतास्थानं तदीयसभास्थानं प्राप्ताः । ततश्च वीज्य-
मानवरचामरं स्वरूपान्तरावस्थितं चामरमिव वरेण्यहिरण्यमणिमयसर्वाङ्गीणाभरणशृङ्गार-
सौन्दर्यापहसितमारं सकलकलाकुशलं ग्रहगणमध्यवर्तिनं निशावल्लभमिव राजसभाव-
स्थितं पुरुषोत्तममिव तमद्राक्षोऽक्षाममुदः ।

अथेषन्नम्रशिरसं तमधिकृत्य निर्ग्रन्थभाण्डागारसर्वस्वभूताशीर्वादसन्दर्भगर्भमुद्राहवः
पद्यमिदं सोदाहरामः -

तद्यथा -

श्लाघ्ये जन्म कुले तनौ सुभगता हृद्या कला सद्बधूः, सन्तानर्द्धिसमृद्धिसौख्यमतुलं भोज्यं च राज्यं परम् ।

चक्रित्वं त्रिदशाधिपत्यमपि ही ! प्राप्नोति जन्तुर्यतः, सोऽभीष्टार्थविशुद्धसिद्धिजनकः श्रीधर्मलाभोऽस्तु वः ॥९२॥

अपि च -

कङ्कदककोटकन्दरमध्यासीनो रिपुद्विपान् हत्वा । श्रीमान्नरेन्द्रचन्द्रक्षितिपतिहरिणाधिपो जयति ॥ ९३ ॥

अथ च जलार्थं कस्मिन्नपि जने कृतभूसञ्ज्ञमाभाव्य नृपतिं प्रस्तुतमिदं साचक्ष्महे -

वक्त्राम्भोजे सरस्वत्यधिवसतितरां शोण एवाधरस्ते, बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः ।

वाहिन्यः पार्श्वमेताः कथमपि भवतो नैव मुञ्चन्त्यभीक्ष्णं, स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन् किमिव नरपते तेऽम्बुपानाभिलाषः ॥९४॥

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

अपरं च -

नद्यो नीचरता दुरापपयसः कूपाः पयोराशयः, क्षाराः क्षुद्रबकोटसङ्कटतटोद्देशास्तटाका अपि ।
भ्रान्त्वा भूतलमाकलय्य सकलानम्भोनिवेशानिह, त्वां भो मानस ! संस्मरन्नुपगतो हंसोऽयमानन्दताम् ॥ ९५ ॥
पुनर्विवेकमुज्जीवयितुमियमन्योक्तिः -

रे चूत ! नूतन मदं मलिनानुकूल ! त्वां वर्णयन्तु कवयो न वयं वयस्य ।
शुक्लच्छदो यदिह शैवलभुग् मरालो रोलम्बकोकिलकुलं कुसुमैर्द्धिनोषि ॥ ९६ ॥

तथा -

अये वापीहंसा निजवसतिसङ्कोचपिशुनं, कुरुध्वं मा चेतो वियति वलितान् वीक्ष्य विहगान् ।
अमी सारङ्गास्ते भुवनमहनीयव्रतभृतो, निरीहाणां येषां तृणमिव भवन्त्यम्बुनिधयः ॥ ९७ ॥
इत्यादिभिर्नव-पुराणैः सूक्तैर्नृपमनोऽनुजीवितं यावत्तावता तत्तल्लक्षणसाहित्यादिरसपरि-
श्रेतमतिर्नृपतिरमोघगङ्गाप्रवाहानुकारिण्या तत्तद्दृष्ट्यूहाम्बुसारिण्या प्रवीणोचितवाण्या
यत्सु पार्षद्येषु साशङ्कमिव तिष्ठत्सु राजकीयेषु विद्रुत्सु सहासाभिः स्वयमेव क्षणं
ष्टीमुखमन्वभूत् ।

तदानीं च -

स कोऽपि न सदो मध्ये मूर्खो वा यदि पण्डितः । बालो वृद्धः पुमान् स्त्री वा यो नाश्चर्यरसं पपौ ॥ ९८ ॥
०. अथ विद्याविनोदप्रियेण राज्ञा सञ्ज्ञापिताः सभासदो विद्वांसो ब्राह्मणा केऽपि केऽपि
नन्याश्च सम्भूय यत्तत् फल्गुवल्गितप्रायं सम्यग्रूपं वा प्रष्टुं सहसोपस्थिताः । ततश्च तान्
पानुरूपोत्तराधानेन च्युतमदनिभानिव निरभिमानान् मनागापाद्याऽन्तराले चेदमवदाम -
के दारपोषणस्ताः ? कं बलवन्तं न बाधते शीतम् ? । कं संजघान विष्णुः ? का शीतलवाहिनी गङ्गा ? ॥ ९९ ॥
जीवन्ति जन्तवः केन ? धातूनां सम्भवः कुतः ? । बुधानां वर्ण्यते काचित् ययोक्तमपि नोद्यते ॥ १०० ॥

विकल्पार्थापकः कोऽर्थो विनाशः शङ्क्यते कुतः ।

पद्मोत्पत्तिः कुतः कीदृग् दुःस्थः सर्वत्र वारितः ॥ १०१ ॥ (- इति प्रश्नोत्तराणि ।)

कृपणोऽपि नृपार्थः स्यादुदारस्यापि लौल्यता ।

भावाभावेन यस्यास्यादाख्यातोऽपि न बुध्यते ॥ १०२ ॥ (- प्रहेलिका ।)

काचिद्ब्रह्मान्तःप्रियविप्रयोगमसासहिः प्राप्य तरुं प्रफुल्लम् ।

ज्वलद्वियोगामिरियं व्यहासीच्छायां तदीयामपि किं निदाघे ? ॥ १०३ ॥ (- भावालङ्कारः ।)

इत्यादिपद्यानां प्रत्युत्तरदानमूकान् विदग्धमन्याँस्ताँस्तान् यावदुदनैष्म, तावदेकः
इमीरदेशीयः कुशाग्रीयमत्यवगाहितविततप्रमाणग्रन्थस्तार्किकचक्रचूडामणिमन्यदल-
तिप्रभृत्युल्लापमुखरः कश्चिद्विपश्चित् सहासाभिः स्वपक्ष-परपक्षसाधनदूषणाभ्यां चिरं
श्चितवाग्विवदितुं लग्नो महताऽऽटोपेन । सोऽपि, अचिन्त्यश्रीपूर्वगुरुसान्निध्यसन्नद्धस-
द्धवाङ्मात्रेण प्रतिहतवाग् वीक्षापन्न इव क्षणं क्षोणीशाध्यक्षमेव सितभिक्षूननुनिनीषु-
दलग्नपाणिरिदमुच्चैरुच्चचार । यतः - 'भो ! जैनानां पुरः कोऽहं वराकः, क्षमध्वमागः' ।
येत्यादिसरसेष्टगोष्ठीप्रकारेण परमप्रीतितन्वन्नुत्तमना मनुजेश्वरोऽस्मत्सनाथस्य सङ्घस्य

सर्वस्यापि बहुमानसारं सत्कारं चकार । 'अहो ! आर्हतो धर्मो विजयते !, धन्यमिदं मतान्तराजय्यं श्रीजिनशासनम्, यत्रैवं विद्वत्तादिगुणा निरूपमाना विभान्तीति ।' अनन्तरं च चञ्चलान्द्रकान्तादिविविधवर्णदैवतालङ्कृतं देवागारं स्वकीयं दर्शितवान् । अचकथञ्च स्ववर्गीणान् - 'यदस्य सङ्घस्य प्रवेश-निर्गमयोर्न स्खलना कार्या ।' अथ 'प्रत्यासीदति नः सान्ध्यो विधिः' - इत्यादिना प्रतिगमनाय प्रत्याग्यमानोऽस्माभिः कथञ्चिदेवं महाप्रणयावि-
र्भावकमिदमवादीत् -

मा गा इत्यपमङ्गलं, व्रज इति स्नेहेन हीनं वचः, तिष्ठेति प्रभुता, यथारुचि कुरुष्वैषाऽप्युदासीनता ।

किं ते साम्प्रतमाचरामि हितमेतत् सोपचारं वचः, स्मर्त्तव्या वयमादरेण भवता भूयात् पुनर्दर्शनम् ॥ १०४ ॥

ततस्तमापृच्छथ श्रीजिनशासनप्रोन्नतिदर्शनोत्सर्पत्प्रमोदप्लुतहृदयाः स्वमठमागताः ।

[नगरकोटस्थितजिनमन्दिरविधीयमानोत्सवादिवर्णना -]

10

§ ११. अथाऽपरेद्युश्चातुर्वर्णवन्द्यमानार्हद्विम्बभूषितेषु तेषु चतुर्ष्वपि प्रासादेषु महत्युत्सवे श्रीदेवमहापूजावसरे क्रमेण श्रीसङ्घश्रावका गन्धोदकसम्भृतैः स्वर्णकलशैः श्रीजिनचन्द्रपादान् दर्शनदत्तमनःप्रसादान् यथाविध्यसिस्तपन् । तदनु सुलभैः शुभगन्धबन्धुरचम्पकपवित्रशतपत्रप्रफुल्लमालतीजात्यादिजाल्यपुष्पैर्बहुभङ्गीभिरपूजन् । पेशलफलपकान्नाक्षतादिबलिं पुरो जगद्गुरुणामुपाहरंश्च । ततश्च चतुर्विधश्रीधर्मास्थायेमोत्पादकेषु चतुर्ष्वपि काञ्चन-
कुम्भोपलम्भसम्भावितद्रष्टृमनःप्रसादेषु प्रासादेषु गर्भागारादाराभ्यादण्डकलशावलम्बिनो ध्वजान् व्यदीधपन् । तदा च रेणुर्वाद्यानि, जगुः कुलनार्यः, नृत्यन्ति स्म विस्मोरास्या नागर्यः, ददुर्हल्लीसकानि बालाः, ताड्यन्ते तालाः, खेलन्ति खेलास्ते चाल्यन्तं सहेलाः, दीयते यथेच्छं दानं, यथा दूरेत्यतामञ्जति दुरितविगानं, प्रगुणीभूता सुगतिः, प्रणष्टा कुगतिः, वर्द्धते धृतिः, विशीर्यते कुसृतिः, उच्छ्वसन्ति दानिनः, लभन्ते मानं मानिनः,
खिद्यन्ते कृपणाः, विकसन्ति वितरणनिपुणाः, जाग्रति योगिनः, विहसन्ति चैत्यनियोगिनः,
निजचित्ते चमत्कुर्वन्ति ज्ञानिनः, समाधिमधिश्रयन्ति ध्यानिनः, प्रमीलत्यविद्या, उन्मीलति विद्या, विलसति पुण्यम्, वर्द्धते श्रेयः ।

किं च -

तन्मन्ये येन दृष्टोऽयं श्रुतः स्नात्रोत्सवोऽथवा । यदि तस्य मुदे न स्यादत्र प्रतिभुवो वयम् ॥ १०५ ॥

25

तदनु च भट्टचट्टनटबटुकवाडवादिदुःस्थित-सुस्थितजनसाधारणानि शालिसर्पिस्सारानि सङ्घकारितानि अवारितानि भोजनानि सर्वत्र प्रावृत्तन्; यानि रहःस्थितमप्यवदान्यं प्रकाशयन्ति । अथाष्टमीदिने श्रीशान्तिजिनविधिचैत्ये जयजयशब्दमुखरेषु बन्दिदृन्देषु महोदण्डे भवत्युत्सवे मेघराजगणि-सत्यरुचिगणि-मतिशीलगणि-हेमकुञ्जरमुनि-कुलकेसरिमुनीनां पञ्चमङ्गलमहाश्रुतस्कन्धाद्यनुज्ञाहेतुकां नन्दीं मिलितेषु नागरेष्विव सङ्घजनेषु व्यधासिष्म ।
तत्र चाश्रान्तं स्थाने स्थाने देववन्दनावहिताः कार्यान्तरपराङ्मुखा भ्रामं भ्रामं भावपूजया जगदीशान् त्वरया श्रद्धया सम्भावयन्तः, सङ्घश्राद्धविधीयमानां द्रव्यपूजां चालुमोदयन्तः, सह जन्मना निजजीवितमपि कृतार्थं गणयन्तः, यावद्द्वारानष्टोत्तरं शतमपि चैत्यपरिपाटीं पञ्चशक्रस्तवाविर्भावसारां सपरिवारा वितेनिवांसः । इत्थं श्रेयःकृत्येन पुण्यलभ्येन स्वात्मा-

30

व तदनुमोदकं परमपि संसारभवाम्भोधिपारवर्त्तिनमिवानुमिनुमः । सपरिवारश्री-
राध्यध्येयपादप्रत्ययमपि विशिष्य श्रीजिनवन्दनं तत्रान्यत्रापि नामग्रहणपुरस्सरं
तमस्तीति ज्ञपरिज्ञयाऽनुमोद्य तन्नमस्यकैरिव स्थानस्थैरपि प्राज्यं पुण्यं विटपनीयमिति ।
अन्यच्च यथा योगं गोचरचर्यादिस्वार्थसिद्धये पुरान्तराले चङ्क्रम्यमाणाः कचिदुपधारायन्त्रं
स्थस्य महापुरुषप्रमाणानुकारिणः कान्तजात्यजातरूपनिष्पन्नस्य रेखाप्राप्तरूपस्य राज्ञो
चन्द्रस्य रूपेक्षणं चक्षुर्विश्रामसुखमुपलभमानाः, कचिच्च प्रत्यासन्नहिमाचलशैलराजकूटा-
नि भीष्मश्रीष्मर्त्तावपि हिमानीखण्डानि पुण्यपुरुषयशांसीवात्यन्तं विमलान्युन्नयमानाः,
अविपणिमार्गं च व्यापार्यमाणचारुचम्पकशतपत्रादिगन्धद्रव्यपरिमलबाहुल्येऽपि नाशा-
यं रसमनाददानाः, सततप्रवृत्तोत्सवानां गीतनृत्तनादरसलालसानां दिवश्च्युतानां देवी-
मेवानुपमतमतनुसौन्दर्याणां पौरपुरन्ध्रीणां श्रोत्रमधिगतैर्मधुरध्वनिभी रागमवग-
न्तः, गृहोद्यानवर्त्तमानाभ्रतरुपरिपाकिमफलेषु सुगन्धलोकोपनीतेष्वपि जिह्वालौल्यलेश-
स्पृशन्तः, विचित्रभूर्जपत्रवन्मृदुलस्पर्शान् कम्बलान् करस्पर्शमात्रतायामुपढौकयन्तः,
दृशदिनीं तत्रावतस्थानाः । ततश्च - 'तिष्ठथ चतुर्मासीम्, वयमपि शुद्धश्रावकीभवामः,
अंश्रु लामो वः, कुरुध्वमनुग्रहमस्मासु' - इत्यत्यन्ताग्रहपरान् नामश्रावकान् तत्रत्यान्
हो-वीरो-हर्षो-चंभो-संभो-गंभो-प्रमुखान् कथमपि सम्बोधयामासिवांसः । ततः
ष्वपि विहारेषु जिनेन्द्रपादानधिकृत्य सपरिवाराः ससङ्घाः सगद्गदस्वरा बाष्पप्लुतेक्षणाः
श्रानिकीं चैत्यवन्दनां सुचिरमारचय्य ललाटघटिताञ्जलयः खल्वेकान्तशान्तरसवशीकृत-
न्तास्तदानीम् -

तव दर्शनमेवास्तु किमन्यैः प्रार्थनाशतैः । सरागचेतसोऽप्युच्चैर्लभन्ते निर्वृतिं यतः ॥ १०६ ॥

वारं वारमियं चिन्ता वारं वारमियं कथा । यदहं त्वां प्रपश्यामि भूयो दर्शनमस्तु ते ॥ १०७ ॥

तदित्थमग्रजगन्नाथमभ्यर्थनामिमां प्रथयित्वा, असकृच्च शिरःप्रणामं कारं कारं कथ-
न् तीर्थमहामोहप्रतिबन्धवशात् स्थलितपादप्रचारं क्षणं शून्या इव हृतहृदया इव ततः
गतुमुदयच्छाम ।

अथ च -

ज्वालामुख्या जयन्त्या च श्रीमदम्बिकया तथा । वीरेण लङ्गडाख्येन यदसेवि सदैव हि ॥ १०८ ॥
संसारसागरोत्तारतीर्थात् तीर्थोत्तमात्ततः । श्रीमन्नगरकोटाख्यात् प्रस्थिताः सह सार्थिकैः ॥ १०९ ॥ (युग्मम् ।)

[नगरकोटतीर्थात् कृतप्रस्थानस्य संघस्य मार्गागतान्यस्थानवर्णना -]

२. अथ गिरिसरिदुपशैलेलातले वहन्तः, एकतः किल 'पवउ खोट्ट' इति मृदुलघुशिशू-
ः किञ्चिद्व्यक्तवाचा संशब्दनेन गिरिभुवि पथिकेभ्यो ह्यविश्वासशिक्षामाख्यानं इव
अन पक्षिणः पदे पदे प्रदक्षिणीवभूवांसः । अन्यतः पुनस्तत्प्रतिषेधप्रियेव कांश्चन विप-
त इव 'होकोकिमइ, होकोकिमइ' इति स्फुटप्रतिरावेण जगद्वैचित्र्यं प्रचिकटयिषून् विह-
न् स्वात्मनि माध्यस्थ्याद्वैतमुत्तेजयन्तः शुश्रूवांसः । विसयस्मेरिताऽऽनन्दाटोपा गोपा-
पुरतीर्थं जग्मिवांसः । सं० घिरिराजकारितोत्तुङ्गप्रासादस्थं श्रीशान्तिनाथं सगौरवं च
मिवांसः । अत्र च देवसेवापराः सङ्घकृत्यानुमोदनासमाहितहृदः सदसद्विवेकं प्रतिवा-

स्तव्यास्तिकांश्च कांश्चन प्रवीणयन्तः, पञ्चाहोरात्राणि तस्थिवांसः । अथ पारेविपाशस्थितं श्रीवीरस्वामिपादमहाप्रासादकलितं श्रीनन्दवनपुरं प्रापिवांसः । तत्र च पूज्यपूजां विधिव-
द्विधाय सह तत्रत्यसङ्घेनाऽऽगन्तुकसङ्घोऽपि खल्वात्मानं धन्यममन्यत । तत्र च सुविहित-
गुणपक्षपातरसिकमनोभिरात्मकरणीयातिनन्दिभिः शुद्धमार्गाभिनन्दिभिः सौजन्य-
सम्भिन्नसर्वभावैः पार्वतिकभूपाललोकपालितवचोभिः सह स्वयूथैरनुमितसंविग्रपाक्षिक-
पदस्थैर्भृशमजर्यमासोसूत्र्यामहि रूपम् । ततोऽपि प्रस्थायातिनिविडतमसि निश्यपि पुरोवह-
मानाभिद्योतमानखद्योतरिंछोलीभिरन्तरान्तरा वुटत्तडिद्विरिव समुज्जुम्भितचक्षुरायुष्याः
कोटिल्लग्रामे क्रमेणाभिनवोत्तुङ्गशृङ्गरङ्गत्प्रासादे श्रीवामेयजिनेन्द्रदर्शनेन सफलप्रयासा
बभूवांसः । सङ्घो यावता पूजादिककर्मणि प्रवृत्तोऽथ तावता वयं तमिति स्तोतुं प्रवृत्ताः -
तथा च -

अभिमतफललाभकरं चिन्तामणिपार्श्वनाथतीर्थकरम् । यरलवशषसहवर्णैः किञ्चिदहं वर्णयिष्यामि ॥ ११० ॥

श्रीवल्लिराशिसुरसालरसालवाल !, श्वःश्रेयसाय सविहासरसोऽसहायः ।

अहो विहाय सहसैव विशालबाहुः, श्रेयःश्रियं सह वृषैरिह शिश्रिये यः ॥ १११ ॥

यो विश्वसंशयविलेशयैरेशरीः, यः संवरारिसबलाहववारवीरः ।

यो हर्षवासररविर्विषयारिंसु, यो वेह संवरसरोवरशालिहंसः ॥ ११२ ॥

शेषाहिवावहिशरा बहुहावहेला - लीलाविलासविवशासु वशास्ववश्यः ।

सेव्योऽसि वासवविशां सविशेषवीर्य - शौर्याश्रयोऽस्यविरलं सरलाशयोऽसि ॥ ११३ ॥

अर्हन् यशःसलिलराशिशशी रसायाः, सार्वः शिवालयविलासरसाय सोऽयम् ।

सर्वे सुरासुरसुरेश्वरसुरिसिंहाः, संसारवासविरहाय सिषेविरे यम् ॥ ११४ ॥

यः स्वैरिवैरिविलयाय सहः सहस्त्री, स्वीयस्ववंशबहुलाम्बरशर्वरीशः ।

शश्वल्लौ वशविहारसीह शीलं, श्रेयोरहस्यसरसीरुहसूर एषः ॥ ११५ ॥ (- चतुर्थमिदम् ।)

ये पञ्चवर्गपरिहारसमेतमेतत्, पञ्चाक्षनिग्रहपराः स्तवनं पठन्ति ।

ते ही ! चतुर्थपुरुषार्थसुखं लभन्ते, तद्विधिलाभसुभगास्तु ममापि बुद्धिः ॥ ११६ ॥

इति भगवन्तमभिष्टुत्य कृतकृत्येन सहैव सङ्घेनानधीभवन्तः, अथ गिरिगहरकूटसङ्घटान्
मार्गान् दुर्गमानुलङ्घयन्तः, कापि पर्वतप्रदेशोद्भूताभिः सप्रत्ययाभिस्तमः कवलयन्तीभि-
र्ज्वलन्तीभिरौषधिभिरतिभास्वरप्रदीपकलिकासाध्यं कर्म प्रत्यक्षयन्तः, पर्वतघट्टानतिक्रम्य
पर्वतदेशमध्यगं नानाविधश्राद्धसङ्कुलं श्रीकोठीपुराभिधमहानगरं प्रापिम । तत्र च देवार्थ-
देवपादा विधिवदभिवन्दिताः । तत्र च सं० सोमाकोऽवारितवाहनासारं सरसशर्कराचूर्ण-
पूर्णं भोक्तृमनोमोदकं महामोदकं प्रचुरघृतपूरपक्वान्नसम्पन्नशाकप्रीणितरसिकलोकमिन्द्र-
रसाखादमाद्यद्रसज्ञरसनाविषयं स्तूपीभवदपूपं सुनिष्पन्नरूपं मुग्धस्निग्धदध्योदनजनित-
जनसमाधानं सुगन्धिशालिपरिमलोद्गारमात्राप्यायमानजनं प्रसर्पत्सर्पिर्द्वाराप्रवाहप्रवा-
हिताहितदौर्मनस्यं नानाखाद्यपेयलेह्यखाद्यहृद्यं प्रकाश्यमानबहुविनयप्रकारं श्रीसाधर्मिक-
वात्सल्योपचारं सारं कारं कारं तथा समस्तवास्तव्यवस्तुवित्तसार्थिकसङ्घपुरुषेषु सम्पन्न-
चित्तरङ्गः सुरङ्गश्चङ्गवसनदानेन मनागस्खलितचित्तस्ताम्बूलादिना च सचमत्कारं सत्कारं
चकार तथा, यथा सार्वत्रिकीं प्रशंसामाससाद । इत्यलं बहूक्त्या । तदेवं देववन्दनसाव- 35

धानास्तत्रापि दिनदशकं स्थितिमजीघटाम । अथ ततः प्रचल्यातिदुरन्तमहामार्गसागर-
मतिक्रमयन्तः, क्रमेण सप्तरुद्राख्यमहाप्रवाहमयं जलनिवेशमक्लेशेनैव क्रोशचत्वारिंशत्प्रमाणं
तरीभिरतिवाहयन्तो यथाक्रमं चङ्क्रम्यमाणाः श्रीदेवपालपुरपत्तनं प्राविशाम । तत्रत्य-मृदु-
पक्षीय-सं० घटसिंहादि-खरतरपक्षीय-सा० सारङ्गादि-विविधशुद्धश्रद्धश्राद्धसङ्केन शुभ-
५ शुभायमानघनतूर्यम्, शुभशुभायमानगन्धर्वम्, चटचटायमानकाहलम्, दमदमायमान-
मर्दलम्, दमदमायमानढोलम्, प्रौढीभवजयजयरवं प्रवेशोत्सवमन्वबोभूयामहि च ।
तत्रापि कोठीपुरवत् तानि तानि साधर्मिकवात्सल्यसङ्घपूजादीनि सङ्घपत्युचितानि निखिला-
न्यपि करणीयानि सङ्घपतिमहाधरादिभिस्तथा चक्राणानि यथा श्रीजिनशासनस्य सङ्घस्य
साधूनां श्रावकाणां च प्रशंसोल्लापः स्वपरपक्षीयेषु प्रोल्लास । तदेवं श्रीजिनशासनं भासयन्
१० सङ्घस्तत्र दशदिनीं स्थितिमकरोत् । ततश्च तत्रत्यसङ्घलोकाग्रहेण तथाविधां तत्र योग्यतां
मत्वा मेघराजगणिः सत्यरुचिगणि-कुलकेसरिमुनि-रत्नचन्द्रक्षुल्लकैः सहितश्चतुर्मासीं
स्थापितः । स च यावत्साम्प्रतं तत्रत्यसङ्घेन सम्प्रहेटितोऽस्मदुपकण्ठं विजयी समाया-
सीदिति ।

[तीर्थयात्राप्रत्यावर्तन-स्वस्थानप्रवेशवर्णना -]

११. अथातो वयं सह सहागतेन तेनैव सङ्घेन सहसा प्रचेलिवांसः । क्रमेण श्रीमद्देवगुरु-
प्रासादसान्निध्यबोहित्येनातिदुरुत्तरमहत्तरसरणिसागरं सुखसुखेनाकुतोभयाः समुल्लङ्घ-
यन्तः, पदे पदे गमनावसरपरिचितानि निवासस्थानानि निश्चिन्वन्तः, अविच्छिन्नैः प्रयाणै-
र्विपाशाकूलङ्कषां पश्चान्मुञ्चन्तः, प्राक्प्रस्थानमङ्गलवेलापरिचितं पुरोपवनं प्राप्ताः । इतश्च
श्रीसङ्घागमनकिंवदन्तीपानोल्लसदाह्लादमेदुरः समस्तालस्यच्छिदुरः प्रस्तावोचितक्रियाविदुरः
० श्रीफरीदपुरीयः सङ्घस्तत्कालमिलितान्यग्रामसङ्घश्च; किं बहुना? - सर्वोऽपि ग्रामश्च तीर्थ-
यात्रापुण्यपवित्रिताङ्गसङ्घदिदृक्षयाऽतितृषितलोचनः सम्मुखीनोऽत्यौत्सुक्यभावादागात् ।
ततश्च तमुचिताशीर्वादेन सह प्रमोदेन योजयन्तः सङ्घपतिसोदराभ्यां सा० पासदत्त-सा०
हेमाभ्यामतिप्रीतिपराभ्यां पूगीफलनालिकेरादिबहुलताम्बूलादिदानेन सत्क्रियमाणसर्वजने,
वाञ्छितदानेनायाचकीक्रियमाणे याचकलोके, जायमाने प्रवेशोत्सवे फरीदपुरमवापाम ।
यावत्सर्वोऽपि सङ्घोऽनिर्वाच्यपरमाह्लादसुधाम्भोधौ मग्न इवाभूत् । तद्दर्शं च वयमपि
सिद्धिसमीहितत्वान्निरुपमसमाधिभाजोऽजनिष्महि ।

अपि च -

मनसि कृत्य जिनेश्वरवन्दनं प्रचलिता यत एव वयं मुदा ।

अभिनिर्वासिततीर्थनमस्यया सुफलिताभिमतास्तत आगताः ॥ ११७ ॥

सिद्ध्यन्तीदंशि कार्याणि प्रायेणोद्यमयोगतः । स चाप्यपेक्षते पुण्यं तच्च सङ्घे प्रतिष्ठितम् ॥ ११८ ॥

॥ इति श्रीविज्ञप्तित्रिवेण्यां तीर्थयात्रार्थसमर्थिका

गङ्गातरङ्गाख्या द्वितीया वेणिः ॥

*

३. अथ ज्येष्ठकल्पविधानाद्यर्थप्रस्ताविका तृतीया वेणिः प्रारभ्यते ।

*

[साधुपार्श्वदत्त - हेमाभिधक्तसुकृत्यप्रशंसा -]

§ १. अथ सङ्गागमनानन्तरं नितान्तमुदितचित्तौ सङ्घपतिभ्रातरौ साधुपार्श्वदत्त-हेमाभिध-
सुश्राद्धौ ज्येष्ठे भ्रातरि सौभ्रात्रवल्लरीं पल्लवयन्तौ स्वं धन्यं मन्यमानौ निस्समानमानसोत्साहौ
तत्तत्प्रभूतसाधर्मिकादिसत्क्षेत्रेषु विविधाशनादिप्रकारेण न्यायार्जितवित्तबीजवापं तथा-
ऽकार्ष्णं यथा कल्पान्तकालकीर्त्तनीयकीर्त्तिमतां मतिमतां सत्त्ववतां सत्पुरुषाणां द्वितीयतां
धुरीणतां वा किलाञ्चतुः । तत् किं बहूच्यते? यतः - य एव केचन यात्रारम्भे मनागवज्ञामना-
टयन्, त एवाथ सर्वाध्यक्षं स्वात्मानं निन्दन्तः सुनिष्पन्नसङ्घकर्माणि श्रावं श्रावं प्रमोदा-
श्रूणि चातिविस्मयात् स्वावं स्वावं भट्टा इवैकान्तसङ्घकार्यभट्टिममुखरितमुखाः साक्षादीक्षिताः ।
तदहो ! खलु लोको जितद्वितीयः कामितकामुको वाऽस्तीति विदांकुर्वन्तु श्रीपूज्या लौकिका-
चारम् । किं च - सामान्येनाऽप्यनेन सङ्घेन सङ्घद्वयमीलनादतिस्फारीभूतेन तेषु तेषु स्थानेषु
सङ्घान्तरेभ्योऽसामान्यैः करणीयैः सर्वथाप्यलरिच्यत । तच्च सर्वमागन्तुका एव न्यक्षेण
वक्ष्यन्तीत्यलम् । अथ यावद्दिनानि कानिचित् तत्रावस्थानमभूत् तावता श्रीमलिकवाहणीयः
श्रीमम्मणवाहणीयश्च समुदायस्तत्र वन्दक आकारकश्च तुल्यकालं समुपागात् । ततश्च स्वस्वा-
स्पदमस्मान् विहारयितुं भृशमाग्रहीष्टाम् । वास्तव्योऽपि तथैवावस्थापयितुं निर्वन्धपरायण 15
आसीत् । ततोऽस्माभिर्वास्तव्यो यावद् रहस्याक्षरमन्त्रेण सम्बोधितोऽत्याग्रहाद् विरराम,
'आम' इत्याह च । तद् द्वयं तु तथैवान्योऽन्यं विवदमानं शकुनान्वेषणव्यपदेशेन समाधाय
तत् प्रथमं मम्मणवाहनं प्रति प्रस्थिताः । सायं च दक्षिणेन गोमायवोऽरटन् । ततो
मम्मणवाहनगमनमुपेक्ष्य सह तत्सङ्घेन तदैव श्रीमलिकवाहनं प्राप्ताः । तदा च साधु द०
मालाकेन प्रवेशोत्सवरङ्गः परिमितप्रसारोऽपि निखिलजनशोभासम्भारसम्पादको व्यधायि 20
येन सर्वजनो मनसि चमदकरोत्, इति ।

[तीर्थयात्राकरणानन्तरसमागतपर्युषणापर्ववर्णना -]

§ २. अथ श्रीतीर्थयात्रामहापुण्यपीयूषकुण्डारचितसवना इव सुतरां सुस्थिरस्वास्थ्यभाजः
सपरिच्छदाः ससङ्गाः सुपरिणामाः पुरा यावद् वर्त्तामहे; इतः प्रतिवर्षप्रतिनियतागमा
श्रीपर्युषणाऽपि प्रत्यासीदिति ।

25

ततश्च -

दान-शील-तपो-भावरूपो धर्मश्चतुर्विधः । भृशं प्राप्तावकाशोऽभूदेष्यति ज्येष्ठपर्वणि ॥ १ ॥
अर्थमुक्तोऽपि दातृणां करो गुस्तरो भवेत् । तत्पूर्णोऽपि पुनर्लार्तुर्लघुरेवेति मे मतिः ॥ २ ॥
दानं दौर्गत्यनाशाय दानं दुरितदारकम् । आशाकल्पद्रुमो दानं प्रियं त्रिजगतोऽपि तत् ॥ ३ ॥
दानेन शासनौन्नत्यं यादृशा तादृशेन वा । तस्माद् दीक्षाक्षणारम्भे तद्व्यापारि जिनैरपि ॥ ४ ॥
पश्य दानस्य सौभाग्यं वस्तुपालादयो यतः । जीवन्त इव मन्यन्ते यदुत्थयशसश्छलात् ॥ ५ ॥
अहो ! दानसमं नास्ति जगन्नित्यमोहनम् । यस्माद् दुष्टोऽपि तुष्टः स्यात् तथा शत्रुः सुहृद्वते ॥ ६ ॥

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

दान इत्यक्षरद्वन्द्वं विभज्य जगृहे जनैः । उदारैरादिमो वर्णः स्पर्द्धयेवापरैः परः ॥ ७ ॥
राजानो दुर्जना मातापितरो गुरुबान्धवाः । स्निह्यन्ते के न दानेन चिरं विमुखिता अपि ? ॥ ८ ॥

तथा -

कष्टानुष्ठानकर्तारो भूयांसः सन्ति पूरुषाः । केऽपि ते विरला एव शीलशुभ्राः सदैव ये ॥ ९ ॥
कलिदुर्वातपातेन कथञ्चिद् विधुरा अपि । शीलबोहित्यमास्थाय भव्यास्तीर्णा भवार्णवम् ॥ १० ॥
न व्रातारो न दातारो योगिनो न न भोगिनः । शीलपालकलोकानामर्धन्त्येकां कलामपि ॥ ११ ॥
अन्तरङ्गद्विषद्व्यूहं गलहस्तकदायकम् । तपः सुसाधुभिस्तप्तं निर्जराङ्गमकृत्रिमम् ॥ १२ ॥
विपमाण्यपि कर्माणि दुश्चीर्णानि कथंचन । तपस्तपनयोगेन क्षयं यान्त्यन्धकारवत् ॥ १३ ॥
प्रत्यूहव्यूहतो नाम लोको यद्येव शङ्कते । नादधीत कथंकारं तपस्तद्वध्वंसमांसलम् ॥ १४ ॥
यद्गम्यं यद् दुरापं दुःश्रद्धेयं च यद् भुवि । तदायासं विना भूता लभन्ते तपसा प्रियम् ॥ १५ ॥
दुष्कर्ममलसंस्पृष्टस्तावदात्मा न शुद्ध्यति । तपोऽग्निना स्वर्णमिव न यावज्जातु तप्यते ॥ १६ ॥
यक्षरक्षःफणिव्याघ्रा न तानाक्रमितुं क्षमाः । सिद्धमन्त्रोपमे येषां तपस्यास्था सनातनी ॥ १७ ॥

तथा -

नरके नारकाः सन्ति सहन्ते दुःखमेव च । न तेषां भावना शुद्धा तस्माल्लभो न किंचन ॥ १८ ॥
पुण्डरीकादिभिस्तैस्तैः श्रेष्ठैकाहव्रतादपि । कर्मग्रन्थिस्त्रोटितो यद् भावना तत्र कारणम् ॥ १९ ॥
सुचिरादविवेकोऽपि कृताज्ञानतपा अपि । भावनातो नरः शुद्ध्येत् तामलीवामलाशयः ॥ २० ॥
दानं शीलं तपस्तुण्डमुण्डनादि सुबह्वपि । अफलं खुद्दिशास्वीव यद्येका नहि भावना ॥ २१ ॥
अहो ! भावस्य भव्यत्वं विरत्यां विगताग्रहः । आर्जितत् तीर्थकृलक्ष्मीं श्रेणिकः पृथिवीमिव ॥ २२ ॥
दानं दुरितनाशाय शीलं सौभाग्यवर्द्धकम् । तपः पङ्कविशोषाय भावना भवनाशिनी ॥ २३ ॥

तदमूनमूढशो दान-शील-तपो-भावनाभेदान् परिपोषितस्वस्वसामर्थ्यान्नासीरतया परि-
रता चतुरङ्गचमूभावेन व्यवस्थाप्य तैरेवाधृष्यविपक्षपक्षक्षोभमुद्भावयन्ननिवारितनिजै-
कलया सपक्षानावर्जयन्नगणितस्वपरपक्षः सर्वत्र समदृष्टिरुदारचरितः सम्यक्त्वसामा-
न्श्वेतगजारूढः प्रौढश्रीः पर्वराजः श्रीजिनराजशासनराजधानीमध्युवास । तदा च-
शिषः स्थानेन चाऽस्माभिः श्रीकल्पवाचनाव्यापारयिषत् श्रीकालिकाचार्यकथाद्वयोपदेश-
इदंशेन तत्तत् तदुत्पत्त्यादिव्यावर्णनं निर्णयद्विश्च द्वारभट्टपटिमा स्वात्मनि घटयांचक्रे च ।
तदमहाजनेन तु साङ्गतिकक्रमुकनालिकेरीविविधवर्णवर्णनीयवासःप्रदानसाराभिरेका-
कृत्वः प्रभावनोपदाभिरुपस्थितश्चायं पर्वराजः । किं चात्र साधुमेहाक - सं० जसूआवकौ
अक्षपकौ, आद्वैका तु द्वादशपक्षक्षपका, अष्टाहिकाकारिण्यस्त्वगारिण्यो गणनातीताः
पत्सत । एतच्च पर्वस्वरूपं पुरापि श्रीपूजेभ्यः प्राभृतीकृतमभूत्, तथाऽप्यधुना स्थानाशु-
र्थं पुनरपि व्यज्ञपीति न पौनरुक्तमाशङ्क्यम् ।

[चतुर्मासानन्तरसञ्जातनन्दिमहोत्सववर्णना -]

. अथ सम्प्रति मिलितसर्वमहाजनो महाविस्तारस्फारो वाद्यदातोद्यस्तोमः पौषसित-
न्यां श्रीनन्दिमहः सम्पन्नः । तत्र च आवकाश्चत्वारः, आविकास्तु चतुर्विंशतिः, संयताश्च
, सर्वविरतिवर्जं तत्तत्तपश्चरणप्रमुखानभिग्रहविशेषान् परमयाऽहमहमिकया यथार्हं
प्यादद्विरे । तदा च ताम्बूलादिदानप्रधाना विश्वाश्चर्यकरी सा काचित् प्रभावना आव-

— ॥ परिशिष्टस्वरूपाः पंक्तयः ॥ —

[उपसंहारात्मिका विज्ञप्तिः —]

विज्ञप्तित्रिवेण्यां सूक्तलसलहरिवारहारिण्याम् ।
गुणगृह्यनिपुणमानसवृन्दानि खान्तु चिरकालम् ॥ १ ॥
जलधि-वसु-भुवने-सङ्ख्ये वर्षे माघे सिताष्टमीदिवसे ।
रविसुतवारे रुचिरे समर्थितोऽयं महालेखः ॥ २ ॥
यन्मूनं यच्चाधिकमसङ्गतं वा यदत्र लिखितं स्यात् ।
तच्छोध्यं धीमद्विर्यतः सतां रीतिरियमेव ॥ ३ ॥

किं च —

श्रेष्ठिनो नरसिंहस्य तनयो विनयावनिः । भोजारुच्यः साक्षरः क्षिप्रं प्राञ्जलिः प्रणमत्यसौ ॥ ४ ॥

*

विशेषस्वरूपावलीज्ञाप्या निष्पन्नेयं विज्ञप्तित्रिवेणीनामग्रन्थपद्धतिः ।
संवत् १४८४ वर्षे माघमासि दशम्याम् ।

*

किं च —

द्विवन्दनीकगच्छीयाः श्रीदेवगुप्तसूरयः श्रीसाधुरत्नोपाध्याया वा यदीह स्युस्तदा तेषां विशि-
ष्यास्मदीया प्रतिपत्तिरौचित्येन प्रकाशयेति ।

*

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥

*

॥ भद्रमस्तु जिनशासनाय । स्वस्ति श्रीसङ्घाय । आयुष्यमस्तु गुणगृह्येभ्यः ।
समाधिरस्तु स्वयूथ्यानामिति ॥

(ग्रंथाग्रं १०१२)

23

॥ समाप्तं विज्ञप्तित्रिवेणीनामकं बृहद् विज्ञप्तिपत्रम् ॥

महोपाध्यायजयसागरकृता नगरकोटचैत्यपरिपाटी ।

*

मनि लागिय खंति जालंधर देसह भणिय । तीरथ वंदण रेसि नगरकोटि तउ आवियउ ॥ १ ॥
 णगंगा पातालगंग व्याह नइ जसु तडिहिं । वणराई घण घाट वाट ति घाटिहिं आगलिय ॥ २ ॥
 महिमाभंडार पहिलउं पहिलइ जिणभवणिं । दीठउ संतिजिणिंद नयण अमियरस पारणउं ॥ ३ ॥
 गहरि वीजइ रीजु मनि अधिकेरउं ऊपजए । जहि सोवनमय विंब रूपचंद रायह तणउं ॥ ४ ॥
 णे दीठइ संतोसु मण आणंदिहिं ऊससए । अंधारइ उद्योत जयउ सु जगगुरु वीरवरु ॥ ५ ॥
 वीजइ प्रासादि सरवरि राजमराल जिम । संभाविउ रिसहेसु चंपकि चंदनि थुति जलिहिं ॥ ६ ॥
 चडियउ चमकंत अति ऊंचइ गढि कांगडए । इहु जाणे मइ किछु सिद्धिसिला आरोहणउ ॥ ७ ॥
 जउ अंगि न माइ माइ ताय घर वीसरिय । सरिय सयल मह कज तहिं रिसहेसर दंसणिहिं ॥ ८ ॥
 हीमालय हुंत राय सुसर्म्मिहिं जाणियउ । नेमिसरि जयवंति कंगड कोटिहिं आणियउ ॥ ९ ॥
 वंसि जे राय राणा जसु पयतलि लुलइ । अंबिकदेवि पसाइ तहिं मनवंछित फल मिलइ ॥ १० ॥

भास -

कंचणमय कलसिहिं सहिय ए च्यारइ प्रासाद, च्यारइ चिहुं वरणिहिं नमिय च्यारइ हरइं विषाद ।
 गोपाचलपुर सिरिमउड संतिनाह जगसामि, कामियफल कारणि रसिय लीणउ छउ तसु नामि ॥ ११ ॥
 नंदवणिहिं नंदउ सुचिरु चरमजिणेसर चंद, जगचकोरु जसु दंसणिहिं पामइ परमाणंद ।
 पास पसंसउ कोटिलए गामिहिं महि अभिरामि, मह मन कोइलि जिम रमउ तस गुण अंबारामि ॥ १२ ॥
 हेमकुंभ सिरि जिणभवणि ए सवि थुणिया देव, देवालइ कोठिनयरि करउं वीरजिण सेव ।
 दुक्खह दिनु जलंजलिय सुखह लद्धु पसार, तीरथ पंचइ जइ नमिय पामिय मोख दुयार ॥ १३ ॥
 मंगल तीरथ पंथियह मंगल तीरथ पंथ, ज सुखेहिं किर मइं कलिय मुकतिनारिसीमंथ ।
 नारि अच्छइ घरि घरि घणिय जणणी सा पर धन्न, जासु कुक्खि उप्पन्न नरु संचइ तीरथपुत्तु ॥ १४ ॥

इय जयसायर समरिय ताय, सवालखपच्चय जिणराय ।
 ता अम्हारिय पूरी आस, हउं बोलउं जिणसासण दास ॥ १५ ॥
 इणि समरणि नासइ नरगजोग, इणि समरणि लाभइ सरग भोग ।
 इणि कारणि तुम्हि भो भविय आज, इहु पभणहु, निसुणहु, सरइं काज ॥ १६ ॥
 इय नगरकोट पमुक्ख ठाणिहिं जे य जिण मइं वंदिया,
 ते वीर लउंकड देवि जालामुखिय मन्नइ वंदिया ।
 अन्नेवि जे केवि सग्गि महियलि नागलोइहि संठिया,
 करजोडि ते सवि अज्ज वंदउं फुरउ रिद्धि अर्चितिया ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीनगरकोटमहातीर्थचैत्यपरिपाटी ॥

— ॥ कृतिरियं श्रीजयसागरोपाध्यायानाम् ॥ —

*

विज्ञसिलेखसंग्रह
द्वितीय विभाग

*

प्रकीर्णविज्ञसिलेखाः ।

*

महोपाध्यायश्रीविनयविजयगणिप्रणीतं

[१] आनन्दलेखप्रबन्धनामकविज्ञप्तिपत्रम् ।

—॥ चित्रचमत्कारनामा प्रथमोऽधिकारः ॥—

*

॥ सकलभट्टारकप्रभु श्री ५ श्रीविजयाणन्दसूरिगुरुभ्यो नमः ॥

स्वस्ति श्रियां मन्दिरमन्दिरालीमिन्दिन्दिरालीमिव यः पिपत्ति ।
 रज्यत्प्रवालायितपादपद्मं पद्मं यमाहुः प्रवितीर्णपद्मम् ॥ १ ॥
 स्वस्ति श्रियः सद्गानि यत्पदाब्जे रेजे नखानां ततिरच्छकान्तिः ।
 दिशां दशानामपि सुन्दरीणामादर्शमालेव मणिच्छटेव ॥ २ ॥
 कर्णोपकण्ठे किल कुन्तलाली कलिन्दकन्येव विभाति यस्य ।
 स्वतातसन्तापमपाचिकीर्षुर्विज्ञप्तिमेषा चरिकर्ति नूनम् ॥ ३ ॥
 जटाच्छटा राजति राजतीनशिरस्तटे बालकलिन्दजेव ।
 वृषाङ्गमौलिस्थलमन्दिरायाः स्पर्द्धातिरेकान्नु सरिद्वरायाः ॥ ४ ॥
 यत्कर्णयोर्नूनमनूनकेशच्छटाच्छलाच्छंसति सूर्यजेति ।
 बन्धोर्मदीयस्य नृशंसभावं, शुभोपदेशेन निवर्तयेत् ! ॥ ५ ॥
 यमीतमीश्यामशिरोजमालामिषादिदं वक्ति नु यस्य कर्णे ।
 सन्तापिता पापिभिरिश ! तापी, जामिर्मदीया वत किं करोमि ! ॥ ६ ॥
 यमीयमीशं श्रुतिमूललया वक्तीति केशावल्लिखतः किम् ।
 समादिशेदं दुरितेन केन, प्रभोऽन्वहं खे भ्रमणं पितुर्मे ॥ ७ ॥
 गङ्गातिगौरी हरचित्तचौरी, हसत्यसौ तात ! तरङ्गभङ्गैः ।
 भामण्डलस्पृष्टशिरोजराजीमिषात् स्वतातं यमजामिराह ॥ ८ ॥
 प्रतिष्ठिता भावलये यदीये, विभाति भातिप्रगुणेऽलकाली ।
 इदं निरीक्ष्य द्रुतजाततातभ्रान्त्या किमालिङ्गति तारणेयी ॥ ९ ॥
 खलेन भिन्ना हलिना हलेन, बलेन नष्टा शरणं प्रपन्ना ।
 विभाति पृष्ठे यमुनैव यस्य, शङ्केऽलकानां विततेऽखलेन ॥ १० ॥
 यदीयभामण्डलमध्यलया न साऽलकाली शमनस्वसेयम् ।
 गोरत्ववाञ्छावशतस्तटाकपाकभ्रमान्मज्जति लज्जितेव ॥ ११ ॥

॥ अथ चित्रप्रक्रमः ॥

जयिन् नयिन् जय श्रीमन् ! भाविनां भावुकप्रदः । दयादोषदभौघदवकल्पो वरान्वयः ॥१२॥ (—पूर्णकलशः ।)
 जयाय यतते तेऽहो यावता शशभृच्छ्रियः । यता हि सततं ज्योत्स्ना यशः सज्जिन ! विश्वपाः ॥१३॥ (—अर्द्धभ्रमः ।)

१ प्रत्यन्तरे “कान्तिच्छटा” । २ अहो प्रभो ! यशः यावता शशभृच्छ्रियः जयाय यतते यत्सम्बन्धात्, तावता ज्योत्स्ना
 यता = उपरता इत्यर्थः । ‘यमू उपरमे’ (सिद्ध०) इति वचनात् ।
 वि० म० ले० १०

† यत्रावटाष्टाकृतिकारिणोऽच्छारघट्टमालाजपमालिकाद्याः ।
तुलां दधत्युद्धटमात्रिकाणां निदाघधर्मोऽपिशाचजैत्राः ॥ ६४ ॥

॥ इति वनवर्णनम् ॥

पुरं यदष्टादशवर्णशोभावभासितं सङ्गतसार्द्धवर्णाम् ।
दिवं जयत्यत्र किमद्भुतं स्यान्न कृच्छ्रज्यो बलिना बलोनः ॥ ६५ ॥
वर्णागमोऽर्थातिशयेन योगो यत्रास्ति नो वर्णविपर्ययश्च ।
न वर्णलोपो न च तद्विकारस्तथापि यत्रेष्टपदार्थसिद्धिः ॥ ६६ ॥
विनोपसर्गं बहुधा तु यत्र धातोर्विशुद्धा द्विविधार्थसिद्धिः ।
ततः कथं व्याकरणस्य जैत्रं पुरं नयच्चित्रमनव्ययार्थम् ॥ ६७ ॥
लसद्बहुव्रीहि सकर्मधारयं भृतं च तत्तत्पुरुषैर्बहुद्विगु ।
सदाव्ययीभावमविप्रयोगवद् द्वन्द्वं तथाप्यङ्ग न यत् समासवत् ॥ ६८ ॥
अविप्रयुक्तानपि विप्रयुक्तान् घनान् जनान् यन्नितरां बिभर्ति ।
अद्वन्द्वनामापि लसद्विलासिद्वन्द्वं विशालं च सुशालमेव ॥ ६९ ॥
यस्यातिचातुर्यवतः पुरस्य पुरः स नाकोऽपि पशूपमानः ।
युक्तं ततस्तस्य कृतं कवीन्द्रैर्गुणागतं गौरिति गोत्रमत्र ॥ ७० ॥

अथ वा— निरीक्ष्य यस्याः पुरतो भयेन लङ्कां सशङ्कां जलधौ निमग्नम् ।
अवध्यतायै तविषोऽपि नूनं सुधीर्दधौ गौरिति नामधेयम् ॥ ७१ ॥
कदाप्यरङ्गं न ततोऽन्विताख्यं यत्राऽस्ति 'नारङ्गसरो'ऽभिरामम् ।
गर्जन्निमज्जयकुञ्जरोरुसिन्दूरपूरारुणितोर्मिमालम् ॥ ७२ ॥
शङ्के सपङ्केरुहमच्छनीरं निरीक्ष्य सुखादु सरो यदीयम् ।
क्षीरोदधिः क्लृप्तलघुस्वरूपः क्षारोदधेः प्राघुणतामियाय ॥ ७३ ॥
पयोनिधिर्यामधिगम्य लीलानिकेतनं सुन्दरमिन्दिरायाः ।
स्थाने नरीनृत्यत इत्यपत्यप्रेमप्रकर्षो हि जने गरीयान् ॥ ७४ ॥
मदङ्गजायाश्चपलस्वभावमपाकरोदित्यधिकादजयार्त् ।
संलग्नवेलावलयच्छलेन यामालिलिङ्गेव मुदा पयोधिः ॥ ७५ ॥
पुरा मुरारिप्रमुखाणि पुत्रि ! स्थानानि तान्यस्थिरयोज्जितानि ।
अथेदं प्राप्स्यसि नेति गर्जन् पयोनिधिः शिक्षयतीव लक्ष्मीम् ॥ ७६ ॥
वार्धिर्जगादेन्दुमिदं प्रमोदादभ्रङ्गपोदस्ततरङ्गहस्तैः ।
स्थिरस्वभावास्ति तवाऽत्र जामिर्मुधा किमु भ्राम्यसि तां दिदृक्षुः ? ॥ ७७ ॥
द्वीपान्तरोत्तीर्णविचित्रवस्तुभृतानि यस्मिन् वहनानि भान्ति ।
इह स्थिताया निजनन्दनायाः कृतेऽम्बुधिप्रेषितदौकनानि ॥ ७८ ॥

॥ इति समुद्रवर्णनम् ॥

† प्रत्यन्तरे पद्यमिदमेतादृशं दृश्यते— 'यत्रावटाष्टाकृतिकारिकाष्टारघट्टमालां जपमालिकां द्वाग् । आवर्तयन्तः सठकारमन्त्रं जपन्ति घर्मोत्कटदोषजैत्रम् ॥' १ प्र० 'यस्तु' । २ प्र० 'पिच स' । ३ प्र० 'नृत्यति चेदप' । ४ प्र० 'ननु नन्द' ।

यत्रानिशं भूरिविलासिलोकैरुत्कीर्णकृष्णागुरुधूपधूमैः ।
विधोरधो ध्यामलितं तलं यलक्ष्मेति लोकैः परिचिन्त्यते^१ तत् ॥ ७९ ॥
यत्रापणश्रेणिषु सञ्चितानि मुक्तप्रवालानि निजानि वीक्ष्य ।
वेलामिषाद् वारिनिधिः स्वदेहमास्फालयन् भित्तिषु पूत्करोति ॥ ८० ॥

यत्र च - यदा यदा तुङ्गविहारशृङ्गे निषेदतुः श्रान्तिभिदेऽर्यमेन्दू ।
तदा तदाविःकुरुतः स्वकीयं खगस्वभावं प्रथितप्रभावौ ॥ ८१ ॥
प्रसह्य चेतोहरतामुपेतां यदा यदा यां परिहृत्य याति ।
तदा तदा सत्वरनुन्नरथ्यो दिनानि भानुर्लघयत्यवश्यम् ॥ ८२ ॥
यदा यदा यां समया समेति तदा तदा तैः कुतुकप्रकारैः ।
व्यग्रास्नानुन्नतुरङ्गराजिर्दिनाधिनाथो महयत्यहानि ॥ ८३ ॥
† यत्रेभ्यगेहाश्चलकेतुचेलाः सूर्येन्दुतापाङ्गगदापनुलैः ।
ध्रुवं व्यवस्यन्ति सदोपकारिलोकानुषङ्गात्तथास्वभावाः ॥ ८४ ॥
यत्रार्हतां वेश्मसु तुङ्गशृङ्गसुवर्णकुम्भावलिषु प्रविष्टः ।
क्रमाद् भ्रमन् राजति भानुमालीदमीयमिक्षाक इव प्रभायै ॥ ८५ ॥
यत्रातितुङ्गार्हतमन्दिरेषु शिरःस्फुरत्केतुमस्तुरङ्गैः ।
रव्यादयः खेऽपि पथि श्रमघ्नीं ग्रहा महारामरतिं लभन्ते ॥ ८६ ॥
यत्रान्वहं श्रीजिनमन्दिरेषु पूजासु नृत्यन्मनुजानुवृत्त्या ।
नृत्यन्ति शृङ्गस्थितकेतवोऽपि समीरसम्पातैर्धुतिच्छलेन ॥ ८७ ॥
इभ्यालयान् यत्र बहून् विलोक्य सकेतुयष्टीन् गगनाग्रलग्नान् ।
नेशुर्विमानानि भयेन नूनं नाद्यापि दृग्गोचरमापतन्ति ॥ ८८ ॥

॥ इति जिनमन्दिरेभ्यमन्दिरवर्णनम् ॥

उपाश्रया यत्र वसन्मुनीशस्वाध्यायनिर्घोषनिकृत्तदोषाः ।
नयन्ति पोषं^१ निपुणाङ्गितोषं धर्मक्षमानायकराजधान्यः ॥ ८९ ॥
उपाश्रयेषुध्वर्मधित्यकानां लसन्ति सोपानपथं श्रयन्तः ।
मुमुक्षवः किं ग्रहचक्रचारमिच्छन्ति संवादयितुं जिनोक्तम् ॥ ९० ॥

अथ वा - यत्रासकृन्नित्यमधित्यकाग्रारोहावरोहौ मुनयः सृजन्तः ।
सुस्थां गुणस्थानकपङ्क्तिमग्र्यामारोढुमभ्यासमिवाश्रयन्ति ॥ ९१ ॥
व्याख्यागवाक्षे यदुपाश्रयस्य विभान्ति येऽत्यन्ततता वितानाः ।
नित्यं गुरुपासनपुण्ययुक्ता मुक्तामयाः स्युः किमिवात्र चित्रम् ॥ ९२ ॥
विराजते यत्र सदोपदेशवातायनः काञ्चनकोशशाली ।
सिंहासनं शाक्रमिवाशु जेतुं युद्धे कुधेवोर्जितसज्जवर्मा ॥ ९३ ॥

॥ इत्युपाश्रयवर्णनम् ॥

१ प्र० 'चिन्तितं' । † प्रत्यन्तरे पद्यमिदमेतादृशमुपलभ्यते - 'यत्रेभ्यगेहाश्चलकेतुकम्पमिषाद् रवीन्द्वोरपहर्तुकामाः । ताप-
सततोपकारिजनाश्रयात्तापकृतिस्वभावाः ॥' २ प्र० 'क्षणं महा' । ३ प्र० 'समीरवह्या विधुति' । ४ प्र० 'प्रवराङ्गि' ।

क्षणक्षणे यत्र सभा विभाति विभातिसम्पन्नमहेभ्यसभ्या ।
 कल्पद्रुमाणां पटलीव पुष्पफलोज्ज्वलाऽऽमोदमयी वदान्या^१ ॥ ९४ ॥
 गुरुक्रमाब्जोपनमन्महेभ्यकुमारकोटीरमणिप्रभाभिः ।
 अकृत्रिमा चित्रिततोरणसक् चित्रीयते कस्य मनो न यत्र ? ॥ ९५ ॥
 यत्रार्यलोकान् विलसद्विवेकान् सुरासुराकम्पितधर्मबुद्धीन् ।
 निरीक्ष्य मन्ये बहुमन्यमाना न नाकिनः क्षमां चरणैः स्पृशन्ति ॥ ९६ ॥
 उपासिका यत्र पवित्रगात्रा लसच्चरित्रा विशदागमज्ञाः ।
 सुरूपशीलोन्नतिभङ्गकस्थाः शेषां त्रिभङ्गीमपहस्तयन्ति ॥ ९७ ॥
 नानाविभूषाकुसुमावदाताः कौसुम्भवासः किशलालिरम्याः ।
 दानप्रधानाः करचारुशाखाः सर्वलितुल्याः किल यत्र नार्यः ॥ ९८ ॥
 अस्मन्मुखैर्निर्जित एष चन्द्रो लज्जाजडो यास्यति कुत्र रङ्गः ।
 इतीव चेलान्तरितास्यपद्माः पद्मोपमा यत्र वसन्ति वध्वः ॥ ९९ ॥
 यत्राङ्गनाः काञ्चनभङ्गगौर्यः स्नेहोद्धता मन्दिरदीप्तिदक्षाः ।
 पतत्पतङ्गायितकामिनेत्राः कलामधुर्दर्पकदीपिकानाम् ॥ १०० ॥
 अधर्म एको नगरे गरीयानस्मिन् सदा धर्मधुरन्धरेऽपि ।
 पतन्ति यदक्षमृगोक्षणानां कटाक्षकुन्तैर्निहता युवानः ॥ १०१ ॥
 यत्रेभ्यगेहेषु चलापि लक्ष्मीः श्रेयोमहाशृङ्खलजालबद्धा ।
 गन्तुं न शक्ता सितमर्कटीवालिनदेध्वटन्ती प्रकृतिं पिपत्ति ॥ १०२ ॥

॥ इति स्त्रीपुंसवर्णनम् ॥

प्रथीयसी यत्र महाद्वीथी निशीथिनीमप्यतिथीभवन्ती ।
 तमोमयी दीपकपङ्क्तिदीप्रज्योतिर्मिषात्^२ कान्तिमयी करोति ॥ १०३ ॥
 यत्रापणाली^३ विधवां निशां यद् व्यभूषयद् दीप्रमणिप्रभाभिः ।
 परोपकारप्रवणाङ्गिसङ्गादहो सुसंसर्गगुणो गरीयान् ॥ १०४ ॥

अथ वा - यत्रापणश्रेणिषु दीपतेजः शशाङ्गकान्ताऽतितमामुपास्ते ।

चिरन्तनं तज्जडकान्तसङ्गाज्जातं^४ जडत्वं किमपाचिकीर्षु ॥ १०५ ॥

॥ इति चतुष्पथवर्णनम् ॥

यत्रोरुधर्मोत्सवतूर्यनादकोलाहलै रथ्यतुरङ्गमाणाम् ।
 सन्नासविद् गच्छति दक्षिणेन रविः पुरीं यामथवोत्तरेण ॥ १०६ ॥
 तत्रेदृशि श्रीमति सर्वशत्रुवित्रासिभूमीश्वरशासितायाम् ।
 विष्वङ् नभोमण्डलचुम्बिलुम्बिलताम्रवत्यां पुरि ताम्रवत्याम् ॥ १०७ ॥

इति महोपाध्यायश्रीकीर्त्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय-श्रीविनयविजयगणिना भट्टारक-
 श्रीविजयाणन्दसूरीश्वराख्यश्रीपरमगुरुणां प्राभृतीकृते आनन्दलेखनाम्नि लेखप्रबन्धे
 'श्रीमति तत्रे'त्यवयवव्यावर्णनरूपोऽलङ्कारचमत्कारनामा द्वितीयोऽधिकारः ।

१ प्र० 'मञ्जुलपर्णपूर्णा' । २ प्र० 'वरन्ति' । ३ प्र० 'पुण्यपरायणेऽपि' । ४ प्र० 'दलिताः' । ५ प्र० 'दीपकदीप्रपङ्क्ति-
 योतिर्मयी' । ६ प्र० 'दीपमणि' । ७ प्र० 'सदोप' । ८ प्र० 'सङ्गाजातं' ।

— ॥ उदन्तव्यावर्णननामा तृतीयोऽधिकारः ॥ —

*

॥ अथोदन्तप्रक्रमः ॥

सरोवरं यत्र मरुत्तरङ्गोच्छलत्तरङ्गोत्तरलं समन्तात् ।
 अमुद्रमानेन समुद्रमानं समुद्रमानन्दि जिगीषु नूतम् ॥ १०८ ॥
 महातटाकः कुतुकं दिदृक्षुर्वृत्या पुरान्तः प्रविशन् निषिद्धः ।
 अद्यापि जाने स्थितयोस्तथैव तयोर्विवादस्तदवस्थ एव ॥ १०९ ॥
 तटाक-वृत्योर्भवतीह युद्धं तथ्यं तदेतत् कथमन्यथेत्यम् ।
 वणिक् स नष्टो निकटाट्टवासी युक्ता स्थितिर्नो कलहे ममेति ॥ ११० ॥
 एकः सरस्तीरजलानुषङ्गी नमन्निदं तालतरुः किमाह ।
 मा श्लावयास्मांस्तव सेवकाः स्म सर्वैः सगोत्रैरहमाहितोऽस्मि ॥ १११ ॥

अथ वा - दृष्ट्वा सरोवारिभिराहतस्य मध्यस्थबम्बूलतरोः स्वरूपम् ।
 तीरस्थतत्काष्ठमिषान्ममार त्रातुं सगोत्रानिव ताल एकः ॥ ११२ ॥
 सरोजले सर्पति यत्र दर्पातिरेकतो नापससार वापी ।
 उल्लोलकल्लोलभृतोदरी सा मग्ना बभूवैव कथावशेषा ॥ ११३ ॥
 अथ वा - मध्ये ब्रुवन्ती सरसोऽप्सु वापी करेण भो ! मामवतेति वक्ति ।
 पार्श्वस्थिताकण्ठनिमग्नमूलबम्बूलचूलाचलनच्छलेन ॥ ११४ ॥
 वृतिर्यदीयाभ्रगतुङ्गशृङ्गा शृङ्गारितानेकलताप्रसूनैः ।
 हरिन्मणित्रातविनिर्मितेवाऽन्तरान्तरारैरचनाविचित्रा ॥ ११५ ॥
 शिरस्तिरः कम्पयतीव मानाद् यदा वृतिर्वायुधुतिच्छलेन ।
 वप्रस्य सौन्दर्यमहो मदग्रे सत्या जनोक्तिः कपिशिर्षशालि ॥ ११६ ॥
 यदा वृतौ द्राग् नियतासु कालकलासु पुष्पाणि विकासभाञ्जि ।
 घनाभ्रकालेऽपि दिनावशेषं शंसन्ति यत्नाहितयत्रयुक्त्या ॥ ११७ ॥
 वृत्याऽऽवृतं संस्कृतिचातुरीतं गोरूपयुक्तं दधिशब्दशालि ।
 सूत्राञ्चितं वर्णविभक्तिहारि यक्त् पुरं व्याकरणानुकारि ॥ ११८ ॥
 चतुष्टयी यत्र जिनालयानां हिमालयानामिव मालयानाम् ।
 विभज्य दत्ता निलया जिनेन वादे नु धर्मस्य चतुर्विधस्य ॥ ११९ ॥
 राज्ञो गृहे स्यान्महिषी किलैका गृहे गृहे ता इह सन्ति बह्वयः ।
 जनैः समस्तैरभयैरुपेतं द्विधा ततो राजगृहाधिकं यत् ॥ १२० ॥
 प्रतिग्रमातं पृथुगोरसानां विलोलनोद्भूतनिनादवादैः ।
 निद्राविमोक्षो भवतीश्वराणां तथा गवां भाङ्कृतिगीतनादैः ॥ १२१ ॥
 गृहे गृहे यत्र च कामगव्यो गृहे गृहे यत्र पयःसुधाश्च ।
 हरीश्वराणां गणना न यत्र कथं न नाकादतिरिच्यते तत् ? ॥ १२२ ॥
 उत्तालहिन्तालतमालतालरसालसालावलिशालितान्तम् ।

नितान्तमन्तःकरणं जनानां प्रसाधयत्यध्वनि खेदितानाम् ॥ १२३ ॥
 श्रीहीरसूरीशवचोऽतिरक्ताः सुश्रावका यत्र वसन्ति भक्ताः ।
 दानप्रधानाः श्रुतिसावधानाः सम्यक्त्वरत्नं विशदं दधानाः ॥ १२४ ॥
 यत्रास्तिकानां हृदयालवाले धर्मद्रुमः पुष्पति पुष्पमाली ।
 समृद्धयः सन्नानि तत्फलानि पुष्पाणि नानाभरणानि देहे ॥ १२५ ॥
 किं वर्णयामश्च गुणान् यदीयान् श्रीपूज्यपादैरनुभूतपूर्वान् ।
 वस्तुष्वदृष्टेषु हि वर्णनं स्यात् प्रायश्चमत्कारकरं कवीनाम् ॥ १२६ ॥
 तथापि दिङ्मात्रमुदाहरामः फलं कवित्वस्य मुदा हरामः ।
 ऋते कवित्वादफलं वहेमः प्राज्ञत्वमेतत् तु यदाह हेमः ॥ १२७ ॥

तथा च श्रीहेमसूरिपूज्यपादाः—

‘वक्तृत्वं च कवित्वं च विद्वत्तायाः फलं विदुः । शब्दज्ञानादृते तन्न द्वयमप्युपपद्यते ॥’

॥ इति बारेजापुरवर्णनम् ॥

ततः पुराद् द्वारपुराभिधानाद् द्वारोपमाद् द्रंगपरीसरस्य ।
 सानन्दमुल्लासपयोदवृष्टिप्रोद्भूतरोमाञ्चमनोरमाङ्गः ॥ १२८ ॥
 उत्कण्ठया प्रस्फुटया पटीयान् हर्षाश्रुनीरपुतनेत्रपत्रः ।
 पवित्रगात्रः पृथुभक्तिभिश्च विनम्रमौलिर्विनयोदयेन ॥ १२९ ॥
 ललाटपीठीघटिताल्ललीकस्त्रिधा विशुद्धिक्षमितव्यलीकः ।
 औत्सुक्यतो विस्मृतशेषकृत्यः सदाश्रवः श्रीगुरुनित्यभक्तः ॥ १३० ॥
 अनादृतावाससुदर्शनाख्यासंख्यामिताऽऽवर्तकवन्दनेन ।

प्रणम्य सम्यग् विनयो विनेयो विज्ञप्तिपत्रं वितनोति भक्त्या ॥ १३१ ॥—चतुर्भिः कलापकम् । 20
 यथा कृत्यं चात्र—‘भार्तण्डभूपागमनोत्सवेऽप्रपथं तदग्रेसरवैनतेयः ।

चक्रेतमःपङ्कमपास्ततारापाषाणखण्डं शुचिकुङ्कुमाक्तम् ॥ १३२ ॥
 आच्छाद्य गम्भीरतमोऽम्बरेण निजं प्रसृप्तेषु जगत्सु नेता ।
 अर्कः करैः कर्कशकर्कराभैः प्राबोधयत् स्वस्वनियोगहेतोः ॥ १३३ ॥
 जगत् तमः श्यामलयत्यगौरं रक्तश्च रक्तं कुरुते पतङ्गः ।
 यो यादृशः स्यादपरं स्वसङ्गात् स तादृशं वै न चिरात् करोति ॥ १३४ ॥
 सद्गुणताभङ्गमनीयुषां यः कष्टप्रसङ्गो न चिरं हि तिष्ठेत् ।
 इतीव वक्तुं पुनरारुरोह पूर्वादिसिंहासनमंशुमाली ॥ १३५ ॥

अथ वा—जगन्त्युपद्रव्यं कुतः प्रणष्टं तमः क ताराः शशिनः सहासाः ।

इतीव पूर्वादिशिरोऽधिरुह्य प्रद्योतनः पश्यति कोपताम्रः ॥ १३६ ॥
 ध्वस्ताः समस्ता रिपवस्तमांसि क्षुण्णानि सुरेण किलैककेन ।
 गुणानुरागादिति दिग्मृगाक्ष्यः क्षिपन्ति बालातपकुङ्कुमानि ॥ १३७ ॥
 तत्र प्रतिप्रातरुदीतभानौ भानौ सुराधीशदिगद्रिसानौ ।

१ प्र० ‘त्यध्वचितश्रमाणाम्’ । २ प्र० ‘मुनीशभक्ताः’ । ३ प्र० ‘नित्यभृत्यः’ । ४ प्र० ‘कृत्यं यथाकार्गमनोत्सवेऽत्र’ ।
 ५ प्र० ‘पाषाणखण्डानपि कुङ्कुमाक्तम्’ । ६ ‘प्रसङ्गोऽपि चिरं न’ । ७ ‘दिशोऽदि सानौ’ ।
 वि० म० ले० ११

तैस्तैस्तपोभिर्ध्रुवमात्मदर्शो जातोऽपि लोके जनदर्शनीयः ।
 पृष्ठे मुखे चेत् सदृशोऽभविष्यत् तदा यदास्योपमतामयास्यत् ॥ १५४ ॥
 मुखं सुखं तर्जितवद् यदीयं ततः परिच्छिन्नमृदुस्वभावम् ।
 व्यग्रं समग्रं ग्रसते शशाङ्कं स सिंहिकाया वितनुस्तनूजः ॥ १५५ ॥
 यदा शरत्पार्वणशर्वरीशं विधिर्विधत्ते घुसृणावलितम् ।
 तदा लभेतापि न वा लभेत सद्बन्धवस्तुप्रथनप्रतिष्ठाम् ॥ १५६ ॥
 सूरः स शूरो बहुशो यदेष स्नेहेन सेहे ननु शाणपीडाम् ।
 इन्दुर्जडोऽयं यदि तां सहेत तदा लभेतैव यदास्यदास्यम् ॥ १५७ ॥
 निरूप्य रूपं सूचिचारु यस्य कामं निकामं कतमः स्तवीति ।
 ततः स विश्वोपरि दूनचेताः सर्वं शरैस्ताडयतीति मन्ये ॥ १५८ ॥
 यशःप्रतापप्रसराभिभूतौ यस्य प्रशान्तोऽग्ररुचोऽर्यमेन्दु ।
 एकर्क्षगौ मन्त्रयतः समानापमानदुःखौ ननु मासि मासि ॥ १५९ ॥
 यत्प्रतापविजितोऽनलोऽविशद् युक्तमश्ममणिकाष्ठपङ्क्तिषु ।
 वाडवाग्निचपले किमकार्षां जग्मतुर्जलधिवारिददस्यू ॥ १६० ॥
 श्रेयोनिधानं च युगप्रधानोपमानमानन्दितभव्यलोकम् ।
 न कः स्तुते यं जगदर्चनीयाभिधानमुद्दामगुणासमानम् ॥ १६१ ॥
 चित्रं यदीये हृदये समस्तो माति स्म सिद्धान्तसरिद् विवोढा ।
 अचिन्तनीया ऋषयोऽथवा किं नापीप्यदब्धिं स्वमदादगस्त्यः ॥ १६२ ॥
 यदीयगाम्भीर्यजितः स तोयनिधिर्न्यधात् तीरतरत्तृणौघः ।
 तृणं मुखे युक्तमिलाविलोठी पराजितानामियमेव रीतिः ॥ १६३ ॥
 सुधां नगारिः कमलां मुरारिर्जहुः सुराश्चोत्तमधेनुमुख्यम् ।
 शेषं गभीरत्वमपाहरद् यो मन्येऽम्बुधिस्तलवणावशेषः ॥ १६४ ॥
 भवेद् गभीरत्वमथाम्बुधौ चेत् कथं मुधा गर्जति सारशून्यः ।
 विचारसारं तत एतदेव येनैव जहेऽस्य गभीरभावः ॥ १६५ ॥
 यदीयवाणी विजिताऽभिभूता स्पर्द्धा भवत्या न ममेति वक्तुम् ।
 पातालमुत्तालगतिर्विवेश सुधा हि दिव्यं ननु कर्तुकामा ॥ १६६ ॥
 सुवर्णरूपाऽपि यदीयवाणी लौही कृपाणीव विषादवृक्षम् ।
 समूलमुन्मूलयतीति चित्रं न कर्कशो वा कतमः स्वकृत्ये ॥ १६७ ॥
 दधाति दिव्याय विधोः सुधाऽपि यद्वाक्यभीतायसमुष्णगोलम् ।
 न मन्यसे चेदवलोकयोर्ध्वं नादर्शकार्यं करकङ्कणे स्यात् ॥ १६८ ॥
 यद्गीर्जितोऽपीक्षुरदक्षचेता दधौ शिखां मूर्ध्नि वृथाभिमानात् ।
 यत्रेषु निष्पीड्य ततोऽस्य सारमादीयते क्रुद्धतमेन धात्रा ॥ १६९ ॥
 स्पर्द्धावतीं यद्वचसा सितां तां स्त्रीत्वादवध्यां स विधिर्विधिज्ञः ।
 नित्यं शलाकाग्रविभिन्ननकां पुरे पुरे चारु करोत्यटन्तीम् ॥ १७० ॥
 धियश्चतस्रो हृदये यदीये कीर्तिः श्रुता दिक्षु च तावतीषु ।

5

10

15

20

25

30

35

धर्मं चतुर्थोपदिशञ् जनानामहो 'सुचातुर्यमदो यदीयम् ॥ १७१ ॥
 सिद्धान्ततत्त्वानि ततानि तानि स्थितानि हानिं लवतो लभन्ते ।
 यस्मिन्नतः स्मेरतरा प्रसिद्धिर्युक्तं जगत्यां धुरि कोष्ठबुद्धेः ॥ १७२ ॥
 जातेन येन प्रथिता बभूव श्रीरोहनाम्नी नगरी वरेण्या ।
 वैदूर्यरत्नेन विदूरभूमिर्हीराङ्कुरेणेव^१ च रोहणाद्रिः ॥ १७३ ॥
 श्रीवन्तवंशोऽधिगतप्रशंसः प्रदीपिकादण्डसुहृत् कथं नो ।
 यच्छृङ्गसङ्गी भुवनप्रकाशमङ्गीकरोति प्रतिराट् प्रदीपः ॥ १७४ ॥
 शृङ्गारदे यं तनयं प्रसूय रत्नप्रसूकीर्तिमधाद् वधूषु ।
 यथेह रिक्तास्वपि चारु मुक्ताशुक्तिर्यशः शुक्तिषु मौक्तिकानाम् ॥ १७५ ॥
 प्राग्वाटवंशे हि पुटानि सप्त स्थाने यदीदृग् नररत्नपात्रम् ।
 यक्षेन्द्रियेष्वक्षिण पिधानगुप्तिः सर्वो हि रत्नस्य करोति यत्नम् ॥ १७६ ॥
 औन्नत्यैर्यादिसमप्रसारमादाय मेरुर्विजितः स येन ।
 शृङ्गप्ररूढाङ्कुरभारदम्भात् तृणानि मूर्ध्ना वहते दरिद्रः ॥ १७७ ॥
 ऋग्यसोपदेशस्य रसान्निपीय माध्वीकमाधुर्यमदस्य जैत्रान् ।
 जनाः स्वकर्णाञ्जलिभिः स तृष्णां छिन्दन्ति संसारतपर्तुपूर्तिम् ॥ १७८ ॥
 सरोऽपि दूरोज्झितपापतापः सोमोऽपि नो स्वीकृतदोष एव^३ ।
 समङ्गलोऽप्यङ्ग गतौ न वक्रो बुधोऽपि सौम्योऽपि न मित्रदस्युः^४ ॥ १७९ ॥
 गुरुः सुराणामपि नास्तिको नो न केकराक्षः कविरप्यनस्तः ।
 शनैश्चरो नाप्यसितो न मन्दो यश्चातमाः सधृतिर्सैहिकेयः ॥ १८० ॥
 केतुं न के तुङ्गगुणं वदन्ति प्रमोदहेतूदयमप्यमन्दम् ।
 एवं विरोधोपचितोऽपि नित्यं यश्चाविरोधी विदितो द्विधाऽपि ॥ १८१ ॥
 यदतिशायिगुणान्निजबिन्दुभिर्गणयितुं भुवमेति नवाम्बुदः ।
 शरदि याति पुनर्गतसङ्गरस्त्रिजगतीहसितो भसितोज्ज्वलः ॥ १८२ ॥
 लसति यस्य रजोहरणं करे रजनिजानिकरोत्करसुन्दरम् ।
 दयितया दयया प्रणयार्पितं विततकेलिसरोजमिवोज्ज्वलम् ॥ १८३ ॥
 सकलजीवकृपालय ! पालय बहुलपक्षभयादभयाद्य माम् ।
 मुखपटीमिषतः शशिनः कला इति वदन्ति नु यं श्रुतिसङ्गताः ॥ १८४ ॥

अथ शेषचित्रप्रक्रमः -

नाकपाडकुटकाकरतीरे सामला कडकडा जडपाडी ।
 लोकपाटति सुखाटनसूतिर्यस्य कीर्त्तिरिह हंसवलक्षा ॥ १८५ ॥ (— भाषाचित्रम्)
 सुष्ठुभालतुहिनद्युतिभित्तं यस्य लुण्ठति विचक्षणचित्तम् ।
 यस्य कीर्त्तिसुरशैवलिनी च मां पवित्रयितुमुक्तमिहान्यत् ॥ १८६ ॥ (— गुप्तक्रियाकम्)
 यस्य नामपरमोत्तममन्त्रादश्रुते गुरु सुखं जनराजी ।
 यस्य लोचनचमत्कृतिनुन्ना सप्रयासवनवासमुपास्ते ॥ १८७ ॥ (— गुप्तकर्तृकम्)

१ प्र० 'चातुर्यमाश्रयमदो' । २ 'रेणापि च' । ३ प्रत्यन्तरे पद्यमिदमीदृशं लभ्यते - 'यस्योपदेशस्य रसानसाधुमाध्वीक-
 सुसुज्य विवेकिलोकाः । निपीय कर्णाञ्जलिभिः सतृष्णां' । ४ प्र० 'सोमोऽपि नो यः कुमुदं पिपर्त्ति' । ४ 'तातदस्युः' ।

अथ खौद्वत्यपरिहारः-

श्रीहेमचन्द्रादिकवीश्वराणां पुरः स्फुरेद् यः कवितामदो नः ।
 ताक्ष्यस्य पक्षौ समुदीक्ष्य साक्षात् स मक्षिकाणामिव पक्षगर्वः ॥ २३८ ॥
 तैस्तैः सुधीभिर्वहुभिः स्तुतान् वः स्तोतुं गुणान् कोऽहमतीव मुग्धः ।
 अस्पष्टमप्यर्भकवाक्यजालं प्रियं गुरुणामिति तु प्रयत्नः ॥ २३९ ॥
 स्तोतुं प्रवृत्ता भवतः कवीन्द्रास्ततोऽहमप्यत्र विधौ समुत्कः ।
 निरीक्ष्य पोतांस्तरतः पयोधौ तत्रोत्सुकं नो किमु शुष्कपर्णम् ? ॥ २४० ॥
 भवद्गुणौघाम्बुनिधौ निमग्नाः कवीश्वराश्चित्रमहं तु तीर्णः ।
 सम्बन्धगन्धादिति युक्तमेव यथाम्बुधेर्वारिणि काष्ठखण्डः ॥ २४१ ॥
 मुनीन्द्र ! यत्नो रचितो मयाऽयं प्रमोदपूर्णान् गुणिनो निरीक्ष्य ।
 बालैः स्वबुद्ध्या रचितासु रेणुमयीषु लीलालयचातुरीषु ॥ २४२ ॥
 अज्ञानभावेन यदत्र चर्य 'आनन्दलेखे' लिखितं मया यत् ।
 शोध्यं च बोध्यं च तदात्मबुद्ध्या बुधा ! मयाऽयं रचितोऽञ्जलिर्वः ॥ २४३ ॥
 पर्याप्तमम्यर्थनयाऽथवाऽऽर्या यदा किल प्रोज्ज्वलनस्वभावाः ।
 अम्यर्थितौ केन च पुष्पदन्तौ तौ शारदौ चोक्षयितुं सरांसि ? ॥ २४४ ॥
 गुरुः प्रसन्नो यदि सौम्यदृष्टिः क्रूरग्रहैर्वक्तमैः किमन्यैः । जङ्घन्यतेऽसौ किल दोषलक्षं ज्योतिर्विदामप्ययमेव पन्थाः ॥ ४५ ॥
 ततः प्रसन्नैर्गुरुभिर्विधाय शिशौ कृपालेशमनीदृशेऽपि । स्मर्यः कदाचित् समये जनोऽयं विशेषतः श्रीजिनदर्शनादौ ॥ ४६ ॥
 मनो मदीयं तु यथा सरोजे सौरभ्यमौन्नत्यमिवाऽमराद्रौ । दुग्धे जलं शैत्यमिवाप्सु बह्वाबुष्णत्वमिन्दाविव कौमुदी च ॥ ४७ ॥
 माधुर्यमिक्षाविव वः क्रमाब्जे तथा गतं तन्मयतां ततः किम् ।
 लिखामि यच्छ्रीगुरुनामधेयग्राहं नमाम्यार्हतपादपद्मान् ॥ २४८ ॥ - युग्मम् ।
 संवत्सरे वाद्धिनिधानचन्द्रकलामिते (१६९४) बाहुलमासि दिव्ये ।
 मनोरथो मे फलिनस्तु धन्यत्रयोदशीसञ्ज्ञतिथौ बभूव ॥ २४९ ॥
 यावद् धरित्रीफलके सुमेरुः शङ्कुर्निखातो दिनमानकारी । प्रतिष्ठितस्तावदयं प्रबन्धो जीयात् प्रबुद्धश्रवणाध्वनीनः ॥ ५० ॥
 कल्याणमारोग्यमभीष्टसिद्धिः समृद्धिलब्धिश्च गुणप्रसिद्धिः ।
 महोन्नतिः कीर्तिततिः प्रतीतिः सङ्घेऽनघे स्ताद् विततेति भद्रम् ॥ २५१ ॥

*
 पूज्यार्हद्वक्तभट्टारकततिरुणीचन्द्रकान् भव्यलेखा-

राध्यश्रीश्रीशुश्रीनतपद 'विजयानन्द' सूरिशपूज्यान् ।

ध्येयप्राधान्यधन्यांस्तपगणनृपतीन् व्यक्तविज्ञप्तिपत्रं

नामस्मृत्येकतानः शिशुरिति नगरे स्तम्भतीर्थेऽडुढौकत् ॥ २५२ ॥

*

इति महोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय - श्रीविनयविजयगणिना भट्टारकश्रीविजया-
 नन्दसूरिश्वराख्यश्रीपरमगुरुणां प्राभृतीकृते आनन्दलेखप्रबन्धे लेखप्रशंसा-सुजनदुर्जनस्वरूप-
 व्यावर्णनरूपो दृष्टान्तन्यासचमत्कारनामा पञ्चमोऽधिकारः सम्पूर्णः ॥ छ ॥

— ॥ सम्पूर्णश्चायमानन्दलेखप्रबन्धः ॥ —

*

महोपाध्यायश्रीविनयविजयगणिप्रणीतं [२] इन्दुदूताभिधानं विज्ञप्तिपत्रम् ।

स्वस्ति श्रीणां भवनमवनीकान्तपङ्क्तिप्रणम्यं,
प्रौढप्रीत्या परमपुरुषं पार्श्वनाथं प्रणम्य ।
श्रीपूज्यानां गुरुगुणवतामिन्दुदूतं प्रभूतो-
दन्तं लेखं लिखति विनयो लेखलेखानतानाम् ॥ १ ॥

[लेखप्रेषकमहोपाध्यायस्य वर्षावासस्थानभूतस्य योधपुरनगरस्य वर्णना -]

यत्र व्योमव्यतिगशिखरेष्वर्हतां मन्दिरेषु, मूर्तीजैनीर्नयनसुभगाश्चन्द्रशालानिविष्टाः ।
दर्शं दर्शं विनयविनतोऽधोविमानावतारकेशं नासादयति निकरो हृद्यविद्याधराणाम् ॥ २ ॥
यत्रोत्सर्पच्छिन्नकिरणैः शोभयन्नभ्रदेशं, साक्षालक्ष्मीवसतिरनिशं राजते राजलोकः ।
मेर्वारूढत्रिदशनगरस्पर्धयेवाधिरूढं, शैलाग्रण्यं कनकनिकषस्त्रिगुणं पञ्चकूटम् ॥ ३ ॥
यत्रेभ्यानां भवनततयः काश्चिद्रेस्तटाग्रं, प्राप्ताः काश्चित् पुनरनुपदं सन्ति तासामधस्तात् ।
काश्चिद् भूमावपि भृशवलत्केतवः कान्तिदृष्टा, निर्जेतुं धामिव रुचिमदात् प्रस्थिता निर्व्यवस्थम् ॥ ४ ॥
यत्र क्रीडोपवनपदवीक्रीडतां नागराणां, विष्वक्तूर्यत्रिकपरिचयप्रीतिमाविष्करोति ।
नृत्यत्केकिप्रकरसुभगा मञ्जुगुञ्जद्विरेफा, वातोद्धूतद्रुमदलततिध्वानवादित्रहृद्या ॥ ५ ॥
श्यामं यस्मिन्नुपलरचितं दन्तिनं मत्तरूपं, पुंरूपाभ्यामुपरि कलितं वीक्ष्य शङ्केऽद्रिशृङ्गे ।
उत्तीर्यैतत् पुरमनुपमं स्वर्गलोकादिहेन्द्रोऽद्राक्षील्लोकैरिति विरचितं चिह्नमेतच्चकास्ति ॥ ६ ॥
स्थासुः शुण्डायुध इव मदात् कुण्डलीकृत्य दन्तौ, कृत्वोत्तानावुपलरचितो यत्र हस्त्यद्रिशृङ्गे ।
स्वर्गं जेतुं नभसि रभसादारुरुक्षोरमुष्य, द्रङ्गसेव स्फुटयति महाधीरनासीरभावम् ॥ ७ ॥
तस्मिन् योधाभिधपुरवरे श्रीमदाचार्यपादादेशान् मासांश्चतुर उषितो यो विनीतो विनेयः ।
साधुः सैष प्रहरविगमे भाद्राकारजन्त्यां, प्राचीशैलोपरि परिगतं शीतरश्मिं ददर्श ॥ ८ ॥

[इन्दोर्लेखवाहकदूतत्वेन प्रकल्पनम् -]

दृष्ट्वा चैनं स परमगुरुध्यानसंधानलीनस्वान्तः कान्तं तमिति रजनेः स्वागतं व्याजहार ।
सद्यः साक्षाद् गुरुरपदयुगं नन्तुमुत्कण्ठितोऽपि, द्रागेतेन स्थितिपरवशो वन्दनां प्रापयिष्यन् ॥ ९ ॥
दिष्ट्वा दृष्टः सुहृदुडुपतेऽस्माभिरघातिथिस्त्वं, पीयूषौघैर्भृशमुपचरन् प्राणिनामीक्षणानि ।
पुण्यैः प्राच्यैः फलितमतुलैरस्मदीयरूपेयान्नापुण्यानां नयनविषयं यत्प्रियः स्मर्यमाणः ॥ १० ॥
देहे गेहे कुशलमतुलं वर्तते कच्चिदिन्दो !, नीरोगाङ्गी सुभग ! गृहिणी रोहिणी तेऽस्त्यभीष्टा ।
अन्याः सर्वा अपि सकुशला दक्षजाः सन्ति पत्न्यः, पञ्चार्चिः शं कलयति हृदानन्दनो नन्दनस्ते ॥ ११ ॥
यद्वाऽयं ते स्फुटमनुचितो वार्तवार्तानुयोगस्त्वय्यायत्तां जगति सकले जानतो मे सुखाप्तिम् ।
मन्तव्योऽयं तदपि सरसः स्नेहसाराश्रितत्वात्, स्वादीयः स्यात् कदशनमपि स्नेहधारोपसिक्तम् ॥ १२ ॥
काहो शीतोपगतमतनु प्राक्तनार्धं विदेहक्षेत्रे कायं चरमभरतक्षेत्रयाम्यार्धभागः ।
मार्गोऽतीतः कथमयमियान् कोमलैः खच्छपादैः, प्रौढप्रौढैः शिखरिशिखरैर्दन्तुरीभूतदेशः ॥ १३ ॥

श्रीमेघविजयोपाध्यायविरचितो [३] मेघदूतसमस्यापूर्तिमयविज्ञप्तिलेखः ।

[सन्देशप्रेषककवेर्वासंस्थानादिनिर्देशः -]

स्वस्तिश्रीमद्भुवनदिनकृद्धीरतीर्थामिनेतुः, प्राप्यादेशं तपगणपतेर्मेघनामा विनेयः ।
ज्येष्ठस्थित्यां पुरमनुसरन् नव्यरङ्गं ससर्ज, स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥
तस्यां पुर्यां मुनिगणगुरोर्विप्रयोगी स योगी, नीत्वा मासान् कतिचिदचिराद् वाचिकं नेतुकामः ।
भाद्रे पञ्चम्युदयदिवसे मेघमाश्लिष्टसौधं, वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥
मत्वा तस्याभ्युदयनदशां वायुनोन्नीयमानां, चेतो वाचं झटिति गमनापेक्षमूचेऽस्य साधोः ।
प्रत्यासन्नेऽप्ययि ! तव गुरौ कार्यकार्यस्ति योगः, कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥
तद्विज्ञप्त्यै त्वरय रयतः स्वं पुनानाऽऽशु नानाभावैरेवं किमिव मनसोदीर्णवाक्यः स बालः ।
हस्ताम्भोजद्वयरचनया निर्मिताचार्य तस्मै, प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥
कायं प्रायः पवनसलिलज्योतिषां संनिकायः, कार्यश्चायं प्रवणकरणैर्यो विधेयः समर्थः ।
हर्षोत्कर्षादिति स सहसाऽचिन्तयन्नृचिवाँस्तं, कामार्त्ता हि प्रकृतिरूपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥
जज्ञे भूमावतिविषमताऽन्योन्यसाम्राज्यदौःस्थ्यात्, कश्चिन्मां नो नयति यतिनामीशितुर्वार्त्तवार्त्ताम् ।
तत् त्वां याचे स्ववशमवशासृष्टविश्वोपकारं, याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥
प्रातस्त्रातस्त्वमसि भुवने जीवनं जीवनन्दी, तापव्यापापहृतिनिपुणस्तत्पयोवाह ! रम्या ।
गम्या चारै रुचिरनगरी देवकात्पत्तनाख्या, बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥
नित्यं चेतः स्फुरति चरणाम्भोजयोः सूरिरार्जः, कायः सर्वैः समयविषयैः संनिबद्धान्तरायः ।
नो^१ चेदीदृग्गुरुसुरतसं प्राप्य कः स्याद्वीर्यान्, न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥
श्रेयस्यर्थे प्रभवति बलादन्तरायस्तदस्य, प्रध्वंसायाभ्युचितमचिरादाचिरं भजस्व ।
लामोऽप्यत्र त्रिदशललनानेत्रसंवीक्षणैस्त्वां, सेविष्यन्ते नयनसुभगं खेभैवन्तं बैलाकाः ॥ ९ ॥

[अथ प्राप्तानुषंगं श्रीशान्तिजिनवर्णनम् -]

देवः शान्तिर्भवति भविनां दुर्भवाम्भोधिसेतुर्हेतुर्भूयोऽनुभवभव...भोगसंयोगलक्ष्म्या ।
दुष्टैः कष्टैर्व्ययभयमयैः संनियोगेऽङ्गभाजः, सबःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥
अस्याह्वानस्मरणकरणोद्भूतभूयःप्रभावाः, श्रद्धाभाजो विततमुरजस्येव गर्ज निशम्य ।
नृत्यारम्भे जिनपतिपुरः सञ्जिगीषोः स्वरुच्या, संपत्त्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥
अर्हत्यस्मिन् सृजति भुवनोद्भासनं दीपरूपे, चेतोवृत्तीर्बहलतमसश्छेदनाय प्रपद्य ।
स्यात् तत्राभिप्रणतमनुजस्वर्गिर्वर्गस्य चित्रं, स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥
हर्षाद् वर्षाविहितहितकृत्स्नात्रकृत्यः प्रसूनैर्वीतानीतैः प्रणयतु विमोश्चारुचर्या सपर्याम् ।
कुर्वन्नुर्वी स्वतनुमतनुं तीर्थभावाश्रितानां, क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः श्रोतसां चोपमुज्य ॥ १३ ॥

१ कुशलवार्त्ताम् । २ सूरिराजस्येत्यर्थः । ३ नो चेत् अर्थात् कायस्य विषयकृतविज्ञानान्यत्वे । ४ अतिदूरवर्ती पलं कालभागविशेष उपलक्षणात् कालः । ५ खेम आकाशगज ऐरावतस्तद्वान् । ६ वराणि अङ्गानि भूषणानि यासां ताः । ७ अत्रैको गुरुवर्णस्तदितः ।

वक्रार्थं ते समधित विधिः शारदेन्दोर्विभूषां, सारङ्गाक्षोर्नयनविधये तद्वयोर्योग आसीत् ।
 व्योमारण्ये तुहिनकपटादिन्दुकान्ताऽरुदत्तन् मुक्तास्थूलास्तरुकिंसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ११९ ॥
 दासीभूतं प्रभुनवयशो ज्योतिषां पुण्डरीक-खण्डं मन्ये सरसि हसितं निर्मिमीते समीरान् ।
 आमोदाढ्यान् वरुणककुभः पूर्वभागेऽभ्युपेतान्, पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्त्वेति ॥ १२० ॥
 जाने दिग्भिः पवनचमरैर्वीज्यसे त्वं तदेताश्चन्द्रो ज्योत्स्नामलयजरसैरर्चयन् पश्चिमायाम् ।
 नत्वेवैवं वदति भगवद्वन्दने वृत्तिभाजो, नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ १२१ ॥
 पृथ्वीपाथःपवनतरवश्चन्द्रसूर्यादिदेवास्त्वां सेवन्ते बहुरचनया दूरतोऽपि प्रशस्ताः ।
 मत्सत्त्वं वा गगनशकलं दूयते केवलं यद्, गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥ १२२ ॥
 चेतोवाक्ये मम निगदतोऽन्योन्यमाश्वासनाय, ध्यानाधीनैः स्तवनकथनैर्नीयतां दिष्टमेवम् ।
 पश्चात् साक्षात् सुभग ! भगवत्सङ्गमे सर्ववृत्तं, निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ १२३ ॥
 धन्यमन्यस्तदुपसि विभो ! स्यामहं विश्वविश्वे, यस्यां रात्रौ लयनिलयगः संलये त्वां निषेवे ।
 तां निद्रामप्यतिशयमुदा संस्तुवे ध्यानमुद्रां, दृष्टः स्वप्नेऽकितव ! रमयन् कामपि त्वं मयेति ॥ १२४ ॥
 बालस्याऽनुक्षणकृतनतमे स्खविज्ञप्तिरेषा, भाव्या स्वामिन् ! हृदयविषये संनिधेयो विधेयः ।
 अर्याश्चर्यानुगतमनसो वर्त्तमाने यदर्थाद् इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ १२५ ॥
 विज्ञप्यैवं प्रवचननृपं श्रीविनीतामिधानोपाध्यायेन्द्रैर्विपुलमतिभिः सेवितं तन्निवृत्तः ।
 तत्प्रत्युक्तानुनर्मानमुखोदन्तवृन्दैर्ममापि, प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ १२६ ॥
 एवं देव ! त्वयि विनिहितं कार्यमार्यं विचार्य, व्यक्तां शक्तिं सहृदयसुहृत् ! तावकीमत्र चार्थं ।
 अङ्गीकारं द्रढयति तवाध्वानधाराप्रसारः, प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीक्षितार्थक्रियैव ॥ १२७ ॥
 पूर्वं मोदात् तपनृपतिना मे स्वसेवाकुमारी, सौभाग्याढ्या प्रणयसरसोद्वाहिता तद्वियुक्तेः ।
 तापं हत्वा विचर जलदाभीष्टदेशान् यथेच्छं, मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥ १२८ ॥
 स्थित्वास्थायां मुनिपतिपुरोऽसौ निमृष्टार्थरूपी, दिव्यध्वानैर्जलधरवरो वाचिकं व्याचचक्षे ।
 जातस्तस्मान्मुनिनरपतिः सप्रसादो विनेये, केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥ १२९ ॥
 प्रत्यागत्य प्रणयिहृदयाम्भोधरेणादरेणादिष्टां वार्त्तां गुरुगुरुतरानुग्रहव्यञ्जिनीं सः ।
 श्रुत्वा ज्ञानाचरणचरणोद्भूतभाग्यप्रतिष्ठान्, भोगानिष्ठानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥ १३० ॥

माघकाव्यं देवगुरोर्मेघदूतं प्रभप्रभोः ।

समस्यार्थं समस्यार्थं निर्ममे मेघपण्डितः ॥ १३१ ॥

॥ इति श्रीमेघदूतसमस्यालेखः संपूर्णः ॥

खरतरगच्छाचार्यश्रीजिनसुखसूरिं प्रति पं० विजयवर्द्धनगणिप्रेषितं

[४] विज्ञप्तिपत्रम् ।

॥ श्रीजिनवाण्यै नमः ॥

*

[जादौ अर्हतादीनां नमस्काराः -]

† स्वस्ति श्रियालंकृत ईश्वरोऽग्र्यः, सर्वज्ञ आनन्दमयः स्वयंभूः ।
श्रीमारुदेवो नतदेवदेव, ईहासये स्यादनिशं जनानाम् ॥ १ ॥
श्येनाजिघांसोः प्रपलायमानं, पारापतं चाऽऽपततः पतंगम् ।
रक्ष्यं ररक्ष क्षमिता कृपात्मा, यः शान्तिरस्तु त्वरया स शान्त्यै ॥ २ ॥
यातृहासपरिहासभाषितैरस्मरः स्म परिणेतुमिच्छति ।
उग्रसेननृपपुत्रिकां सको, नेमिराशु कुरुतात् स नः श्रियम् ॥ ३ ॥
काष्ठे प्रदग्धे स्थितनागयुग्मं, यस्य प्रसत्तेर्हि सुरः सुरी च ।
ऐन्द्रं पदं प्राप्य सपद्यभूतां, पार्श्वः प्रभुर्वः स सुखं प्रदेयात् ॥ ४ ॥
यो जातमात्रोऽपि कनिष्ठयाह्वेर्धत्वा सुराद्रिं व्यपनीतवांश्च ।
इन्द्रस्य सिन्ध्यापयिषोः सुशंकां, श्रीवीरधीरो भवताच्छिवाय ॥ ५ ॥
पञ्चतीर्थी सुप्रपञ्चा तीर्थभूतेव भाति या । संसारतरणे सारा सा भृशं दिशतु श्रियम् ॥ ६ ॥
समास्थितानां विचिकित्सतां नृणां, जिनस्य पृच्छां स्वमुखादकुर्वताम् ।
प्राबुबुधत् संशयमत्युदस्य, तान् गौतमः सोऽस्तु सनातिलब्धयै ॥ ७ ॥
श्रीवीरपट्टस्थितिजातधर्म्मा, सर्वज्ञसेवाभृशपुण्यकर्मा ।
कर्माष्टघातासविशुद्धशर्म्मा, श्रेयस्ततिं वः कुरुतात् सुधर्म्मा ॥ ८ ॥
मोक्ता हेम्नो नन्दनन्दप्रमाणकोटीनां यः श्रेष्ठिकोटीर इभ्यः ।
ज्ञानादीनां योऽवधिः श्रेयसां च, जंबूनामा स प्रदत्तां स्वसत्ताम् ॥ ९ ॥
प्राग्दुष्कर्मवशात् तुरुष्कतनयं चारुष्करं संस्थितम्, ज्ञात्वा स्वीयमहे जनाकुलतते वादित्रनादाचिते ।
यः सन्मान्यजिजीवदाशु परया दुर्भेद्यया विद्यया, सोऽनेकान् विरुदान् दधत् स्मरणतो धत्तां नृणां संपदम् ॥ १० ॥
अरिहरिकरिमुख्यान् विद्युदुल्काशिपातान्, अमरपुरुषजन्यान् विद्वरौघान् निवार्य ।
कुशलमिह करोति प्रेयसां भूस्पृशां च, स जिनकुशलसूरिः सूरिमुख्योऽस्तु सिद्धयै ॥ ११ ॥
पञ्चाप्येते साधवो मेरवो वा, स्वर्णाभासा वर्णतः स्थास्रवश्च ।
सेव्या भव्यैर्निर्झरैः पूरुषैश्च, जाग्रत्कीर्त्या स्फूर्तिमन्तो जयन्ति ॥ १२ ॥

† स्वस्तिश्रियालंकृतमीशमग्र्यं सर्वज्ञमानन्दमयं जिनेशम् ।

श्रीमारुदेवं नतदेवदेवं भीहासये प्राप्तसुखं च नौमि ॥' इति पाठान्तरम् ।

1 चातुष्पथं = चौक । 2 'श्रीजैनादिमदत्तसूरिरनयो धत्तां नृणां संपदम् ।' इति पाठान्तरम् ।

दिक्संख्यांस्तान् वैभवाद् दिक्पतींश्च, कर्मभानां सूदने सिंहसिंहान् ।
हित्वा हित्वा वैमतं मानसे च, लेखं चेमं वार्षिकं प्रोल्लिखामि ॥ १३ ॥

[अथ देशवर्णनम् -]

आधारोऽग्न्यो ग्राहजीवादिकानां, नानारत्नोद्द्योतिरत्नाकरोऽस्ति ।
भाण्डाखण्डाडम्बरैर्मण्डितोऽब्धिर्यस्मिन् देशे चासुदेशे सुवेशे ॥ १४ ॥
चलत्तरङ्गायतवल्गुपाणिभिर्दिशन् महीजाय च यत्र वारिधिः ।
वरेण्यपण्यैर्भृतपोतपेटकं, विभाति मन्ये करदो निरन्तरम् ॥ १५ ॥
जगत्सुखास्था बहुसस्यसंपदः, अकालसंपक्वित्रमदत्रिमर्द्वयः ।
अकृष्टपच्याः खलु यत्र नीवृति, सदैव रोहन्तितरां रुहा इव ॥ १६ ॥
विमलविमलभूध्रः पापतापापहारी, गिरिरिह गिरिनारः सिद्धिसौख्यौघकारी ।
अजितभगवदासेर्वित्तारंगकं च, जनपद इह यस्मिन् पावनी च त्रयीयम् ॥ १७ ॥
पुरं सेन्दिरं बिन्दरं सूरताख्यं, श्रियाः स्तंभतीर्थं तथा स्तंभतीर्थम् ।
लसत् संमदाऽहम्मदावादसंज्ञं, पुरस्य त्रयीव त्रयी यत्र वित्ता ॥ १८ ॥

[अथ यत्र पूज्याः स्थितास्तत्पुरवर्णनम् -]

पुरोपि त्रये नायको नायको यः, शुभं यत्र बाभाति मुक्ताकलोपे ।
सदास्यानुभावाद् भवेन्नायको ना, समृद्ध्या सुवृद्ध्या च कीर्त्या सुकान्त्या ॥ १९ ॥
प्रासादानां शितिमणिमयाः सद्गवाक्षाश्च यत्र, चन्द्रास्याभी रुचिररुचिभिः सेव्यमाना नरीभिः ।
बोभूयन्ते हिमकरसुखाश्चन्द्रवन्तो दिवापि, तद्गुण्यानां भवति नियतं तद्गुणः संगमाद्धि ॥ २० ॥
सभ्येभ्यानां भृशतरलसच्छर्महर्म्याणि यत्र, चन्द्रज्योतिर्निचयधवलं व्याप्य खं संस्थितानि ।
प्राजिष्णूनि प्रबलविलुलच्चन्द्रशालायुतानि, प्रांशुत्वेन खिदिह विवदन्ते मिथस्तानि तेन ॥ २१ ॥
श्रियः कन्दरा सुन्दरा सुन्दरी च, सुदत्यच्छरूपा पिकालापरूपा ।
स्फुरद्धारतीकाऽकठोरप्रतीका, वरीवृत्त्यते निर्जरीवान्वगारम् ॥ २२ ॥
सकमलं कमलं मलहानिकृत्, सकमला कमलायतलोचना ।
निजगृहे जगृहे शुचितां जनस्त्रयमिदं पुरि यत्र च वर्तते ॥ २३ ॥
अविरलः सरलो विरलः पुनः, कलिकुठः प्रियको वरूणो जनः ।
शुचिरशोक उतास्ति पुरे वने, सुरतरुप्रतिमो जन इष्टदे ॥ २४ ॥
लसदयौवनं यौवनं भाति यत्र, सदानं सदानन्दितस्वान्तवृत्ति ।
क्वणद्दहंसकं हंसकण्ठेष्टशब्दं, रसाभाससाभासनं यस्य नित्यम् ॥ २५ ॥

[अथ तत्र वर्त्तमानानां पूज्यानां वर्णनम् -]

अधिवसति तमुच्चैर्द्रङ्गमुद्यत्सरङ्गमविरलमिलदाभा निर्जितस्वर्गलोकम् ।
गणपतिरिव कुर्वन् गौतमर्षिर्विहारं, स्वपरबहुलशास्त्रोदन्वतः पारदृशा ॥ २६ ॥
जनश्रुतिर्या भवदीप्सिता पुरा, श्रुता श्रुतिः सेवपदं यथा स्थिता ।
तूर्णं त्वयि प्रापुषि हि प्रभूणां, लोकोक्तिरेषा न मृषा कदाचित् ॥ २७ ॥
गुणाः समे सात्त्विकराजसादयो, बभूवुस्त्वोतिलके वरा गुरौ ।
भवन्ति गुण्ये त्वयि ते गुणास्तथा, निदानयोग्यं भुवि कार्यमस्ति हि ॥ २८ ॥

क्वचिच्चापणे पण्यते पुण्यपण्यं, क्वचिच्चास्तिकैः पण्यते साधु पुण्यम् ।
 क्वचित् पूज्यतेऽर्हन् सभावं स्वशक्त्या, क्वचिद् भण्यते जैनमार्गः सदुक्त्या ॥ ४६ ॥
 क्वचिद् वैष्णवैः सेव्यते विश्वनाथः, क्वचिद् गीयते सज्जनैर्गीतगाथः ।
 क्वचिच्चालयो मन्यते चारुमार्गः, क्वचित् संकटो मानवै राजमार्गः ॥ ४७ ॥
 क्वचिद् वाजिमिस्ताड्यते विट्सु लता, क्वचिदन्तिनो बंभ्रमन्त्युच्चमत्ताः ।
 क्वचित् सादिभिर्विध्यते धत्तधत्ता, क्वचिद्धस्तिकेष्वंकुशालिश्च दत्ता ॥ ४८ ॥
 हरेः पादसाहेः सवासे प्रवासे, समं वाहिनीभिः ककुब्वाहिनीभिः ।
 नरैः श्रीवरैः शश्वदप्राप्तमध्यः, समुद्रः समुद्रो यथा यः समास्ते ॥ ४९ ॥

[विज्ञप्तिपत्रप्रेषकगणिकृतं स्वकीयशिष्यादिनामनिदर्शनम् -]

" तस्माद् द्रंगाद् वाचकविजयादिमवर्द्धनो गणिर्धुमणिः । युष्मद्भक्त्यासक्तः शुभधिषणाधोरणीचुञ्चुः ॥ ५० ॥
 विज्ञ-ज्ञानात्तिलको विनेयलाभादिसुन्दरगणिश्च । महिमासुन्दरगणिको रंगान्मूर्तिश्चतुर्थश्च ॥ ५१ ॥
 ज्ञानादिमविजयश्च ह्येतत्संख्याकपरिकरान्वितः । सद्यो वेदयति वचो मार्तण्डप्रमितवन्दनैः ॥ ५२ ॥

[पत्रप्रेषकगणैर्वास्तथानवर्णनम् -]

अर्हद्भक्तिव्यक्तवामाकटाक्षक्षीरक्षेपात् क्षेमवृक्षः समक्षम् ।
 वर्वर्द्धिव स्रद्धयाऽत्रादिमांश्च, वर्वर्द्ध्वं तत्र सत्रा समृद्ध्या ॥ ५३ ॥
 शिष्टानां सच्छिष्टद्युपष्टम्भतोऽहं, दुर्गे मार्गे गच्छदागाः समागाम् ।
 सांगानेरान्नश्यतः पश्यतां च, नृणां भीतिं यावन्तीं चापनीय ॥ ५४ ॥
 अत्रागतः कतिधसंधचयं समृद्ध, शालास्थितांश्च पुर एव जनानपास्य ।
 पौषाद्यपंचमदिने सुदिने परुत्के, वर्षेऽध्यवात्समतिहर्षभरं च शालाम् ॥ ५५ ॥
 श्रद्धालवोऽत्र नगरे बहुशो वसन्ति, श्रद्धा लवा विषमकालजसंनियोगात् ।
 आध्यात्मिकाः कतिपया हरिगाश्च केचित्, केचिच्च दुंदुभतगाः शठमूढचित्ताः ॥ ५६ ॥
 भङ्गातरङ्गविकलाः कतिधा रतीहा, एतादृशा अपि मया सह वासयोगात् ।
 ईषच्छुभाशयवशाः कथमप्यभूवन्, यत्नोच्छ्रितं दकमपि ह्यध एव याति ॥ ५७ ॥
 एकाब्द ईदृशदिशा प्रसमाप्यते स्म, निर्देशतोऽत्र वसतो मम गृह्यकस्य ।
 आज्ञास्थितः समयवित् प्रथितप्रतिज्ञ, आसेतरामहमिहैव च ऐषमेऽन्दे ॥ ५८ ॥
 व्याख्यात्युपासकदशाः पुर आस्तिकानां, पर्वीगतेषु तिथिषु प्रग आगतानाम् ।
 शिष्यांश्च शिक्षयति पाठयति क्रियासु, व्यापारयत्यपि धुरं गलिधार्मिकेषु ॥ ५९ ॥
 वरेषु कृत्येषु च हेतुकर्तृतां, तथाऽपरेष्वर्थधरेषु सद्वचः ।
 उपेयति भ्रष्टजनांश्च भूरिशो, निवारयत्युन्नतबुद्धिशुद्धिना ॥ ६० ॥

[समागतपर्वाधिराजपर्युषणावर्णना -]

इयंकारं तिष्ठति प्रीतितत्या, ह्यत्रोद्गच्छत्पूज्यपादप्रसक्तेः ।
 अस्मिन् दिष्टे धर्मपर्वाधिराजो, रागादागाद् भूरिमेघागमश्च ॥ ६१ ॥
 तस्मिन्निते परहिते द्वितयेऽपि नूनमत्युत्सुकाः पुनरसंकुकास्तदिष्टेः ।
 संप्रियुः प्रियतमेक्षणहृष्टचित्ता, भव्याशया भविजनाश्च कृषीवलाश्च ॥ ६२ ॥

तस्मिन् द्रव्येऽभ्युपगतेऽधिकदानशौण्डा, ऊपुस्तरां विपुलवित्तमनेकमेके ।
 अन्ये च धान्यनिचयं सुखसप्तसंख्ये, क्षेत्रे पवित्रविपुलोत्तिशुभे द्विहल्ये ॥ ६३ ॥
 प्रानर्त्तिषुर्निन्युषि हंत तस्मिन्, श्राद्धा मयूरा उरुभाकलापाः ।
 गीतैः स्वनैः श्रोत्रसुखाभिरामैः, धर्मध्वनदुन्दुभिवादनोन्मुखाः ॥ ६४ ॥
 एतद् द्वयं जैनमतं नभश्च, जीवातुरूपं जगतः समस्य ।
 समस्करोद् दानदकस्य धारया, भुवस्तलं वर्षदवर्षवर्जितम् ॥ ६५ ॥
 प्रचण्डहुण्डाद्यवसर्पणी च, करालसर्पिव विसर्पति स्वयम् ।
 तद्वर्त्तनामूर्च्छितपूरुषावली, रसप्रमाणारफणा विराजति ॥ ६६ ॥
 तत्संपर्कादर्कतौरुषकयोगात्, कार्पण्याब्धेरन्यनैपुण्यपण्यात् ।
 दानादीनां छित्तित्रास्ति लोके, तत्राप्यत्राधिक्यतो दानहानिः ॥ ६७ ॥
 जातेऽप्येवं गणरतिरसात् संघसिंहः स्वधाम्नि, ह्यस्मत्पार्श्वान्नियतपतितं पुस्तरत्नं प्रशस्तम् ।
 जाग्राहि स्म प्रवरललना रात्रितो जागरां च, कुर्वन्ति स्मागुरुमलयजोद्भूतधूमं सुरूपम् ॥ ६८ ॥
 उदीते पतङ्गे स्फुरद्दीप्तिचङ्गे, पुरे वाद्यमानेषु वाद्येषु सत्सु ।
 तथा गीयमानेषु गीतेषु गाढं, भृशं चार्थिषु प्रार्थ्यमानेषु वित्तम् ॥ ६९ ॥
 महाडम्बरं चाम्बरापातिशब्दं, सुसंघेन संघेन भासां व्यसर्जि ।
 लसत्पुस्तकं न्यस्तशोभं प्रशस्तं, तथाऽऽनीय चास्मत् करे स्मेरवक्त्रम् ॥ ७० ॥ — युग्मम् ।
 सदानन्दसख्याभिरस्माभिराशु, मुदा वाचनाभिर्ह्यवाचि स्फुटं तत् ।
 जनानां समक्षं स्फुरच्छुद्धकक्षं, सुमेर्वादिसाम्यस्य संघस्य शिष्टेः ॥ ७१ ॥
 क्षरद्धानिनो मानिनो मत्तनागाः, पुरे सत्करा वारणाः संगराणाम् ।
 इतीवात्र हेतोर्निषिद्धार्थदाना, जना आस्तिका व्यस्तचित्ता वसन्ति ॥ ७२ ॥
 आकस्मिकोल्लासजभावभासात्, डागाख्यवंशे रिषभाख्यनामा ।
 साधर्मिकौकःसु सुमोदकौ द्वौ, प्रादात्तमां सारमुपोषितेभ्यः ॥ ७३ ॥
 प्राशीलि शीलं बहुभिः सुशीलैः, प्रातापि शुद्धं तप एव कैश्चित् ।
 अभावि कैश्चित् सुगमा च भावना, धनं विनेदं त्रयमर्थकारि हि ॥ ७४ ॥
 सर्वपर्वसु परार्द्धपर्वणः, सेवनं सुखदवस्तु साधनम् ।
 ज्ञेयमित्थमपि नो व आशु तत्, ज्ञापनीयमखिलं ह्यनाविलम् ॥ ७५ ॥
 उद्गाढमाषाढकमा च भाद्रादस्मिंश्च वर्षे प्रववर्ष मेघः ।
 ऊनं च पूर्णं सममेव तूर्णं, प्रापूरयन् पूरसुतुदिलोपे(?) ॥ ७६ ॥
 वृष्टे च तस्मिन् प्रलयादिवाते, शंझाञ्जरन्निर्झरवारिघोरे ।
 परःसहस्राश्च गृहा अजस्रं, नरस्वराकीर्णमहो अपसन् ॥ ७७ ॥
 द्विभूममुख्येषु गृहेषु तेषु, पतस्त्रिवापत्पतितेषु बाढम् ।
 उच्चेषु नीचाऽपि विशालशाला, ध्वस्ता समस्ता च विहस्तसाधु ॥ ७८ ॥
 धर्मातुभावादिव मन्दभावं, किञ्चिद्गतेऽप्रे त्वनदग्रहर्षम् ।

† इतोऽप्रेतानि पद्यानि प्रथमादर्शे नोपलब्धानि । पश्चादेतानि विरचितानि संभाव्यन्ते । प्रतिलिपिकर्तुर्दृष्टिदोषादज्ञानाद्वा अग्रेतनपद्येषु बहवः पाठदोषा दृश्यन्ते । ते च मूलादर्शाभावात् तादृशा एवात्र मुद्राङ्कणं प्रापिताः सन्ति ।

तस्मिन् स्वधाइयेव पुनर्व्यधाम, पर्वाधिराजं समजत् समाजम् ॥ ७९ ॥
 गलीनिव स्पष्टवलीन् प्रणुद्य, समाऽसमान् श्राद्धजनान् समांश्च ।
 विधाप्यते टिप्पनिका स्म शीघ्रं, मया स्थलार्थं शतरूपकाणाम् ॥ ८० ॥
 मुंजेपीकतूलमिव तनुकुड्यमभूत् पुरा । एतर्हीड्य(?) तदेवोरुपकेष्टकचितं वचः ॥ ८१ ॥
 संप्रधार्य मम श्राद्धैरुत्पलमालभारिभिः । कार्यते ही सदायैषु, फलदा च प्रवर्त्तना ॥ ८२ ॥ - युग्मम् ।
 माधवे माधवे पर्णयुग्मं पुरा हं सदा वः सदावर्जितेभ्यो मुदा ।
 प्रादिपि प्रावृषि प्रोत्सुको मोरको, ज्ञायते तद्भवद्भस्तसान्न स्थितम् ॥ ८३ ॥
 युष्मदीयं छदं छद्मना वर्जितम्, प्राजगामाद्भुतं भूयसा नेहसा ।
 पट्टणोदन्तकज्ञापितं नोन्तिके, तीर्थयात्राप्रभृत्युत्पतत्प्रीतिकम् ॥ ८४ ॥
 तत्पुरं संप्रति प्रक्रमाभावतो, दूरदेशाध्वतः साध्वसोद्भानतः ।
 मानसाभासनाच्चात एतुं वयमर्यमाधिष्ठितामक्षमास्तां दिशम् ॥ ८५ ॥
 अभिपिपेणयिपुर्नृपतित्रयी, यवननाथमभिप्रतिजग्मुषी ।
 तुरगि(ग?)लक्ष्ययुता पृथुनर्मदानिकटरोधसि योद्धुमभीच्छति ॥ ८६ ॥
 अवितथा वितथा अथ काश्चन, ननु जनश्रुतयः श्रुतिसौख्यदाः ।
 नियतिनिम्नगता वत वर्त्तना, जिनपबोधवशा यत आयतौ ॥ ८७ ॥
 उपपुरं सरसोऽत्र बृहद्वनात्, प्रतिदिनं खलु याति च पूरुषान् ।
 प्रतिनियंय्य सुतर्जनसर्जनं, विटजपाटघटा झटिति च्छलात् ॥ ८८ ॥
 प्रजयिराजकतर्जनसंजनाद्, भयमदोऽध्वनि नृंस्तु निषेधति ।
 भ्रमदिवेत इतो वत तद्भयाच्चिचलिषा न च वीकपुरं प्रति ॥ ८९ ॥
 स्वकीयवस्तुच्चयरक्षणाय, पुरस्य चास्यैव निदेशवेशः ।
 कार्यः सुतर्केरितर्कुकाणां, याच्ना ह्यमोघा प्रभुषु प्रथिग्ना ॥ ९० ॥
 युष्मदीयमपि पर्णयुग्मकमागतं परुदखेदमब्दके ।
 लिङ्गिनीं भवदुदन्तलंघिनीं, लेखितं प्रतिवचो मुधैव तत् ॥ ९१ ॥
 नायकस्य वचनं प्रमादिषु, चञ्चलेषु च विलुठ्यते हठात् ।
 तनु वित्तसुमुखान् शिलीमुखान्, भ्रष्टलक्ष्यत इवाश्ववाङ्मुखान् ॥ ९२ ॥
 सर्वस्य द्वे सुमति-कुमती वः सती बुद्धिरेव, वृद्धो यूनाप्युरुगुणधृतासन् गणो भूषितोऽलम् ।
 एको गोत्रे यतिप सदयो गच्छभारं विभर्षि, स्त्रीपुंवच्च प्रसरतिगणे लिङ्गिनी तद्विचित्रम् ॥ ९३ ॥
 या साधूनां वितरणचये ह्यर्गलेवाग्रैव, याऽटाटीति प्रतिकुटमटद् घट्टनाट्य शुनीव ।
 या स्वच्छन्दं बहु च रमते मोहनावेशयोगा, जैनाभासा वसति नगरे पण्यरामेव वामा ॥ ९४ ॥
 पूज्येन्द्राय प्रथितमतये संधसंधाय साक्षात्, गुर्वी वाचा लघुनि वदने याऽब्रवीच्च द्विजिह्वा ।
 काऽप्यस्माकं भवति च कथा यत्र ही वायुनेभा, उड्डीयन्ते भवति गणना तत्र का दंशकेषु ॥ ९५ ॥
 कस्या व्रतिन्या अपि नैव देया, शिष्टिर्हि शिष्टैरिति लिख्यते स्म ।
 संधेन युष्मदवचनस्थितेन पूज्यैर्विधेयं वचनं तदेव ॥ ९६ ॥
 विज्ञेषु विज्ञप्तिरियं मदीया श्रोत्रातिथीभूय करोतु वासम् ।
 आर्या यतः सेवकलक्षणेहा अचित्यकस्त्वैव(?) मदौचितीयं ॥ ९७ ॥

विजयवर्द्धनगणिप्रेषित विज्ञप्तिपत्र

[अथ च पर्जन्यवच्छास्त्रस्य प्रवृत्तिरित्याश्रित्योच्यते -]

ऊनं च पूर्णं सममेव तूर्णं पर्जन्यवदवर्षसि चेत् पदादि ।
तदा च पर्यन्यवदित्युच्छ्रान्यायस्य वेत्ता खलु शब्दशास्त्रे ॥ १८ ॥
सति गुणे गुणतागणना नहि गुणवतः स्फुटहानिरिहेक्ष्यते ।
गुणपरीक्षणमप्यथ नो सतां क्षतिरिति द्वितयस्य वितन्यते ॥ १९ ॥
गणेशा गणेशा इव प्रस्फुरन्तु प्रविघ्नच्छिदो निघ्नयोगादविघ्नम् ।
मनोऽभीष्टदा मन्मनोमोदकानां भवन्तु प्रभावाधिकाः पूरकाश्च ॥ १०० ॥
अलालाटिका धाटिका पण्डितानां निराकारवश्चारवोऽभीरवश्च ।
धियो गर्द्धना धर्मतो वर्द्धनाद्या विभान्तूपकण्ठे सतां पाठका हि ॥ १०१ ॥
भवत्पूर्वजैर्गन्धहस्तित्वमुक्तं तदेव क्रमादागतं पूर्वजेषु ।
सदा भावयन्तोऽधुनाविःसभावं भवत्संनिधिप्राप्तशोभाविशेषात् ॥ १०२ ॥ युग्मम् ॥
पाठकाः सकलशास्त्रपाठकाः शब्दशास्त्रमुरुमध्यजीगपन् ।
ज्ञानतस्तिलकनामकं यकं पाणिनीयमतदर्पणार्पणम् ॥ १०३ ॥
ननमीति सहितो विनेयकैः शेमुषीमुखरितः सको यतिः ।
वैभवेन जितभूरिनायकांस्तान् गुरुन् गरिमभारभासुरान् ॥ १०४ ॥
साधवः सविधवर्त्तिनः परे श्रीजितां सुभगभाग्यशालिनाम् ।
तान् समानतिं...रोजनाङ्गकान् वन्दते शुभहृदा दिने दिने ॥ १०५ ॥
समस्तास्तिकाः श्रीमतां दर्शनोत्का, ददत्पुण्यवाहं भवत्पादजाहम् ।
मनो-वाक्-शरीरप्रशुद्ध्या सुषुद्ध्या धनानन्तम(?)हायभावानुरागाः ॥ १०६ ॥
पवित्रलेखपत्रकं मदीयमाप्तमाशु तत् । हितेन लेख्यपा(मा?)वहो अगाधबोधधीधनैः ॥ १०७ ॥
यदत्र लेखदूषणं त वेक्षतृमां तदादितः । विद्वे भामा श्रसश्यतो यथाहि करकरः खरम् (?) ॥ १०८ ॥

॥ इति श्रेयः ॥

खर० श्रीजिनचन्द्रसूरिं प्रति वाचक-राजविजयगणिप्रेषिता

[५] विज्ञसिका ।

॥ श्रीः ॥

अल्प..... ।

.....परमेष्ठिनःस्तूयते ॥ १ ॥

करेइ भत्ताण सया जणाणं,नियर सुहाणं ।

पकिड्ढमाहप्पविलासजुत्तं, नमामि.....रिंदपुत्तं ॥ २ ॥

दयानिवासा सुगुणप्पयासा, सुनिम्मला.....संतिनाहा ।

दिसंतु सिग्घं य समीहिअत्थं, सुदिट्ठि संघस्सुवरि प्सत्थं ॥ ३ ॥

मणुन्नरूवं सययाणुकूलं, सुलोयणं राइमइं विहाय ।

गहीअपव्वज्जवओ सुहाइं, करेउ सो नेमितिलोयनाहो ॥ ४ ॥

समत्थलोयाण नियप्पभावं, महंतमिडं विसमे वि काले ।

सुहस्स दंसेइ गुरुणमित्थं, णुवेउ यो सो सिरिपाससामी ॥ ५ ॥

विसिड्ढसोहं जियमोहजोहं, पण्डकोहं सुविसुद्धजोहं ।

नुवामि वीरं अइमित्तधीरं, जिणंदवीरं भवपत्ततीरं ॥ ६ ॥

कल्पहुभूताय सदैव कल्पते, यस्याभिधानं प्रतिकल्पमुत्पत्तम् ।

गच्छे स रत्नं जिनचन्द्रसद्गुरोः, श्रीगौतमः स्यात् स जयप्रवृद्धये ॥ ७ ॥

नो दुर्दशायाः स्वप्नेऽपि दर्शनं, यस्य स्मृतेः स्यात् स्मरणं प्रकुर्वताम् ।

नृणां सकः श्रीजिनदत्तसंज्ञितः, श्रीजैनचन्द्रस्य तनोतु संपदः ॥ ८ ॥

श्रीगुरुः सुजिनकुशलः सेवकांगिविहितसुखः ।

अस्तु वः सपदि वरदः प्रस्फुरद्भुवनमहिमः ॥ ९ ॥ —हलमुखीवृत्तम् ।

*

[अथ सत्समाजश्रीमत्स्वरतरगच्छाधिराजांहिसरोजपवित्रितस्य नगरस्य वर्णनप्रक्रमो यथा —]

यत्रोत्तुङ्गधनाढ्यमन्दिरसुधाबद्धाङ्गणप्रोच्छलतृतेजोभिः सहसा तमिस्रनिवहे दूरीकृते सर्वतः ।

आक्रीडे कुमुदारविन्दकुसुमव्याकोशसंमीलनैर्यामिन्या दिवसस्य मानवकुलैश्चेक्रीयते निर्णयः ॥ १० ॥

श्राद्धस्तोमविधीयमानविलसद्भूपोत्थधूमव्रजव्याजेनाम्बुधरः प्रभातसमयव्याख्याक्षणेष्वादरात् ।

तद्भुवनस्य शिशिक्षयेव सुगुरुं संसेवते प्रत्यहं, यस्मिंस्तीर्थकराभिरामसदनेष्वास्थानरोचिष्णुषु ॥ ११ ॥

भर्ताऽयं नु वृषाकर्षिर्मम पितु रत्नाकरस्याश्रयं, लोभाच्चोज्झति तातसन्ननि सदा पुत्र्या परं प्रौढया ।

स्थेयं नेति च नीतितोऽत्र वसनं निर्गल्य युक्तं ततो, लक्ष्मीर्यत्र विधाय चोरुमनुषीरूपाणि वावस्यते ॥ १२ ॥

श्रीमच्छ्रीजिनचन्द्रसूरिसुगुरोः संविग्रचूडामणेर्यत्रांहीद्वितयाम्बुजाभिनमनात् प्रोद्भूतपुण्याम्बुधेः ।

अव्यावर्तिं समृद्धिवृद्धिसुमनःपौरस्य ते तारका, राजन्तेऽनुपथि त्रिविष्टपसदां डिण्डीरपिण्डा इव ॥ १३ ॥

आत्मीयगीरञ्जितपूज्यमानसः, तीर्थान्तरीयोत्कटभानमानसः ।

अस्तु क्षमालाभगणिः प्रमोदभाक्, श्रीजैनचन्द्रस्य गरिष्ठपर्वदि ॥ ६२ ॥

इत्यादिकानां प्रयतीकृतात्मनां, मध्ये मुनीनां मृगराजविष्टरे ।

ये संस्थिता भान्ति सुधाकरा इव, पूर्वाचलेऽदो लिखति प्रणम्य तान् ॥ ६३ ॥

विज्ञप्तिपत्रप्रेषकगणेः स्वकीयवासस्थानादिवर्णनम् ।

अनुलंघितमर्यादा वसुराशिसमंविताः । तिष्ठन्ति श्रावका यत्र ससुखं सागरा इव ॥ ६४ ॥
महाराजमताख्याताः संप्राप्ताखिलसंपदः । शोभन्ते श्रेष्ठिनो यत्र धनदावोचितक्रियाः ॥ ६५ ॥
समागमनमिच्छन्ति वर्षास्त्रिव पयोमुचाम् । श्रीजुषां भवतां यत्र दर्शनं निखिला जनाः ॥ ६६ ॥
स्तुवन्ति च तन्नगरं यद्गुरुभिरधिष्ठितम् । सभासु मिलिताः सर्वे श्रावका यत्र सादराः ॥ ६७ ॥
अनेकागमविद्यासु विद्यते वर्णसंकरः । कदाप्यस्ति नरव्यक्तौ यत्र नो वर्णसंकरः ॥ ६८ ॥
नवाबाबदग्वानस्य विपक्षिस्वलितौजसः । परदेशं यतो भीतिं प्रतापो गमयत् स्वयम् ॥ ६९ ॥
श्रीमद्भट्टारकप्रौढशासनाश्रयणकारणात् । संप्राप्तविजयो धीमान् श्रीराजविजयो गणिः ॥ ७० ॥
श्रीमन्मालवरद्रंगादमन्दानन्दकारकात् । कृतानेकजनावासात् तस्मान्नीतिमतः सुखात् ॥ ७१ ॥
वाचकरङ्गपद्मेण विनयैश्च परिवृतः । आचारस्थापितप्रज्ञैर्गुर्वदेशानुगामिभिः ॥ ७२ ॥
तथा चात्र चतुर्मासां तस्थुषां भवदाज्ञया । वाचयतां षष्ठाङ्गं प्रभाते श्राद्धसंसदि ॥ ७३ ॥
वारयतां स्वकर्मभ्यः समस्तवस्त्ररंजकान् । मासद्वयं स्थितिं यावत् पुराधीशप्रसादनात् ॥ ७४ ॥
सप्तदशविधाः पूजा जिनसत्तसु पश्यताम् । इत्यादिविधिना सन्ति धर्मकर्माणि कुर्वताम् ॥ ७५ ॥
आम्यतः सर्वदेशेषु स्वाज्ञा दृढयितुं प्रभोः । जिनधर्ममहीभर्तुः सदष्टाहिकमंत्रिणः ॥ ७६ ॥
अमुत्रागमनात् पूर्वमस्माकमपि दर्शनम् । श्रावकाणां च प्रत्यक्षमभूत् पातकभर्त्सनम् ॥ ७७ ॥
तदोभौ जीवराजोरुदीपचंद्रौ सहोदपौ(रौ) । तेषु संधामकुर्वीतां तदीयागमनोत्सवे ॥ ७८ ॥
तावत्तत्र चतुर्दश्या दीपोत्सवक्षणे गृहे । अनयतां धनैर्युक्ते कल्पसूत्रं महामहैः ॥ ७९ ॥
ततः सिंहासने वृद्ध उच्चैरास्थाय साधु तत् । सधवस्त्रीमुखाम्भोजसंभवैर्गीतिनिस्वनैः ॥ ८० ॥
सर्वनागरलोकोत्थहृदयोत्साहवर्द्धकम् । अनुष्ठाप्य च सद्भावादुदारं रात्रिजागरम् ॥ ८१ ॥ - युग्मम् ।
एतत्क्षेत्रातिथिभूते सहस्ररश्मिमण्डले । मिलिताबालगोपालं गीततानपुरःसरम् ॥ ८२ ॥
कुङ्कुमाग्रछात्रभ्यक्तधनीशकायमण्डनम् । नदन्नशेषवादित्रं लीलालसितकेतनम् ॥ ८३ ॥
श्रीमत्सदरसाहोग्रहेषमानतुरङ्गमम् । अनेन विधिनोत्साहं रचयतोः प्रयत्नतः (?) ॥ ८४ ॥
श्रीमदनूपराजस्य स्कंध आरुह्य हस्तिनः । सूत्रप्राभृतसंयुक्तस्थालान्वितकरद्वयः ॥ ८५ ॥
अमूढोऽनूढसद्बालस्तयोस्तस्याक्षिगोचरम् । अस्मद्धस्तार्पणद्वारा कृतवान् सूत्रप्राभृतम् ॥ ८६ ॥

(- पंचभिः संबन्धः ।)

श्रावकाग्रे ततोऽस्माभिः संपर्यैक्षि तदद्भुतम् । वाचनाभिः सदानाभिर्नवभिर्वाचनोपधे ॥ ८७ ॥
उपप्रदा विधिः कश्चिदथो तदनुयायिनाम् । अत्रत्योऽपि विशेषेण प्रभूणां विनिवेद्यते ॥ ८८ ॥
आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां व्रतधारिणाम् । धारादेश्राद्धयानल्पैः सुभक्तिर्मोदकैः कृता ॥ ८९ ॥
भाद्रादिमचतुर्दश्यापवासकविधायिनाम् । सदकरोज्जनान् सर्वान् श्रीफलैः श्राद्धस्त्रीमसी ॥ ९० ॥
वीकपुरनिवासेन नयनात् सिंहमंत्रिणा । सन्मानितास्तथा तैश्च सांवत्सरोपवासिनः ॥ ९१ ॥

उपवासविधायिभ्यो वार्षिकोत्तमपर्वणः । श्रीफलान्यददातां च पुस्तकोत्सवकारिणौ ॥ ९२ ॥
 सांवत्सरोपवासिन्यो मानिताः सर्वश्राविकाः । ताम्रनाणकयुग्मैश्च मारवणीति श्राद्धया ॥ ९३ ॥
 तद्वद्वाऽपि च तैरेव समस्तास्तास्तथा कृताः । श्राविकाभ्यामदीयातां ताभ्यो द्वौ द्वौ सु मोदकौ ॥ ९४ ॥
 ऊर्जोज्ज्वलचतुर्दश्याः पोषधव्रतधारिणाम् । धारादेश्राद्धया दत्तं खंडं सेरप्रमाणकम् ॥ ९५ ॥
 शीलितं बहुभिः शीलं तपस्तप्तं च भूरिभिः । तत्रापि च विशेषोऽयमुदारस्तस्य दृश्यताम् ॥ ९६ ॥
 मात्रा ऋषभदासस्यानुष्ठिताऽष्टाहिका तथा । व्यधादर्जुनदेश्राद्धी उपवासांश्च षोडशान् ॥ ९७ ॥
 भाविता बहुभिर्लोकैर्भावनाशुद्धिरुत्तरा । इत्थं श्रेयोऽध्वसेनाभिस्तदमात्यः प्रसादितः ॥ ९८ ॥
 अत्रत्यान् पर्वराजस्य सूदन्तान् सकलानिमान् । ज्ञात्वा ज्ञापयितव्याश्च तत्रत्या गणनायकैः ॥ ९९ ॥
 श्रीमच्चरणपद्मोपसेविनो गुणशालिनः । अनुवन्द्या मदीयेन नाम्ना सकलसाधवः ॥ १०० ॥
 अस्मदीयाः समे शिष्याः प्रमोदेन चिराकषः । गुरुवाक्यानुगा नित्यं वन्दन्ते चरणौ प्रभोः ॥ १०१ ॥
 सप्त-पक्षे-नगै-क्षोणीप्रमाणितेऽनुवत्सरे । सहोमासेऽलिखत् पत्रं बलक्षपंचमीदिने ॥ १०२ ॥

॥ इति श्रेयः ॥

तपागच्छाचार्यश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० नयविजयगणिप्रेषिता

[६] — विज्ञसिका —



[तत्रादौ देववर्णनम् -]

स्वस्तिश्रियेऽस्तु विमलाद्रिरनन्ततीर्थयात्रातिशायिसुकृतातिशयप्रदाता ।
धर्मेण भीमभवकूपपतञ्जनानामालम्बितः किमु समुद्धरणाय हस्तः ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रियं दिशतु तीर्थयुगं जनानां, श्रीनाभिनन्दनजिनेन कृतप्रतिष्ठम् ।
चक्रे शुचि प्रतिभयादवतारणेन यद्येन लोकयुगपावनहेतुरूपम् ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रिये विमलगोत्रपवित्रनामतीर्थत्रयं भवतु मङ्गलकेलिधाम ।
स्फीतं यदस्ति नवखण्डसुजातरूपश्रीमदधनौघपुरकान्तिभृता जिनेन ॥ ३ ॥
स्वस्तिश्रियं सृजतु तीर्थचतुष्टयं वः, सौराष्ट्रनीवृति जिनेन विपश्चित् ।
अञ्ज्जाहरेण सुधनौघविलासिभाससिद्धाचले गजपदोलसिते स्थितेन ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रियं प्रददतीं भज पञ्चतीर्थीमेकाल्मिकामिव चकार शिवोद्भवो याम् ।
अञ्ज्जाहरः सुवृषभो नवभागधेयविस्फूर्तिमूर्तिशुचिकीर्तिसुधाप्रवाही ॥ ५ ॥
स्वस्तिश्रियां दिनपतिर्नवपद्मिनीनां, पार्श्वप्रभुर्विजयतां नवखण्डनामा ।
यद्भ्रिकीर्तिपरिपूरितलम्बमान, ब्रह्माण्डमण्डलकमण्डलुबिन्दुरिन्दुः ॥ ६ ॥
हंसीहराद्रिसितयत्सुयशो भरालसङ्गादसूत विधुमण्डमिवाभ्रगङ्गा ।
एनं नमामि नवखण्डमखण्डवीर्यमाखण्डलप्रणतमुद्रितविश्वलोकम् ॥ ७ ॥
पार्श्वप्रभोस्तनुरुचो नतशक्रमौलीरत्नप्रभापटलपाटलिता जयन्ति ।
उद्यद्भस्तिकिरणप्रकरप्रवेशप्रोद्भिन्ननीलनलिनच्छविबद्धसख्याः ॥ ८ ॥
निःशल्यसप्तभुवनाधिपतित्वसूचानूचानचारुपिहिताम्बरडम्बराभाः ।
स्फारा जगद्भयभिदो महतान्धकाराः, पार्श्वप्रभोः शिरसि सप्तफणा जयन्ति ॥ ९ ॥
यस्य प्रतापतपने स्फुरति प्रयान्ति, तेजांसि तारकदशां परदेवतानाम् ।
देवं कलावपि बलातिशयानपेतशोभाभिरामगुणधाम तमाश्रयामः ॥ १० ॥
आचम्य यं प्रकलयन्ति यदीयवाचः, स्वादं विदन्ति न सुधासु सुधाभुजस्तम् ।
पार्श्वः श्रिये स वसुधाधिपमौलिमाल्यसंसर्गभृङ्गमुखरीकृतपादपद्मः ॥ ११ ॥
आबद्धरङ्गसुरकिन्नरभृङ्गपीतस्फीतप्रतीतगुणगौरवसौरभाढ्या ।
छायां तनोति भुवनत्रितयेऽपि जीरापल्लीयपार्श्वजिननायककीर्तिवल्ली ॥ १२ ॥
पार्श्वश्चिरं जयतु यत्सुयशःपयोधौ फेनायतेऽखिलमपि ग्रहचक्रमुच्चैः ।
शैवालजालति नभस्यतमालनीलं, रत्नानि निर्जरगृहाणिव विद्रुमन्ति ॥ १३ ॥
धर्माभृतानि परिपिण्ड्य विनिर्मितैव, कल्पद्रुमाद्यधिकसारसमुच्चितैव ।
चान्द्रप्रभा सृजतु मूर्तिरगण्यपुण्यश्रेणीव मूर्तिकलिताकलितापभेदम् ॥ १४ ॥

पुण्याब्धिवृद्धिकरणोद्यतगौविलासः, स्फूर्जन्महाव्रतेशिरःस्थकलाप्रकाशः ।
 दोषोदितप्रबलमोहतमोपहो वश्चन्द्रप्रभो दिशतु शर्म जिनाधिराजः ॥ १५ ॥
 श्रीमद्घनौघपुरसुन्दरबन्दिरेण, विश्वत्रयं प्रविजितं सुख(ष)मामदेन ।
 तत्सूचनाय रचिता किमु तत्र कीर्तिस्तम्भत्रयी जयति देवगृहत्रयीयम् ॥ १६ ॥
 रत्नत्रयी जयति मूर्तिमती घनौघचैत्यत्रयी ध्रुवमघौघविधातेहतुः ।
 नित्यं द्विशोऽम्बुधिरपि स्वकरत्नशोभारेषाविशेषमतये ननु यासुपास्ते ॥ १७ ॥
 सिद्धान्तपद्मनदसंभवधर्मशुद्धित्रिस्रोतसस्त्रय इव प्रथिताः प्रवाहाः ।
 श्रीमद्घनौघपुरतीर्थकृतावतारास्तारास्त्रयः प्रवितरन्तु सुखं विहाराः ॥ १८ ॥
 सौराष्ट्रदेशसुख(ष)माशुचिकण्ठदेशे, मन्ये घनौघपुरमन्दिरमेव रम्यम् ।
 चैत्यत्रयी लसति यत्र मिथोविशेषा, रेषात्रयी त्रिभुवनाधिकभाग्यचिह्नम् ॥ १९ ॥
 श्रीमद्घनौघनगरे कलयत्यशल्यं, राज्यं सदा सुकृतभूर्य्यवहारभूपः ।
 शक्तित्रयं प्रकटमस्य चकास्ति चारु चैत्यत्रयं प्रगुणितस्वविधेयलभम् ॥ २० ॥
 लेख्याः शुभा इह जनेषु लसन्ति तिस्रो, धर्तुं कदापि न पदं त्वशुभा लभन्ते ।
 चैत्यत्रयी प्रगुणिता विधिना घनौघसद्वन्दिरे शुचिरुचिः किमिति प्रवक्तुम् ॥ २१ ॥
 पुण्यार्जितोर्जितसुकीर्तिमहाविशेषं, संसारभोगसुख(ष)मादमनावरं वः ।
 सिद्धाकृतिप्रकृतिरूपविभागभाजौ, पाश्र्वौ सुखं प्रददतां महसेनभूश्च ॥ २२ ॥ - द्रुताद्भुतम् ।
 एताननन्तसुखसन्ततिदानदक्षानक्षामधामनिलयान् परिणामरम्यान् ।
 आनन्दितामरवधूनयनालिलेह्यलावण्यपुण्यसुख(ष)मामृतपात्रगात्रान् ॥ २३ ॥
 विश्वत्रयीभविकतारणहेतुतीर्थस्तोमप्रवृत्तिविलसज्जयकेतुलीलान् ।
 ब्रह्मप्रकाशपरिशीलितचित्तरोधप्रौढप्रबोधपरिवृंहितशुद्धशीलान् ॥ २४ ॥
 तीर्थेश्वरान्निखिलनाकिनिकायनाथकोटीरहीरपरिचुम्बितपादपद्मान् ।
 आनम्रमानसमनोरथपूरणाय, वृन्दारकद्रुमसमानभिनम्य सम्यक् ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीदेववर्णनम् ॥

[अथ नगरवर्णनम् -]

प्रददते सकलर्तुवनश्रियः, कुसुमहारविराजितवक्षसः ।
 किमिह नीलनिचोलरुचिं दलैर्धनतमानतमालमहीरुहः ॥ २६ ॥
 इह महाव्रतिनोऽपि मनःक्षणं, रतिमुपैति निरीक्ष्य वनश्रियम् ।
 मधुसुहृजयदीपसमोलसन्मुकुलसंकुलसंभृतचम्पके ॥ २७ ॥
 इह मदालसकोकिलकूजितानुचरपञ्चमनादघनादरा ।
 स्वदयितेन तनोति रसोद्भवं, न सहका सहकारवने वधूः ॥ २८ ॥
 सह सुरीभिरमर्त्यगणाः सरःकमलगन्धहरानिललालिताः ।
 कुसुमतल्पगता इह शेरते, चिरतरं रतरङ्गकृतश्रमाः ॥ २९ ॥
 न खलु चाटुकृतोऽप्यनुवल्लभान्, प्रगुणतां ययुरात्ममदेन याः ।
 विदधते रतिनर्ममनोभुवा, विधुरिता धुरिता इह वल्लभाः ॥ ३० ॥

गगनचुम्बितलम्बितगोस्तनी, विविधमण्डपमण्डनकैतवात् ।
 इह भवत्पवियुक्तरतिस्फुरन्मदननन्दननन्दिमहोत्सवः ॥ ३१ ॥
 मम पुरः कतमा सुखवाटिकेत्यतुलदर्पसमर्पितमानसा ।
 इह मही मुहुरुलसति स्फुरन्नवकदम्ब[कदम्ब?]कैतवात् ॥ ३२ ॥
 इह समुज्ज्वलदलधरः स्मरः, स्वविनियोजितनर्मकृतो जनान् ।
 वनविहारपरानिव वीक्षितुं, नवकुले वकुले कुरुते स्थितिम् ॥ ३३ ॥
 अहिलताऽऽकुलितेव वृषस्यया, विवसनाऽनिलधूतदलच्छलात् ।
 इह विभाति रसेन वितन्वती, क्रमुककामुककामितवेष्टनम् ॥ ३४ ॥
 अलिकुलध्वनिनूपुरनादया, सुरभिचन्दननिर्जितनन्दनः ।
 गिरिसावुपसृत्य निषेव्यते, कमलया मलयाद्रिनिवासया ॥ ३५ ॥
 गिरिमसुं सुकृताय निषेवते, जलरुहैर्बहुरूपतया विधुः ।
 तदिह संगतिमृच्छतु तारकाभृतककेतककेलिविलोला ॥ ३६ ॥
 प्रियसखीव रतेरिह राणिणी, विरहिणां विपिने वरदाडिमी ।
 हृतमनोरथपिण्डसमुद्भवत्फलकरालकरा प्रतिभासते ॥ ३७ ॥
 हरशिरःस्थितिश्च सुभोज्यते, किमिह लोभपरंपरया विधुः ।
 न गतयाम्बरमध्यमधित्यकोलसितया सितयाऽधिगताधिकम् ॥ ३८ ॥
 इह मही कतमा तटवर्जिता, क इव चास्ति तस्यैर्होर्जितः ।
 गहनमत्र च किन्नरसुभ्रुवाम्, न किल किं किलकिञ्चित्तराजितम् ॥ ३९ ॥
 इह लंसन्ति महौषधयः प्रभाविजितदीपकदीपनवाङ्मुराः ।
 दिनमिवोडमयंति निहत्य यास्तमसि तामसितामपि यामिनीम् ॥ ४० ॥
 विततकेतकरोणुविगुण्डितस्तपितपृष्ठविनिर्गतशीकरैः ।
 गिरिरयं भजते बहुनिर्झरैर्मदकलो दकलोलगजोपमाम् ॥ ४१ ॥
 लसदलक्तकरक्तसतीपदं, प्रणतशम्भुशिरःस्थकलोपमः ।
 इह विधुर्भवति स्फुटधातुभृच्छिखरशेखरशो(षि)तदीधितिः ॥ ४२ ॥
 दुरवगाहतरास्सरितो महाकविमुखादिव चारुवचःसुधा ।
 द्रुतमितो निपतन्त्यनियन्त्रितप्रसरया सरया रसलीलया ॥ ४३ ॥
 अधरारागहृतिस्तनपीडनालकविलोलनशीत्कृतिकौतुकैः ।
 इह सुखं लभते जलकेलिभिः, सरसिका रसिका न रतोद्भवम् ॥ ४४ ॥
 इह लतागहनस्थमृगेक्षणा, मृगयुतोपगतस्य मनोभुवः ।
 भवति काकुशतप्रमदो मदोद्धतकपोतकपोलजहुंकृतेः ॥ ४५ ॥
 अविरतं प्रतिनादिनि गह्वरे, विफलितानुकृतध्वनितश्रमाः ।
 अवितथेऽपि गजे परिगर्जति, प्रतिनदन्ति न दन्तिगणा इह ॥ ४६ ॥
 निजरसेन लसन्ननिशं प्रियामुखसमर्पितभुक्तलताङ्कुरः ।
 इह सुतीर्थणा(?)दभिभूयते, न हरिणा हरिणादिगणो गिरौ ॥ ४७ ॥
 अपि तपस्विकदम्बकमास्थितव्रतविशेषमशेषसुखाशया ।
 इह जगज्जनपावनपापभिद्, गजपदेऽजपदेति जिनाभिधाम् ॥ ४८ ॥

इह निहत्य मनोभुवनिर्मितां, परमनिर्वृत्तिसौख्यमलम्भयत् ।
 व्रतसुधास्त्रपनेन जिनो घनच्छविरहो विरहोग्ररुजं प्रियाम् ॥ ४९ ॥
 यदुकुलाम्बरपौर्णिमचन्द्रमाः, कनकपद्मनिवेशितपत्कजः ।
 इह चिरं विजहार जिनेश्वरश्चरितदारितदारुणपातकः ॥ ५० ॥
 अधिगतातिशयद्विभवान्मदादिव दिवस्पतिगीतयशोभरः ।
 भगवताञ्चलके तु शनैर्दिनाशुभवनैर्भवनैर्नरिनिर्ययम् ॥ ५१ ॥
 इति यदेकविभूषणभूमिभृत्तिलकरैवतकस्तुतिलम्पटाः ।
 सितपटाः सुधियो घटयन्त्यहो, स्वरसना रसनादकृतार्थताम् ॥ ५२ ॥
 तस्मिन्नन्दनचन्दनद्रुमचमत्कारानुकारोल्लसन्, मल्लीवल्लिविनोदमत्तमधुपस्तोमाभिरामैर्वनैः ।
 वापीकूपविहारहारिहरिणीनेत्राभिरभ्युद्यत - श्रीमत्सभ्यमहेभ्यराजिभिरपि प्रख्यातशोभाभरे ॥ ५३ ॥
 लङ्काश्रीमुखि देवनाथनगरी श्रीगर्वसर्वकषे, भोगावत्यभिमानहर्तरि जिताऽयोध्यायशस्संचये ।
 राजद्वाराजगृहातिहारिविभवे चाराणसीसन्निभे, श्रीमत्पूज्यपदाब्जपाविततमे श्रीजीर्णदुर्गोत्तमे ॥ ५४ ॥
 ॥ इति श्रीजीर्णदुर्गनगरवर्णनम् ॥

[अथ घोषावन्दिर्वर्णनम् -]

उपाश्रयस्थायिमुनीन्द्रदृष्टिपीयूषसेकादनुभूयमानम् ।
 वेलाविलासच्छलनृत्यभाजो, हृच्छर्मपोताः स्फुटयन्ति यत्र ॥ ५५ ॥
 यद्यानपात्राणि महर्द्धिदर्पादूर्ध्वीकृतस्तम्भकराणि मन्ये ।
 स्पर्धानुबन्धोद्घुषिता नियोद्धुं, दिवो विमानानि समाह्वयन्ति ॥ ५६ ॥
 यद्यानपात्राण्युदधिस्सुतीयन्नङ्गेऽधिवेलं परिलालयन् स्वे ।
 उद्दीपयत्येव मिथः सुहृत्त्वं, रत्नाकरत्वेन सद्यगुणेन ॥ ५७ ॥
 यदापणस्याम्बुनिधेश्च वादस्पर्धारसाद् घर्घरघोषभाजोः ।
 द्वयोर्मिथः संधिमिव प्रकर्तुं, मध्ये स्थिताः पोतगणा विभान्ति ॥ ५८ ॥
 तस्माद् घनौघनगरान् नगराजिरभ्यविस्तारहारसमचैत्यविराजमानात् ।
 सद्यानपात्रजिनदेवमहाविमानात्, लक्ष्मीविलासदलितेन्द्रपुराभिमानात् ॥ ५९ ॥

[विज्ञप्तिपत्रप्रेषकस्य स्वकीयवृत्तादिनिवेदनम् -]

मोदमेदस्वलत्स्वान्तो भक्तिप्राग्भारभासुरः । उद्यत्प्रेमार्ककान्त्याभचञ्चद्रोमाञ्चभृत्तनुः ॥ ६० ॥
 अकुण्ठोत्कुण्ठयापूर्णस्तूर्णमभ्यर्णमाप्तया । मनोरथरथारूढ इव क्ष्मां संस्पृशन् रसात् ॥ ६१ ॥
 आवर्तैर्वन्दनं कुर्वन् विधिना भानुसंमितैः । संयोजितकरद्वन्द्वो विनयानग्रकन्धरः ॥ ६२ ॥
 कल्याणीभक्तिरत्यक्तव्यक्तप्राक्तनपद्धतिः । विज्ञप्तिं कुरुते रम्यां नयादिविजयः शिशुः ॥ ६३ ॥
 यथाकृत्यमिहाप्रौढपूर्वाचलविभूषणे । निराकृतनिशाध्वान्तस्तोमकोमलदीधितौ ॥ ६४ ॥
 विकाशिताम्भोजवने प्रकाशितजगत्पथे । समुद्यति नभोरत्ने हिङ्गुलद्युतिपाटले ॥ ६५ ॥
 सभायां परिपूर्णायां महेभ्यैः सुरसन्निभैः । प्रज्ञसौ वाच्यमानायां सूत्रतश्चार्थतस्तथा ॥ ६६ ॥
 प्रस्तुताध्यापन-ग्रन्थकरणादिपरिश्रमैः । प्रगल्भमाने प्रतिभाचमत्कारितगीष्पतौ ॥ ६७ ॥
 यथावदुपदेशेनोलास्यमाने मनस्विनाम् । हृदये घनवृक्षेव कदम्बानां कदम्बिका ॥ ६८ ॥
 क्रमागते सर्वपर्वगर्वसर्वकषोत्सवे । महापर्वणि विख्याते श्रीमत्पूर्युषणाभिधे ॥ ६९ ॥

कल्पितानल्पसंकल्पपूर्तौ कल्पमहीरुहः । व्याख्या श्रीकल्पसूत्रस्य विहिता नवभिः क्षणैः ॥ ७० ॥
 पूजाप्रभावनादानतपःप्रभृति चाखिलम् । सत्कर्म तत्तदुचितं रचितं गृहमेधिभिः ॥ ७१ ॥
 यद्दानविधिमुद्गीक्ष्य हृदयेऽतिचमत्कृताः । अद्यापि नन्दनवने घूर्णन्ते सुरपादपाः ॥ ७२ ॥
 इत्यादिसौकृतं कृत्यं प्रवृत्तं च प्रवर्तते । श्रीमतां पूज्यपादानां प्रसादोदयतः परम् ॥ ७३ ॥

[अथ श्रीगुरुविजयप्रभसूरिवर्णनम् —]

सौभाग्यभङ्गी च गभीरिमा च, रूपप्रकर्षश्च विवेकिता च ।
 अनेकशास्त्रार्थपरिश्रमश्च, येषां ययौ वाक्पथपारमेव ॥ ७४ ॥
 येषां पुरः पञ्चमचारुवाचा, पुंस्कोकिलः कूजति रूक्षमेव ।
 अतो निवासं कुरुते वनेऽसौ, स्वस्पर्धिदृष्टावुपजातलजः ॥ ७५ ॥
 येषां मुखौपम्यमिवोपलब्धुं, निम्ने तपस्यत्युदके पयोजम् ।
 यन्नेत्रसौभाग्यजिताः कुरङ्गाः, कान्तारदेशेषु परिभ्रमन्ति ॥ ७६ ॥
 यदङ्गसिन्धावनुभावधावल्लावण्यपूरे परितः पतन्त्यः ।
 कलिन्दकन्योपमिति कटाक्षच्छटा भजन्ते मृगलोचनानाम् ॥ ७७ ॥
 सूरेश्वरश्रीविजयादिदेवैर्येषां प्रदत्तो निजगच्छभारः ।
 चतुर्भुजेनेव तनोर्निजायाः, शेषस्य निश्शेषविशेषभाजः ॥ ७८ ॥
 यद्वच्छुक्तौ सुगुरुप्रसादस्वात्यब्दवृष्टिप्रगुणीकृतानाम् ।
 मुक्ताफलानां सुधियां मुनीनां, पदं भवेन्मूर्ध्वपि भूधवानाम् ॥ ७९ ॥
 येषां गणे चारुवने जयन्ति, गीतार्थसार्थाः सहकारतुल्याः ।
 यद्विज्ञानलीलाकलिकारसाय, पिका इव ज्ञाः स्पृहयन्ति केऽपि ॥ ८० ॥
 यद्वच्छगीतार्थगुणान् पटिष्ठान्, न मत्सरी कोऽपि पटुः पिधातुम् ।
 न घूकघूत्कारपरंपराभिः, प्रच्छाद्यतेऽर्कः स्फुरदंशुजालः ॥ ८१ ॥
 गच्छस्थितस्वच्छगुणज्ञकीर्तिर्येषां विशेषौपयिकी विवेके ।
 लताप्रताने प्रथितप्रसूनलीला मधोरेव हि वक्ति भाग्यम् ॥ ८२ ॥
 गुणे यदीये गुरुसाधुरभ्ये, महत्त्वमन्योऽन्यकृतव्यपेक्षम् ।
 महासरस्सङ्गि लसत्परागराजीवराजीपरभागशालि ॥ ८३ ॥
 यद्वच्छनिष्ठा जगतो गरिष्ठाऽधिष्ठानभूमिः सुकृतस्य साक्षात् ।
 इति स्थितज्ञानकलाविशिष्टां, शिष्टा न तां जातु परित्यजन्ति ॥ ८४ ॥
 एकातपत्रं कलयन्ति धर्मम्, विभौ गुणज्ञे सुधियो यदीयाः ।
 न ते स्वबोधाभृतमग्नचित्ताः, संसारलीलापरमाद्रियन्ते ॥ ८५ ॥
 गङ्गातरङ्गा इव वाक्यरङ्गाः, शृङ्गारसङ्गाद् विलसन्ति येषाम् ।
 मज्जन्ति येषु हृतमुक्तलज्जं, विद्याधराऽमर्त्यवधूसमूहाः ॥ ८६ ॥
 उक्तेर्विशेषेषु महाकवीनां, येषां मनोवृत्तिरतीव पटी ।
 इति स्फुटीभाविविलास्युदकं, तन्वन्ति तर्कं किल तर्कविज्ञाः ॥ ८७ ॥
 ये सूक्तपीयूषरसेन सिक्ता, द्रवन्ति चन्द्रोपलवज्जनेषु ।
 स्वान्तस्य तेषामनुकूलवृत्तिं, स्तुमः प्रतीतां कियतीं विभूनाम् ॥ ८८ ॥

तपागच्छाचार्यश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति उदयविजयगणिप्रेषिता

[७] — विज्ञसिका —

ॐ ॥ ऐं नमः ॥ श्रीर्जयति प्रत्यहम् ॥ ॐ

[आदौ श्रीशान्तिजिनादितीर्थङ्करनमस्काराः —]

स्वस्तिश्रियः सन्ततमाश्रयन्ते, यत्सुप्रसादैर्विषयीकृतं ज्ञम् ।
स शान्तिनाथः शिवतातिरस्तु, प्रशस्तकारुण्यरसोर्मिमाली ॥ १ ॥
गर्भावतीर्णेन कृता धरिण्यां, शान्तिर्जनानां सुखवृद्धिहेतुः ।
नामानुरूपं फलमर्पयन् स, प्रोक्षासयत्वद्भुतसम्पदं नः ॥ २ ॥
यस्य प्रसादाः परितः स्फुरन्तः, सर्वासु दिक्षु प्रबलीभवन्ति ।
एकैकशो यैर्विहितान्यभीष्टान्युच्चैः स्युरेभिः सकलैः कियन् न ॥ ३ ॥
तीर्थेशलक्ष्मीरपि चकिलक्ष्मीर्द्वे अप्युदीते प्रबलप्रभावात् ।
पूजा तदीयां सुरवल्लिराविश्वर्कलक्ष्मीर्द्वे किमत्र चित्रम् ॥ ४ ॥
पारापतो यच्छरणं प्रपन्नश्चिरायुरासीदपयातभीतिः ।
सर्वाणि सौख्यानि ददत् सकामं, दीर्घायुराविः कुरुतात् सदा नः ॥ ५ ॥
सुतेर्विधातार इतीद्धभावा, भवन्ति भूयो गुणरत्नकोशाः ।
यस्य प्रभोः शान्तिरसौ ससौख्याः, श्रियश्चिरं दातुमथोद्यमी स्तात् ॥ ६ ॥
श्रीशान्तिनाथं सुषमासनाथं, पाथःपतिस्फारगभीरिमाणम् ।
प्रमाणभूतं कवितार्किकानां, वाणीसुधावारिधरं प्रणौमि ॥ ७ ॥
एनं तथा श्रीवृषभध्वजं च, श्रीनेमिनाथं जिनवर्धमानम् ।
श्रीपार्श्वनाथं धरणाधिराजसंसेव्यमानस्फुटतीर्थमीडे ॥ ८ ॥

पञ्चतीर्थीमिमां पञ्चकल्पवृक्षगुणाद्भुताम् । पञ्चपाण्डववनमुक्तिपाञ्चालीसरसां स्तुमः ॥ ९ ॥
एतान् जिनेश्वरान् पञ्चपरमेष्ठिपुरन्दरान् । प्रणम्य सम्यग् भावेन रम्यमाहात्म्यशालिनः ॥ १० ॥

[गच्छाधीशाधिष्ठितद्वीपबन्दिरवर्णनम् —]

महेभ्यानां ततिर्यत्र मनोऽभीष्टप्रदायिनी । अनयाऽध्यापिता मन्ये कल्पवृक्षाः समर्पणम् ॥ ११ ॥
एकेन्द्रियाणां दानादिचातुरी कोपलभ्यते । युग्मिनां किन्तु संगत्या कर्मभूमिषु लभ्यते ॥ १२ ॥
युग्मिनां प्रतिरूपास्तु यच्छ्रद्धा गुणशालिनः । दानभोगादयोऽमीषां वर्ण्याः के के न साम्प्रतम् ॥ १३ ॥
दानभोगमयं क्षेत्रं यदि तद् द्वीपबन्दिरम् । युग्मिक्षेत्रमिव श्रीमत्पूज्यास्तत्र सुरदुमाः ॥ १४ ॥
दत्ते सुरदुमो भुक्तिं न तु मुक्तिं कदाचन । भुक्ति-मुक्तिद्वयं पूज्या इति तेभ्यो विशिष्टता ॥ १५ ॥
युग्मिक्षेत्रमिव श्रीमद्द्वीपबन्दिरमाहितम् । सद्भोगशालिनो यत्र लोकाः स्युः क्षेत्रशक्तितः ॥ १६ ॥
लावण्यपुण्यसौभाग्यभाग्योत्कर्षस्समीह्यते । यैस्तेषां द्वीपसुक्षेत्रप्रसङ्गो युज्यतेऽनिशम् ॥ १७ ॥
समुद्रे सन्ति रत्नानि स च यद्द्विगसंगतः । रत्नार्थी कामनां स्वां तत् पूरयेत् तत्र नाद्भुतम् ॥ १८ ॥

तपागणाधीशश्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं० मेघविजयगणिप्रेषिता

[८] — विज्ञसिका —

स्वस्तिश्रीमदमन्दमोदविनमदेवेन्द्रमौलिस्फुरन्, माङ्गल्याङ्गयवाङ्कुराकरपरिग्लासाऽप्रयासाशया ।
यस्य श्रीजगदीश्वरस्य चरणाम्भोजन्मचिह्नच्छलात्, तस्थौ पीनतनूरूनसुखभाग् गोकर्णजस्तर्कः ॥ १ ॥
सर्वानन्दनन्दने भगवतः श्रीनन्दनेऽनन्दने, पादाम्भोरुहिरोहितोऽप्युपहितः सौभाग्यसन्नाऽभवत् ।
नम्रानेकनृनाकिनायकवधूवृन्दस्य वीक्षाविधेर्लावण्याभ्यनुशासनान्निजदृशोः पुष्पन्नदूष्यां श्रियम् ॥ २ ॥
सेवाऽसौ महतां सतां भगवती जीयाङ्गयश्रीपदम्, सर्वाऽखर्वयशःप्रशस्तिसदनं सम्पादनं संविदाम् ।
कन्दः शर्ममहोदयक्षितिरुहः सौहार्दपात्रं श्रियः, सिद्धेः संवननौषधिर्निर्वधिर्भाग्यस्य वारान्निधिः ॥ ३ ॥
सेवाया वशतः शतक्रतुपदं प्राप्ता नरोऽनेकशः, श्रीशान्तेर्जगदेकवीरपदवीं प्राप्तस्य मोहाहतेः ।
ताराणामधिपस्य पश्यत जनाः क्रोडे पृषत्याः सुतः, क्रीडत्येष विशेषतः प्रियसुहृत् प्रायः प्रभोः सेवकः ॥ ४ ॥
जाग्रन्मानविमानवासिमरुतां मौलौ कृतालङ्कृतिर्लक्षालक्ष्मण एष किं मृगशिगुर्दिष्टाऽकरिष्यत् स्थितिम् ।
नासेविष्यत चेज्जगन्नयपतिं श्रीविश्वसेनात्मजम्, न स्यात् कस्य महन्निषेवणमहो नूनं महत्त्वाप्तये ॥ ५ ॥
ख्यातं सर्वजनेऽस्ति यन्मृगपतेः सर्वो मृगादिः प्रजा-वर्गः श्वापदपुङ्गवः स तु मतः सर्वस्य सेवोचितः ।
जज्ञेऽत्रैष विपर्ययप्रभुरभूद् देवाभिसेवी मृगो, नित्यं मण्डपमूर्ध्वगो हरिरयं तं सेवते भृत्यवत् ॥ ६ ॥
मूर्तेरासनसंस्थितं द्वयमिदं सिंहीतनूजन्मनोः, प्रत्यासन्नमपि प्रभोः परिचयाद् रक्तुं न चाक्रामति ।
तद्द्वयोमनि चन्द्रमण्डलगतो नायं पराभूयते, सिंहीदेहभुवा स्वयं विजयते सोऽयं प्रभावः प्रभोः ॥ ७ ॥
श्रीमच्छान्तिजिनेन्दुसेवनविधेः प्राप्तं न किं किञ्चलम्, बालेनाप्यमुना मृगेण सहसा भीतिर्निरस्ता हरेः ।
प्रीतिश्चन्द्रमसा बभूव भुवनश्लाघ्यात्मनश्चर्मणः, पावित्र्यं तदहो न किं वितनुते रङ्गत्सतां सङ्गमः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीप्रभुसेवाप्रयत्नरत्नवर्णनाष्टकम् ॥

अत्रान्तरे भाग्यवादी प्रावादीत्—

किं सत्सेवनवर्णनैर्ननु घनैर्मिथ्याकृतैः प्राकृतैर्दिष्टं शिष्टमनिष्टमेव यदि वादिष्टं बुधैरुत्तमैः ।
विश्वस्यापि सुखासुखाधिगमने वित्तं निमित्तं सदा, पक्षस्यास्य विपक्षबाधकतया जैनागमो जागरी ॥ ९ ॥
दासो दाशरथेः कथं न हनुमान् पाथोनिधिं तीर्णवान्, नोत्खातं दशकन्धरस्य विपिनं किं तेन मूलादपि ।
सीताशुद्धिवचोमृतैर्न शमिताः सर्वाः सुपर्वाग्रहात्, राज्ञो दुस्सहविप्रयोगदहनज्वालाः कराला अपि ॥ १० ॥
नोऽलङ्कारमणी बभूव स पुनर्देशाधिपत्यं जगद्, व्याप्तं नाप्तमनेन भूषणमपि क्षोणीश्वरस्योचितम् ।
कौपीनं न नवीनमालभत तद्भाग्यस्य विस्फूर्जितम्, शुश्रूषा कियदेति का वत कियच्चक्रे वराकी बलम् ॥ ११ ॥
अध्वानाश्रयवान् वियद्रथवरे पादोऽपि चैकस्तथा, बाहाः सप्तनियन्त्रणस्य विषयः सन्दामिनीपन्नगः ।
इत्येवं विषमेऽपि सेवनविधौ बद्धादरः काश्यपिः, केनानूरुरभूद् रवेः प्रियतमः प्रेक्ष्यः सहस्रत्विषः ॥ १२ ॥
भालोद्भूतदृशो भृशोदितबृहद्भानोरदीनार्चिषः, पार्श्वे पन्नगराजसंयतजटाजूटाप्रकूटाश्रयी ।
गङ्गाभङ्गततरङ्गसङ्गमभवक्षोभं दधानोऽनिशं, शीतांशुः प्रभुभालभूषणमयं संसेवते शङ्करम् ॥ १३ ॥

अथ श्रीमञ्जिनराजवर्णनान्तरं क्रमासञ्जीभूतश्रीगुरुपादपावनीकरणतीर्थरूपनगरवर्णनप्रस्तावदानाय भाग्यवाद्याह —

सत्यमेतदुदितं नु तथापि, काऽपि भाग्यवचनावचनानाम् ।
नास्ति गोचरचरिष्णुरतोऽस्थुः सूरयो लघुपुरेऽपि गुणाढ्ये ॥ ३९ ॥
मञ्जरीभिरजिरेऽजनि मञ्जुर्वञ्जुलच्छविरिव त्रिदिवेन्दुः ।
भूरिभाग्यसुलभास्थितसुस्थः, श्रीपुरीति नगरे भगवान् यत् ॥ ३० ॥
भाग्यवैभवभवात् प्रभुयोगात्, श्रीरपीत्युपनता जनतायाः ।
उत्तमा हि वितमा वसुधाऽऽसीत्, सद्रुमा सपदि विद्रुमसारा ॥ ३१ ॥

तद्यथा —

यन्निवासशिखरेष्वखरांशुर्धृष्टवानपि न कश्मलशून्यः ।
पौरयुग्मपरिमुक्तविमुक्ताद्, गन्धधूलिभरमर्दनलेपात् ॥ ३२ ॥
द्वीपतो जलशयादिव भर्तुरागता गुरुपदाम्बुजरागात् ।
श्रीरूपासकगणैः सममत्रात्याहता किमु सधर्मविमर्शात् ॥ ३३ ॥
स्वर्णशैलमभितो भ्रमकर्त्रे, दुःस्थितद्विजवराय चिराय ।
उच्छलजलधिवीचिकराग्रैः, सा पुरी वितरतीव सुमुक्ताः ॥ ३४ ॥
एकतो जलधिमध्यजरत्नैरन्यतो विविधशालिवनैः सा ।
नीलवस्त्रयुवतीव विरेजे, स्फारहारमणिमौक्तिकसक्ता ॥ ३५ ॥
उत्थिता जलनिधेरतिलोला, ऊर्मयोऽत्र गुरुदर्शननम्राः ।
अग्रपल्लवकरैस्तटवृक्षैर्धर्मलाभकधनैः प्रतिबोध्याः ॥ ३६ ॥
श्रीगुरोः पदपयोरुहयोगाद्, दैवतोऽत्र कमलाश्रयताऽऽसीत् ।
तेन तद्ब्रह्मजनस्य न चित्रं, यद्वभूव पुरुषोत्तमभावः ॥ ३७ ॥

अत्रोच्यते —

या प्राकृता द्वीपपुरे स्थितानां, सूरेश्वराणां सुरपत्तने वा ।
स्वल्पाऽपि सेवा ह्यभिवन्दनाद्यैर्वल्लीव सा पल्लविता नराणाम् ॥ ३८ ॥
तदैषमोऽभूत् सुषमा द्विधापि, पुर्यां परुद्धुःषमया न सङ्गः ।
कर्पूरसंग्राहिणि भाण्डमध्ये, नाविर्भवेत् किं स सुगन्धबन्धः ॥ ३९ ॥
लघुर्गुरुः स्याद् गुरुसेवनेन, महान् लघुः स्याद् गुरुलाघवेच्छुः ।
इतीव मन्ये बहुगौरवश्रीर्जज्ञे पुरोऽस्या वरपत्तनेभ्यः ॥ ४० ॥
आदाय चैत्योपरि दण्डकुम्भौ, पताकयाऽभ्रं परिमार्ज्य मन्ये ।
सा पूर्वहोत्साहदशां स्वकीयां, सम्यग् लिपीकर्तुमिव प्रवृत्ता ॥ ४१ ॥
श्रीमद्गुरोरागमनेऽङ्गनाभिर्विकीर्णलजैर्धवलैस्तरङ्गिः ।
जहास सोल्लासमसौ पुरीव, प्रवृत्त्य नृत्ये चलकेतुहस्तैः ॥ ४२ ॥
अस्यां नगर्यां भगवन्निवासे, दानं समभ्यस्य वदान्यलोकात् ।
अन्दे गते विस्मृतमम्बुदोऽस्मिन्, वर्षे भृशं वर्षति सर्वदेशे ॥ ४३ ॥
कुर्वन्ति गुर्वन्तिकबद्धरागाः, श्रद्धालवोऽहर्निशमेव सेवाम् ।
तस्याः प्रभावो भुवनेऽपि तेषां, रेखां यशः प्रापितवान् विशेषात् ॥ ४४ ॥

सतां क्षणादीक्षणमप्यणूनां, सौभाग्यलाभाय भवत्यवश्यम् ।
चान्द्रे सुधाविर्भवनं सुधांशोर्दध्यैव तत् किं गुरुसेवनायाः ॥ ४५ ॥

अथैवं व्यवस्थापने सत्येतत्पुरकनामज्ञापनाय प्रस्तावयन् भाग्यवाद्याह —

सेवा स्वसेवातिशयाद् गुरुणां, निःसंशयं भासयते सुखानि ।
प्रसाधितं युक्तिपदैस्तदेवं, तथापि वांसाधिगमे तु दैवम् ॥ ४६ ॥
किं वर्ण्यते तन्नगरं गरिम्णो, यस्याभिधैवाभिदधाति रूपम् ।
श्रीगूर्जरत्रावदनसदैव्यां(?), तत्पृष्ठिभागो ह्युचितः प्रतीच्याम् ॥ ४७ ॥
पृष्ठे पटिष्ठेऽप्यबलो बली स्यात्, पृष्ठे विनष्टे सुभटोऽपि बिभ्येत् ।
वासानिवासादिति गूर्जरत्रा, स्वस्थानताऽध्यक्षतयैव लक्ष्या ॥ ४८ ॥
वासेति नाम प्रकृतिर्नितान्तं, सहोपैसर्गैव बुधैर्निबद्धा ।
स्फुरत्प्रकारा यदि वा विनीता, कारेव कौलीनैर्निबद्धसख्या ॥ ४९ ॥
भर्तुर्विविक्ताशयनेऽङ्गने वात्युत्कण्टका भूरविबद्धकान्तिः ।
पराक्रमेणैव धवस्य योग्या, भोग्या भुजङ्गैर्बहुभोगरङ्गैः ॥ ५० ॥
पुरस्य सत्यापयितुं किमाख्यां, पृष्ठ्योर्पजीवी सकलोऽपि लोकः ।
क्षमश्च भारं परिवोदुमुच्चैर्देहेऽहिवत्संहितकृत्तिवासाः ॥ ५१ ॥
सीतानुरागी गहने वियोगी, त्रिकण्टकस्यापि च चूर्णकारी ।
सर्वो जनो दाशरथी रणार्थी, चित्रं पुनः पुण्यजनैः स्वरूपात् ॥ ५२ ॥
अन्यान्यबन्धादिव जातशास्त्राश्लेषाविशेषात् तरवोऽपि यत्र ।
चौरे च पौरे कचनाविभेदः, स्नेहातिरेके किमिहाद्भुतं तत् ॥ ५३ ॥
शमीगणो यस्य वने जनानां, दुर्भिक्षदुःखेषु धृतोपकारः ।
ववर्ष शम्बाभिषतो रसालीस्ता एव संजीवनमेध्वभूवन् ॥ ५४ ॥
अहो करीरेऽपि परोपकारीभावः प्रसङ्गान्मनुजस्य यस्य ।
पुष्पैः फलैर्यजनवृत्तिहेतुस्त्रिर्वत्सरे दुर्बलवत्सलः स्यात् ॥ ५५ ॥
छेदैर्विहीने मनुजे करीरद्रुमे च बद्धोत्कटकण्टकास्त्रे ।
रक्षाकरेऽक्षेमकरे विपक्षे, पश्यन्तु सन्तः खलु वत्सलत्वंम् ॥ ५६ ॥
विराजिता यत्परितः स्फुरन्ती, नीलाटवी कण्टकिनां द्रुमाणाम् ।
अमातमाशूरभयादियाय, क्षमापतेः किं शरणं पुरोऽस्याः ॥ ५७ ॥
कालः स केलीकलिकालवालः, क्षितेः प्रदेशो बहुवित्तेशः ।
ग्रामोर्धुसङ्ग्रामरुचिः स्मरामस्तदैव शिष्टिं ननु दुर्निवाराम् ॥ ५८ ॥

अत्रोच्यते —

किं दैववार्ताभिरभूभिरग्रे, दुष्कर्मनर्मापि करोति तावत् ।
यावद्गुरोर्भक्तिरसौ कृपालुर्भक्षित्तत्पेऽस्ति भृशं शयालुः ॥ ५९ ॥

१ वांसाक्षणं दैवं धिगत्यै कृत्स्नद्वं एतु(?) । २ पक्षे गूर्जरत्रासु अस्थानता । ३ वर्णनपक्षे उपसर्गः उपकारः । ४ नीति उपसर्ग इति चेत्, निवास इति चेत्, कारा इव । ५ कौलीनाश्चा तत्करविशेषस्तत्स्वामिना । ६ पृष्ठवाद । ७ पक्षे ईश्वरावतार इत्यर्थः । ८ धर्मैकः राक्षसः । ९ वस्त्रैः पत्रैः । १० पक्षे वत्सलक्षकत्वम् । ११ वर्णमेस्वर्ग(?) तदभावे प्रत्यहं कलहः ।

जाग्रत्स्वभावादथ तत्प्रभावादुपाश्रयः सर्वगुणाश्रयोऽत्र ।
 प्राप्तः समाप्तः सकलोऽनुतापो, द्वीपोऽम्बुराशौ परिमज्जतेव ॥ ६० ॥
 यथा त्रिनेत्रं ननु नालिकेरं, दृष्ट्वापि दिष्ट्वा तनुते जनानाम् ।
 तद्ब्रह्मवाक्षत्रयवान्मुनीनामिहालयः पालयते स्वसङ्घम् ॥ ६१ ॥
 पितेव तं रक्षति योऽङ्गमध्ये, प्रासाद उच्चद्रुचिरार्हतोऽस्ति ।
 श्रीविश्वसेनाङ्गभुवा सनाथः, पाथःप्रेषवाङ्गिमनोविनोदी ॥ ६२ ॥
 यच्चैत्यमासाद्य विशालशृङ्गं, जयत्यदः पत्तनमेव लक्ष्म्या ।
 वस्तूनि नाना प्रतिसार्थमस्मात्, पुरः पुरो ढौक्यतेऽस्य भक्त्या ॥ ६३ ॥
 मन्ये चतुर्दिक्षु चतुर्मुखोऽयमुद्भूय रक्षाकरवत् पुरस्य ।
 अहर्निशं विघ्नविघातनाय, बिभर्ति कुन्तं वरदण्डकं(दं?)भात् ॥ ६४ ॥
 युधिष्ठिरो भीमरुचिः परेषु, यशोऽर्जुनः श्रीविजयस्य बन्धुः ।
 कुन्तानुरागी सहदेवसेवोऽस्त्यत्रोदयात् सिंह इति क्षितीशः ॥ ६५ ॥
 गभीरनीरान्तरजैस्तरङ्गैः, सरस्सजत्यत्र तटद्रुबन्धून् ।
 तेऽपि स्वशाखापवनैश्च पुष्पैः, सन्तर्पयन्त्येतदतिप्रसज्य ॥ ६६ ॥
 वारांनिधिर्मन्थनजातभीतिः, प्रीतिं महारण्यवरेण कृत्वा ।
 सदोपसंपद्य पुरं च लङ्काशङ्काकृदस्थात् सरसीमिषेण ॥ ६७ ॥
 गवाङ्गणः सर्वदिगङ्गणेषु, प्रातः प्रसारी चरणाय यत्र ।
 मूर्तेव कीर्तिर्नगराधिभर्तुः, क्रीडां चरीकर्तुमिव प्रयाति ॥ ६८ ॥

इतश्च -

श्रीमद्गुरुणां करुणाकटाक्षः, पयोदवृन्दं परितस्ततान ।
 तद्विद्युता मूर्तिमताऽसिनेव, व्याक्षेपि दुर्भिक्षकरालरक्षः ॥ ६९ ॥
 तप्तिर्विलीना तरवोऽपि पीना, मीना जले केलिकलां विचक्रुः ।
 दीना नदीनामपि गन्धवाहाद्, वाहा इवोत्साहमधुप्रवाहाः ॥ ७० ॥
 सन्तापिता भूः खलु बलभा नः, क्रूरेण शूरेण करप्रयोगैः ।
 इतीव वैराज्जलदोऽपि धाराकरैर्ममर्दाम्बुजिनीमुखाब्जम् ॥ ७१ ॥
 अन्तद्रुमाम्भःसरसश्छलेन, तटस्थमाद्यन्महिषीगणस्य ।
 भूभामिनी कज्जलरेखितं द्राग्, विधाय चक्षुः किमिवैक्षताब्दम् ॥ ७२ ॥
 मत्ता महिष्यो भुवि पीनपुण्यपयोधराः श्यामतयाऽतिरम्याः ।
 दिनाधिनाथेऽम्बुधरेण रुद्धे, स्थाने विचेलुर्विभयं सवालाः ॥ ७३ ॥
 विनाम्बरं योगिजने प्रसाद उन्मादसादः खलु विप्रयुक्ते ।
 दुर्भिक्षनाशाद् हसितेव पुष्पैर्जातिः पयोवाहसुहृन्ननर्त ॥ ७४ ॥
 एकातपत्रे जलवाहराज्ये, प्रसृत्वरे स त्वरतिप्रदेऽस्मिन् ।
 उदङ्कुराभूः समभूत् समग्रा वियोगनाशादिव नीलवासाः ॥ ७५ ॥
 बभुर्वलीकेषु पृष्णमिषेण, सतां मनोभिः सह निर्मलानि ।
 सुभिक्षपक्षक्षितिनाथदेशप्रवेशजातक्षणमौक्तिकानि ॥ ७६ ॥

॥ इति प्रावृड्वर्णनाष्टकम् ॥

अथ समाचारः -

वर्षासु हर्षातिशयादिहैवं, प्रगे मया संसदि सज्जनानाम् ।
 स्वाधीयते ह्युत्तरपूर्वशब्दा-ध्यायो निकायः प्रशमोदयस्य ॥ ७७ ॥
 श्रीमद्गुरोर्वर्णनयानुषक्तं, व्याख्यायते शान्तिविमोश्चरित्रम् ।
 ततो यथार्हं मुनिपाठनाद्याः, क्रियाः क्रियन्ते विधिसावधानाः ॥ ७८ ॥
 क्रमेण लब्ध्वाभ्युदयं सुपर्वं, सांवत्सरं पर्वशतैः परीतम् ।
 श्रीधर्मभूमर्तुरिवर्तुषट्के, भोग्यं सदुद्यानमतिप्रसन्नम् ॥ ७९ ॥
 जनः समासाद्य जिनाधिराजस्त्रात्रैर्मुमोचाङ्गमलीनभावम् ।
 तद्धर्मकर्मोत्सवदष्टितुष्टः, शस्त्रप्रसक्त्या जलदस्तथैव ॥ ८० ॥
 गुरुरूपदेशोदभरैर्नराणां, प्रशान्तिमायात् प्रतिथानलोऽपि ।
 इरम्मदः खेऽपि शशाम नाम, स्थाने मुनेरागमनान्न किं स्यात् ॥ ८१ ॥
 द्वीनेषु दानानि वदान्यलोकः, प्रचक्रमे दातुमिहाक्रमेण ।
 तदग्रतो दातुमिवोत्सुकोऽन्दस्तदङ्गलौ स्थापितवान् जलं खम् ॥ ८२ ॥
 न्यवारि मारिः पटहात् पशूनां, जनेन संपूर्य धनैस्तदाशाम् ।
 जलैस्तदाशाः परिपूर्य सर्वा, जगर्ज मेघोऽपि नृमारिवारी ॥ ८३ ॥
 जिनेन्द्रपूजा गुरुवन्दनासु, श्रद्धालुराधाद् बहुवर्णचित्रम् ।
 वैकक्षमैरावतमम्बुवाहो, न्यग्भूय पीताब्धिमुनिं निनंसुः ॥ ८४ ॥
 क्षेत्रेषु सर्वेष्वपि कल्यशालिः, क्षणैर्यथावापमवाप शोभाम् ।
 आकर्णदेशं शिखयेव पट्टावहया युतः सत्फलसंभवेन ॥ ८५ ॥
 प्रतिप्रदेशं क्रमतः प्रसादं, सतां मनोवत्समियाय नीरम् ।
 निःपङ्कताऽभूद् भुवने द्विधापि, सन्मार्गचारः कमलोदयश्च ॥ ८६ ॥
 निरन्तरायः समवाय एष, पुण्यस्य शस्यो द्युसदां स्थलेऽपि ।
 अदीपि दुःपापदशां पिधाय, तच्चेष्टितं श्रीगुरुपर्युपास्तेः ॥ ८७ ॥

अथैवं समाचारसूचनद्वारा सेवाव्यवस्थापने सति क्रमाकान्तं श्रीपरमगुरुवर्णनं सूचयन् भाग्यवादी आह -

श्रीमद्गुरोर्गीयत एव भाग्यं, द्विधा सुधर्मासु सता सभासु ।
 यस्य प्रभावात् प्रभुताऽद्भुताऽभूत्, तपागणे देवमणेरिवार्च्या ॥ ८८ ॥
 सूरिशितुः श्रीविजयादिदेवस्याङ्गाद् गुणानां गणवत्सु मूर्तिः ।
 स्फूर्तिं विधत्ते तदयं प्रदीपात्, प्रादुष्कृतो दीप इव व्रतीशः ॥ ८९ ॥
 अहो महोभिर्मरुतामधृष्यैर्भालं विशालं बहुभाग्यशंसि ।
 प्रत्यक्षमेवैक्षत एव सूरः, सुरांशुपूरेण निबद्धसख्यम् ॥ ९० ॥
 स्वयंवरां श्रीविजयादिदेवैः, सज्जीकृतां शासनराज्यलक्ष्मीम् ।
 लेभे स्वभाग्यात् प्रभुरद्भुताङ्गो, युक्तं यतः श्रीर्ननु वीरभोग्या ॥ ९१ ॥
 यदिष्टदिष्टैः करवालधाराप्रायैर्विकालः खलु खण्ड्यमानः ।
 नाभूत् सुराष्ट्राविषये प्रसारी, ध्यायेत कस्तं न युगप्रधानम् ॥ ९२ ॥
 देवे गुरौ सत्यपि धर्मधीरे, याऽऽसीन्मुनीनां शिवपूरगम्या ।
 यस्याधिपत्येऽभ्युदितेऽधिभोग्या, साऽभूदतो युक्तमिहैष वीरः ॥ ९३ ॥

वराकपाका इव केऽप्यशक्ता, अन्तर्बहिः श्यामलतां भजन्तः ।
नूनं यदाज्ञाविमुखा भवेयुः, पराभवा वा सदृढप्रबन्धाः ॥ ९४ ॥
पुण्याढ्यभूमर्तुरिवेशभाग्यं, कश्चिद्विपश्चिद् यदि वक्ति युक्त्या ।
तं ब्रूमहेऽशुद्धधियां पुरोगं, क्षोदक्षमो नास्य यतो विमर्शः ॥ ९५ ॥
लब्धप्रशंसो भुवनेऽस्य वंशः, सौन्दर्यमर्यस्य मनोजवर्यम् ।
कलाकलापः सकलातिशयी, धीरेषु रेखा प्रथमा विशेषात् ॥ ९६ ॥
आकस्मिकत्वात् सुकृतोदयस्य, तौल्यं विकल्प्येत विकल्पशिल्पैः ।
वाच्यस्तदोदाहरणे धुरीणः, सविक्रमो विक्रमभूमिभर्ता ॥ ९७ ॥
सौभाग्यकल्पद्रुममञ्जरीयं, डिण्डीरपिण्डीकरणा पयोधेः ।
कृतज्ञतार्वेणिलताप्रसूनं, गोष्ठीपदं केलिकलन्दिकानाम् ॥ ९८ ॥
श्रीमान् प्रभुधार्मिकपुङ्गवानामगण्यपुण्यैर्जनितो विधात्रा ।
वैदुष्यसीमामहसां निधानं, सन्धानभूबोधचरित्रयोश्च ॥ ९९ ॥
यद्भाग्ययोगेऽभ्युदितेऽभ्युदीतः, प्रतीतनामा तपगच्छ एषः ।
ज्ञानक्रियाशालिषु निर्विशेषं, सामान्यताध्यक्षतयैव वेद्या ॥ १०० ॥

अत्राहुः - सत्यम् -

किं भाग्यसंवर्णनयाऽनया हि, नयाश्रयात् केवलया बलं स्यात् ।
उपासनाऽप्यस्य गुरोर्गिरिष्ठा, पुण्यस्य देवस्य गुरोः कृतेष्ठा ॥ १०१ ॥
आबाल्यतो ब्रह्मनिषेवणेन, सूरिद्वितीयोऽजनि चञ्चलसूरेः ।
दूरेः प्रसर्पन् विजितः स्मरस्तत्, स्त्रीभ्रूधनुर्निर्गुणमेव धत्ते ॥ १०२ ॥
दानं प्रकृत्याऽस्य परोपकृत्या, निभाल्य लज्जामलिनोऽवनम्य ।
स्वकण्ठपीठे किमिवाम्बुवाहः, खड्गं तडिद्वण्डमिषादधत् ॥ १०३ ॥
मन्ये कलेर्भीतिमिव प्रतीतं, धन्यान्गारादितपःसमग्रम् ।
गुरौ श्रितं बीजमिवाङ्कुरौघस्तस्येव शीर्षं महसां समूहः ॥ १०४ ॥
गाढानुरक्ता दयितेव सूरैर्जने दया चित्तमिव प्रविष्टा ।
तत्किं तदीया ननु विस्मरन्ति, भावा विभावानुगताः स्वभावात् ॥ १०५ ॥
अहर्निशं ध्यानविधावधानाद्, भक्तिर्जिने शक्तिरिवाङ्गजन्मा ।
स्पष्टैव निष्ठङ्क्यत एव देवे, गुणा गुणेष्वेव रजन्ति जाता ॥ १०६ ॥
अवास्तवैर्द्रव्यबहुस्तवैः किं, भावस्तवस्यार्थसमर्थनं स्यात् ।
तद्व्यानलेशोऽभिनिवेशशून्यो, महोदयं प्रापयति प्रसह्य ॥ १०७ ॥
चारित्र्यलीलालितैर्मुनीन्दुस्तनोति षट्कायनिकायरक्षाम् ।
तद्विस्मयान्निश्चलशीर्ष एव, क्षमां निधत्ते कलयैव शेषः ॥ १०८ ॥
उपासना स्वीयगुरोरेन, मुनीन्दुनाऽकारि विकारमुक्ता ।
साक्षी जिनस्तत्र गुरुस्ससिद्धः, स्वात्मा च देवः सकलस्त्रिलोक्याम् ॥ १०९ ॥

यः स्याद् बहुस्वार्थनिबद्धबुद्धिः, स चर्मचक्षुर्विषयामुपास्तिम् ।
 करोति तत्त्वे तु निविष्टदृष्टिस्त्रिधापि तत्राभ्यधिकं हृदेव ॥ ११० ॥
 अवामनन्ते न मनोऽखिलार्थप्रसाधने ज्ञानधनैर्निर्णीर्णम् ।
 तपःक्रियाबोधनिरोधनाद्यैः, सिद्धं मनः पारदवत् स्वसिद्ध्यै ॥ १११ ॥

वयं तु पश्यामः—

श्रीइन्द्रभूतिः प्रथितोऽस्ति शास्त्रे, श्रीवीरसंसेवनकर्मधीरः ।
 हेतुं पुनः प्राप्य जनप्रबोधादिकं स दूरे विजहार देशे ॥ ११२ ॥
 आदीक्षणाञ्जैनपदाब्जसेवी, देवीभिरुद्गीतयशाः सुधर्मा ।
 पट्टेशिताऽभूत् स इवैष सूरिगुरोरुपास्तेर्ललितं तदेतत् ॥ ११३ ॥
 तस्मात् कृतं केवलभाग्ययोगव्यावर्णनैर्येन गुरावनेके ।
 कृताश्रयाः सन्ति गुणा यदीडाविधौ विधिर्न प्रभुरग्रधीमान् ॥ ११४ ॥
 तदस्तु वस्तु प्रतिपत्तिहेतुः, सेवैव देवैरपि कांक्षणीया ।
 यस्याः स्मृतौ श्रीगुरुराजमग्रे, प्रत्यक्षतो लक्ष्यमिवानमामि ॥ ११५ ॥
 एवं विवादे बहुभाग्यलभ्यान्, सभ्यान् परीक्षाकरणे महेभ्यान् ।
 नमाम्युपाध्यायगणद्विपेन्द्रान्, श्रीमद्विनीताद् विजयाभिधानान् ॥ ११६ ॥
 लक्ष्मीसलक्ष्मीकृतपूर्वलक्ष्मीः, परः स लक्ष्मीविजयः कविस्तम् ।
 पयोधरस्पर्धनधीररावं, पार्श्वस्थभावेन बलान्नमामः ॥ ११७ ॥
 प्रभोः पदाम्भोजरसोपलम्भाद्, भृङ्गायितं यैः सुधियां वरेण्यैः ।
 तान् वादसंवाददृशेऽवनम्रानन्वानतः श्रीरविवर्द्धनाख्यान ॥ ११८ ॥
 लघौ गुरुत्वं च गुरौ लघुत्वं, संस्थापयन्तो भगवन्नियोगात् ।
 प्राज्ञा यशस्तो विजयाः सदाराधना धनादेर्विजयाः कवीन्द्राः ॥ ११९ ॥
 सतत्त्वतत्त्वाभिनिविष्टबोधास्तत्त्वादिसम्यग्विजया गणीन्द्राः ।
 श्रीहेम-सौभाग्य-जयादयोऽन्ये, गणिप्रधाना गुरुसन्निधानाः ॥ १२० ॥
 युक्तोऽत्र हर्षाद्विजयेन नाम्ना, तथा जयादेर्विजयाभिधेन ।
 गुरुप्रसादासबहुप्रमोदश्रिया प्रमोदाद्विजयाह्वयेन ॥ १२१ ॥
 नत्वाऽनुनम्याथ यथार्हमेतान्, गुरोः पुरोऽहं विनिवेदयामि ।
 विज्ञप्तिमेतामनुभाव्य सद्यः, प्रसद्य देयं ननु पत्रकं मे ॥ १२२ ॥
 पादान्तभाक्त्वेन लघुगुरुः स्याच्छन्दस्तदावेदयते प्रमाणम् ।
 भाष्येऽपि सिद्धं गुणतः प्रसिद्धे, शब्देन जातेर्विषयी विमर्शः ॥ १२३ ॥ इति रहस्यम् ॥
 श्लेषात् कचिलक्षणया कचिद्वा, वैचित्र्यभृत्यत्रपिकाह्वपत्री ।
 श्रीमत्प्रभोर्मानसकल्पवृक्षे, विश्राम्यतां रम्यगिरा प्रमोदी ॥ १२४ ॥
 पश्चाद् गुरोर्दृष्टिसुधाप्रवाहैराप्लाव्यमानं दलमेव देयम् ।
 स्मार्यश्च कार्येषु जिनार्यनामे(?), भुजिष्यमुख्योऽस्त्विति मङ्गलश्रीः ॥ १२५ ॥

तपोगच्छपतिश्रीविजयदेवसूरिं प्रति श्रीविजयसिंहसूरिप्रेषिता

[९] — विज्ञसिका —

[आदौ श्रीमहावीरजिनवरनमस्काराः ।]

स्वस्तिश्रीमुद्यदुद्यदुद्यसदधिपनमन्मौलिमौलिस्थरत्न-प्रोत्सर्पदीप्रदीप्तिप्रकरश्चरभरोन्मग्नमूर्तिः स्वयं यः ।
चित्रं नानाभवाविर्भवभयसलिलोन्मज्जदङ्गिजजेभ्यः, प्रस्फूर्जद्भक्तिभाग्यो जगति जिनपतिस्तारयेत् स श्रिये स्तात् ॥१॥
स्वस्तिश्रीपृष्ठभासः क्रमणनखभुवः सर्वदिङ्मण्डलेषु, प्रांशुप्रत्युग्ररज्जुव्रजवदिव समाकर्षयन्त्यः स्फुरन्ति ।
सङ्ख्यः किं दत्तुकामाः प्रभवसमरमा अच्छदिग्वैभवस्य, यस्योच्चैर्वश्यभावं नयतु स भगवान् माद्यदन्तर्विपक्षान् ॥२॥

स्वस्त्यस्माभिः समत्वं किमवयवनखैस्तज्जिनेन्दोः पदानां,
लब्धुं शक्नोति साकं स्वदशशतकरैरप्यहो ! व्योमरत्नम् ।
यस्मादन्तस्तमोघा वयमिति च हसन्त्युच्छ[ल]द्भिः करैस्तं,
यत्पादोद्यन्नखौघाः स मयि निजदशौ[शा] तुष्टिपुष्टी विदध्यात् ॥ ३ ॥

स्वस्तिश्रीसमवायि वीरभगवत्पादद्वयं स्तान्निजाद्वैतध्यानविधानशुद्धमनसां तच्छ्रेयसे भूयसे ।
नम्राखण्डलमण्डलप्रतिफलन्मौलिस्थमौलिस्फुरन्मालालीसुमनोव्रजः किमपि तत्तेजोऽभजद् यद्गुणात् ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रीप्रतिबद्धरागरसिका यत्पादकामाङ्कुशाः, प्रोच्चैः स्वीयकरप्रसारकरणैः संसूचयन्तीति किम् ।
अस्मद्वच्चरणाश्रितौ भगवतो ये रक्तचित्ताः स्वयं, ते केनोर्ध्वगतिं भजन्ति सततं निश्छिद्य सद्यस्तमः ॥ ५ ॥
स्वस्तिश्रीरिति यस्य शस्यचरणाम्भोजन्मयुग्माश्रितैः, श्रीरेव प्रतिवासरं समभजत् स्वस्मिन् प्रकृष्टान्वयम् ।
मन्ये तच्च विचित्रकृद्भगवतो यद्भक्तियुक्ताङ्गिनः, सद्यः स्वस्तिसमन्विताः प्रतिभवं भूयासुरस्मिन्न के ? ॥ ६ ॥
स्वस्तिश्रीरिव नः समाश्रयकृतेरासाद्यतां वन्द्यतां, स्वर्लोकादिजगन्त्रयेषु भविनः संवीक्ष्य किं सम्मुखम् ।
जल्पन्तीति करप्रसारकरणाद् यत्पादकामाङ्कुशाः, स श्रेयस्तनुतां सतां स्तुतिकृतां तां तां ततां तां पुनः ॥ ७ ॥
स्वस्तिश्रीर्बहुरूपिणां समभजद् विद्यां यदं हि श्रयात्, तद्भक्तिप्रणताङ्गिनोऽनुगमनाद् यस्यानुभावात् स्फुटम् ।
तत्सत्यं यदनेकनम्रभविभिस्तत्पादकामाङ्कुशश्रेणीषु प्रतिबिम्बितैः प्रतिदिनं कैः कैर्न साऽऽसाद्यते ॥ ८ ॥
स्वस्तिश्रीपरिभूषिताः प्रतिदिशं यत्सन्नखाभीशवो, दीप्यन्ते किममर्षतस्त्विति सदा रक्तास्तमोर्ध्वसिनः ।
अस्मद्भक्ति[कृ]तां कथं परिभवत्येतज्जगज्जन्मिनां, स श्रेयोव्रततीततीनवधनः श्रीवर्धमानः श्रिये ॥ ९ ॥
स्वस्तिश्रीप्रतिपूर्णतां तनुमतां दत्तां स वीरप्रभुर्यस्योद्यन्नखराः करैर्दिशि गतैः किं ज्ञापयन्तीत्यहो ! ।
अस्माकं द्युतिनिर्गेषु विहितैः स्नानैः शुचीभूय भो !, श्रीमन्तः ! प्रतिपद्यतां नतिकृतेः शस्यात्मतां जन्मिनः ॥१०॥
स्वस्तिश्रीस्मितवारिजन्मवदना वक्षःस्थलस्थायिनी, मुक्ताहारलतेव यत्क्रमभवस्फूर्जद्भक्त्यानां ततिः ।
तस्याः किं स्फुरदोष्ठसंक्रमणतश्चञ्चलवालद्युतिर्भाति स्वस्ति तनोतु वः स भगवान् श्रीत्रैशलेयो जिनः ॥ ११ ॥
स्वस्तिश्रीततिसन्ननः परिणमक्ष्मपैः स्वयं मूर्ध्नि यान्, धृत्वाऽऽसादि समस्तशस्तकमला दुष्टांहसां च क्षयः ।
लिप्सोस्तत्तुलनां ह्रियोऽपि नहि तेनोकैः पुरस्कुर्वतः, सूर्य यस्य नखाः करैरिव हसन्त्येवं स वः श्रेयसे ॥ १२ ॥
स्वस्तिश्रीजनकोऽस्तु यन्नखततिर्भास्वत्करैः संनमत्, सन्मौलिं परिमृज्य सम्मुखमिवाऽऽलोक्येति वक्ति स्फुटम् ।
चेदग्न्यन्तरदुस्तमोहतिपरास्तन्नः स्वचित्ते स्थितिं, धत्ताऽस्मत्स्थितितः प्रयाति न कुतो यस्मात् तमः सर्वतः ॥१३॥

तस्यास्त्वस्तु जिनेश्वरस्य चरणोद्धूतप्रभूतप्रभा-स्फारीभूतनखोत्करस्य च रवेः साम्यं कुतश्चिद् गुणात् ।
 एकं किन्तु समाश्रिता अपि विभामाद्यत्तमोनाशिका, नीचैस्तत्परमाश्रितास्तु नितरामुच्चैर्गतिं प्राप्नुयुः ॥ १४ ॥
 स्वस्तिश्रीगरिमागरिष्ठभगवान् सत्पुण्यपुष्टः प्रथं, शिष्टानां श्रयतां सतां यतिमतां तन्यात् प्रकृष्टं(ष्टां) श्रियम् ।
 यस्योद्यन्नखरोच्छलत्करभरः पिण्डीकृतस्तर्क्यते, रागः संस्तुवतां जयादिव पदे लग्नोऽस्ति रागोऽथवा ॥ १५ ॥

स्वस्तिश्रिया समधिगम्य यतः प्रसारं, मन्दारतो व्रततिवन्मस्तां प्रजग्मुः ।
 सच्छायकायस्चिरः शरणं भवान्तर्भ्रान्ताङ्गिनामिह स मोक्षफलं प्रदत्ताम् ॥ १६ ॥
 स्वस्तिक्रमाब्जनखदर्पणमण्डलेषु, यः पश्यति स्ववदनं नतिकृत् प्रभाते ।
 श्रीवर्धमान इव कः खलु वर्धमानो, न स्यात् स यन्नयविदुक्तिरनन्यथा स्यात् ॥ १७ ॥
 स्वस्तिप्रशस्तपदपद्मपुनर्भवश्रीसंक्रान्तमद्भुततरशि विलोकयन्ति ।
 पद्मं तडाग इव वक्त्रममर्त्यगौर्यश्चित्रं तदत्र जडतोपचितं न तद् यत् ॥ १८ ॥
 स्वस्तिश्रियाऽऽश्रितविशिष्टपदारविन्दद्वन्द्वस्य यस्य जिनपस्य समाश्रयेण ।
 आमोदलब्धिरभवन् मधुपायितानां, चित्रं समापि मधुपत्वमहो ! नैतैर्यत् ॥ १९ ॥
 स्वस्तिश्रियं प्रथयतात् प्रथितां स देवो, यस्य प्रभोर्जगति चित्रकरं चरित्रम् ।
 स्वर्वासिमौलिमणिकान्तिजलाशयेषु, स्वस्नानतोऽतिविमलीकुस्ते स्म तान् यः ॥ २० ॥

स्वस्तिश्रीभिर्मास्वदस्याऽहियुग्मं, यत् संस्ताभिः श्रीयते तच्छ्रयेण ।
 यद्वद् वृक्षैः सङ्गतेश्चन्दनस्याऽऽमोदाश्लिष्टैर्भूयते नैव कैः कैः ॥ २१ ॥
 स्वस्तिश्रीमिस्तत्पदं शिश्रिये आ(स्त्रा)ग्, मत्वा तत्त्वाश्रित्य बाह्यां किमाह्वाम् ।
 यस्मादस्मिन्नो तदन्या भवान्तर्भ्रान्तिश्रान्तश्रेणिकानां पदासिः ॥ २२ ॥
 सत्पादाम्भोजनपद्माङ्कितं यत्, तस्मात् तत् स्यात् तन्निधानावलब्धिः ।
 युक्तं यत्सान्वर्थसृष्टिविधातुर्यद्वल्लोके शीतरश्मिः सुधांशुः ॥ २३ ॥
 मन्ये गत्वा तत्पादाम्भोजपद्मा, चौर्यं पद्मं तोयदुर्गं प्रविष्टम् ।
 पश्चा[दा]दचौरवत् तत् तदादि, तस्माल्लेभेऽन्तःपुरःस्थायितां नो ॥ २४ ॥
 तत्तन्नापि प्राप तत्तुल्यभावं, किन्तु स्वस्मिन् दूषणं पङ्कजत्वम् ।
 युक्तं यस्माद् यद् यदूर्ध्वं विधत्ते, स्वः सलोकस्तत्तथा किं तदन्यत् ॥ २५ ॥
 साम्यानाप्तौ स्पर्धितस्याभवत् तत्, पद्मं लब्ध्वाऽगाधपानीयदुर्गम् ।
 मत्वा तत्सत्पादपद्मः स्वरूपं, मन्ये जज्ञे कोपटोपात् स रक्तः ॥ २६ ॥
 पश्चाद्धत्वा वज्रचक्रादिचक्रं, तत्पादस्तत् स्वीयलक्ष्म्या जिगाय ।
 अप्युच्चैस्तं जाड्यदुर्गप्रभेदं, सल्लोकानां निर्मिमीते तदादि ॥ २७ ॥
 तस्मान्मन्ये तत्पदस्यैव भीत्या, पद्मश्रेणिः कम्पतेऽद्यापि नित्यम् ।
 गुञ्जद्वायुप्रेरिताङ्गच्छलेन, किं नैजं तं तोयदुर्गं प्रविश्य ॥ २८ ॥
 चित्रं चित्रं यस्य सत्पादपद्मो, नीरागोऽपि स्पष्टरागी स्वयं यः ।
 भक्त्या नम्रप्राणभाक्षु द्विधाऽपि, तद्धर्ता यत्तद्विशेषाञ्जनानाम् ॥ २९ ॥
 तं लब्ध्वाऽपि प्राणभाजो भजन्ते, तन्नः सिद्धिद्रङ्गवासं परत्र ।
 चित्राच्चित्रं तत्सतामेति चित्ते, किं वा सन्तोऽचिन्त्यमाहात्म्यभाजः ॥ ३० ॥

किञ्चिन्निजध्यानविधानतो यो, नयँस्त्रिलोकीं निजवश्यभावम् ।
 विश्वत्रये यः किल पूज्यतेऽहंश्चित्रं स लेभे नहि धूर्तभावम् ॥ ३१ ॥
 य उत्तमानामिह मध्यवर्ती, जहाति नो मानसतस्करत्वम् ।
 विचित्रकृत् तस्य चरित्रमेतत्, श्रीवर्धमानस्य विलोकयन्तु ॥ ३२ ॥
 धत्ते स वज्रप्रमुखान् स्वपाणावपि स्फुटं हन्ति विपक्षपक्षान् ।
 निश्छिद्य पापानि तथापि लेभे, सिद्धिं स्वयं तत्खलु चित्रकर्तृ ॥ ३३ ॥
 चोद्यं कथं मुक्तिपदप्रगामी, भवेज्जिनेन्द्रस्त्रिशलाङ्गजन्मा ।
 अद्यापि यावन्महतां मनोभ्यः, स्पष्टं समाप्नोति न यश्च मुक्तिम् ॥ ३४ ॥
 चित्तं सतां वासगृहं विधाय, तत्र स्थितस्तद्विमलीकरोति ।
 यः श्रीजिनाधीश्वरवर्धमानश्चित्रं तथाप्येष ममत्वभृन्नो ॥ ३५ ॥
 यं संस्तुवन्तः पुनरेव निन्दापरायणाः स्त्रोचितमाप्नुवन्ति ।
 शुभाशुभं यच्चरणाद् विचित्रं, स रागविद्वेषहरस्तथापि ॥ ३६ ॥
 अगम्यलक्ष्मीरपि योगिनां यो, न दानदाता तदपि क्षमायाम् ।
 तदेकरक्तात्मिजनव्रजस्य, चित्रं तथाप्येष समीहितप्रदः ॥ ३७ ॥
 येभ्यो जिनाधीश्वरयोगभृद्भ्यः, कदापि नो दूरतरं भवान् यः ।
 तेषां न दत्ते निजगम्यभावं, चित्रं स कर्पट्यधरः कथं नो ॥ ३८ ॥
 जिनाधिपानां कलनीयरूपं, किञ्चिच्चरित्रं भुवने त्वदीयम् ।
 जाग्रन्महिम्नाऽपि निवासगेहं, मनःकृतं यत्परमाणुरूपम् ॥ ३९ ॥
 स्वस्तीन्दिरा यस्य सदैव सेवां, तदेकलुब्धा सरसां विधत्ते ।
 सच्छङ्ख-पद्मावपि यो विभर्ति, स्वपाणिपद्मे स तथापि दुर्गतः ॥ ४० ॥
 भक्तिप्रगल्भाङ्गभृतां मनोब्धिमध्यं वचोवीचिगणास्तु यन्तः ।
 यथा यथा जग्मुरहो ! तथा तथा, चित्रं बभूवेत्यजडाशयं तत् ॥ ४१ ॥

[नानाविधचित्रालंकारमयानि पद्यानि ।]

जनानां विहितामोदं वन्दे श्रीवीरतीर्थपम् । परमश्रीप्रदं देवं दमकानननीरदम् ॥ ४२ ॥ — मुशालबन्धचित्रम् ।
 जनय श्रीजिनाधीश ! भववारक ! सन्मत ! । तत्त्वज्ञ ! ज्ञत्वतत्सार ! रसातं तत तं ततः ॥ ४३ ॥ — त्रिशूलम् ।
 जङ्गनीतु ततं सातं तत् स मेऽर्हन् ! सदा भुवि । विभुर्दासजगल्लोकः कलोदयिकलायुतः ॥ ४४ ॥ — शङ्खः ।
 जम्भजिद् भक्तिभरभाग् यस्य तं संस्तुवे समम् । भतिमन्तमहं मत्यमममत्वमतामसम् ॥ ४५ ॥ — चमरम् ।
 जगत्तारकविस्तारि गम्भीरवरवाक्चयम् । यशोभरलसद्राजजगद्व्याप्तततश्रियम् ॥ ४६ ॥ — श्रीकरी । युगम् ।
 जय त्वं जगदानन्दप्रद ! प्रास्तमहद्भय ! । यन्नसः(?) स्तुतिकृद्विश्वदैवतो दममोदरः ॥ ४७ ॥ — हलबन्धः ।
 जन्तुजातजयश्रीस्तत्, तन्याद् वः परमं पदम् । दरभूच्छायसङ्घाततरणिश्चञ्चदायतः ॥ ४८ ॥ — भल्लः ।
 जगदुद्धृतिमातन्यायवल्लीपयोधरः । रक्षितानेकभूपालो गतितर्जितसामजः ॥ ४९ ॥ — धनुः ।
 जय श्रीकरपङ्कज ! निजामलकुलध्वज ! । जगदुद्धर वीर ! त्वं प्रमदप्रकरं ददन् ॥ ५० ॥ — द्वाभ्यां खड्गः ।
 जनुर्जराहकंससम्भेदसुरपानुज ! । जलोद्यत्सदधनारावराजद्रुणभरो जनुः ॥ ५१ ॥ — शक्तिः ।
 जन्मिनां मङ्गलव्रातं जनय श्रीविभो ! ततम् । शमश्रीललनाहृतसङ्ग ! विश्वविबोधकृत् ! ॥ ५२ ॥ — छत्रं । युगम् ।

नतामानमायानघाले नमस्या, नरस्य(स्ये?)न चन्द्राननश्रीर्नमस्ते ।
 असामाहुतायागदाले ममास्या, न तस्येह मद्राम्बुजश्रीगभस्ते ॥ १९२ ॥ - द्वितीयमध्यमणिः ।
 यशःपूरिताशं तमोनुन्नपाशं, भजामो जयश्रीपयोजैकभानुम् ।
 तवाहिद्वयं सूरिसत्पञ्चवक्त्रप्रभ ! प्रीणितप्रस्फुरत्सर्वभूप ! ॥ १९३ ॥
 रमाभारविस्तारसत्सारकारं, स्मिताशं वरश्लोकसोमैकभासा ।
 तपोद्युम्नभाजं हताकामसार्थं, नमस्यामि तं संहरन्तं विशङ्काम् ॥ १९४ ॥
 तनुश्रीप्रभो ! ज्ञानदानं विशालं, मयि प्रततन्वस्वधैर्यासमान ! ।
 महामोहमत्तेभनाशप्रकृष्ट !, द्विपारेः समक्रीडितस्वस्तिवास ! ॥ १९५ ॥
 कपाटभवक्षःस्थलं राजमान(नं?), स्फुरत्कीर्तिकम्रं सृजन्तं गतारा(र)म् ।
 सुलोकावलीं संश्रये रञ्जितोद्यजनौघं वसुस्फारसद्दीप्तिभारम् ॥ १९६ ॥
 कुकर्ममत्तद्विपदन्तिशत्रुर्महद्भुनिः कामितकामकुम्भः ।
 रङ्गदुण्डुण्डमन्दमुदः प्रकुर्यात्, तमःप्रहर्ताऽमितमोहभेत्ता ॥ १९७ ॥

- मध्यमणिद्वयमण्डितवृत्त ३ पदकडीकलितहारबन्धचित्रम् ।

कुशलकमलासम्यक्चन्द्राननातिलकप्रभ ! । प्रवरनखरप्रख्यातश्रीप्रबर्हकरव्रजः ॥ १९८ ॥
 यतिततिपतिः सन्तं ततं ददन् प्रमदं प्रति । नयनुतं परं सातं कान्तं नमत्सकलासुर ! ॥ १९९ ॥

- दवरककाव्यम् ।

नयेऽहं तरुणीगीतवरानन्तयशोभरम् । रङ्गद्वनाघनारावं तं नुतिं धीरतानगम् ॥ २०० ॥ - मुशलम् ।
 नमस्यं श्रीकरं सत्त्वचित्तेप्सितमरुन्नगम् । गणतातानगन्ताररतागं सुममंसुगम् ॥ २०१ ॥ - त्रिशूलं । यमलम् ।
 ननममत्यसा पापं सापारश्रीदमच्छगम् । गच्छमन्दम्भसम्भाररम्भागर्जदनेकपम् ॥ २०२ ॥ - शङ्खः ।
 नय त्वं तपसा पञ्चप्रमाददनोऽज्ञपः । परमः ससमत्वश्रीश्रीसम्भारं रसज्ञ ! ॥ २०३ ॥ - श्रीकरी ।
 नमस्तमस्तमक्षिप्रभेदतत्पर ! नैकप ! । परपद्मापरम्परापरास्पद पदापत ॥ २०४ ॥ - चामरः ।
 नतमादं महोधामापमानारामयाऽस्ति तम् । तत्त्वभृत्त्वां महद्दुध्यानं भजे महत्सु साहसम् ॥ २०५ ॥ - हलः ।
 न मानस्विन्नयामोदं परमार्थप्रदैनसः । सदा क्षयंकरामन्ददमनन्ददयाप्रद ! ॥ २०६ ॥ - भलः ।
 नन्दाकंप्रभादक्ष ! स्तुत्येष्टप्रकरप्रद ! । दमिमानद ! सत्पादतुष्टिपुष्टी भवजन ! ॥ २०७ ॥ - धनुः ।
 नयसद्व(द्ध?)नकं दानसदागदविनाशन ! । नमामि त्वां सतां शर्मप्रदं परमसत्यन ! ॥ २०८ ॥ - दार्ढ्या खड्गः ।
 नमन्नरवराधाममतिप्रशमभृन्मन ! । नरानन्दद ! जीयास्त्वं यावारप्रकरानम ॥ २०९ ॥ - शक्तिः ।
 न सममहं प्रकामं नवीमि समनिर्भरम् । मम सद्देहतापायं महन्मद्रप्रदाभय ! ॥ २१० ॥ - छत्रम् ।
 नरौघाभिनतो वाम ! यमनाममनामयम् । यत्नतो हर सूरिन्द्र ! दमभाररभामद ! ॥ २११ ॥ - रथः ।
 ननु भानुसमीज्ञानगुणवद्भुस्तास्पद ! । दमी ननदरः कंजनयनो जय सच्छमी ॥ २१२ ॥ - कलशः ।
 नम मीमं न दामीमं मनमानद ! निर्भमी । मीमाभतारयो निन्दा मंनतानन्तरं दनम् ॥ २१३ ॥ - अर्धभ्रमः ।
 नतवासवनाङ्गन ! नगेनासमधीरतः । नरधीप्रद सद्दान ! नदा संगम्यवातन ! ॥ २१४ ॥ - कमलम् ।
 नमन्तु वरविद्यादिप्रदं कम्प्रसुलोचनम् । नराश्चञ्चदुणं तं श्रीविष्टरारामतासमम् ॥ २१५ ॥ - शरः । - त्रिभिर्विशेषकम् ।
 नव्यनिन्दां कजस्वांसं घ्नन्तं च सकलं तमः । मदमद्यमहामन्ददमधामसमं नम ॥ २१६ ॥ - मुद्गरः ।
 नक्षत्रदमिभिः क्लृप्तचक्षुःसर्ववरोद्गमः । मङ्गिन्दुरिव निर्भिन्द्याहुस्तमस्ततमीश ! नः ॥ २१७ ॥ - वज्रम् ।
 नन्दि वितनु सद्भ्यानिन् ! नद्धमाशु तमोगणम् । नराणां हर सद्दीतिनयशर्मप्रदः सदा ॥ २१८ ॥ - स्वस्तिकः ।

कलाशालिमहापायचाणुरैकमुरच्छिदम् । गणाधीशं जगद्ध्येयं यानरत्नं शिवाध्वनि ॥ २५० ॥
 ललितप्रस्फुरद्वाचं संकीर्तकृतनारकम् । कमलोपमपादाब्जं दलभीत्यपहाभिधम् ॥ २५१ ॥
 तुष्टचित्तः ससम्मोदं रञ्जितो मुखदर्शनात् । वन्दामि श्रीस्थिरासूतुं दर्शनस्य प्रभावकम् ॥ २५२ ॥

गतप्रत्यागतरीत्या परिधित्रयराजितं ९६ दलकमलबन्धचित्रम् । २४ कुलकम् ।

तपगणकमलविकाशनदशशतकिरणैकसममहं वन्दे ।

श्रीविजयदेवसूरिं कामितवरकामकुम्भनिभम् ॥ २५३ ॥— इयं परिधिः ।

तमपथदशशतकिरणं पञ्चजनवातशरणसमचरणम् । गणसिन्धुशीतकिरणं नवपातकपङ्कभरहरणम् ॥ २५४ ॥
 कमलैकतुल्यचरणं मदरेणुमरुत्समानताधरणम् । लब्धिविधिनीतिकरणं विश्वामण्डलविभाकरणम् ॥ २५५ ॥
 काश्यासममवनं सम्पूर्णप्रवरशीतकरवदनम् । नयनविभावरनलिनं दर्शनस(सं?)मोदिताङ्गिजनम् ॥ २५६ ॥
 शशधरकरवरसुगुणं संसारस्यैकतारणं तरणम् । तपनीयचारुकरणं कितवदिवान्धैकवरतपनम् ॥ २५७ ॥
 रवगर्जत्सजलघनं नैकमहःश्रीनिवासपदनलिनम् । काष्ठौघकंसभेदनसंवररिपुजनकतुल्यगुणम् ॥ २५८ ॥
 मदमत्तमहावारणमतङ्गजारिं मनोभवेशानम् । हंसगमनासमानं वरतेजःपादपालिवनम् ॥ २५९ ॥
 देवीविगीतगानं श्रीमद्गुरुविजयदेवनामानम् । विद्याक्षितिरुहकाननजलदसमानैकमहिमानम् ॥ २६० ॥
 यतनाविधाननिपुणं देशनया रञ्ज्यमानमघवानम् । वचनरचनासमानं सूरिसमज्यारमाभरणम् ॥ २६१ ॥
 रिक्तीभवदभिमानं कासारसमं महोजले तूर्णम् । मिषभेदविधिविधानं तन्त्रादिवशीकृतौ निपुणम् ॥ २६२ ॥
 वर्णितशास्त्रार्थगणं रम्यरमानिकरकेलिवरभवनम् । काश्यं गतततकदनं मन्दरगिरितुल्यमहिमानम् ॥ २६३ ॥
 कुमतिमदमृगमृगेनं भज भो जन ! प्रवरसूरिराजानम् । निजविद्योतितजननं भक्तमनोवनकुरङ्गेनम् ॥ २६४ ॥
 इन्द्राणीमनमोहनयशःसमूहं प्रसारिसज्ज्ञानम् । पण्डितसंशयहरणं रिपुगणसम्भेदिसद्भानम् ॥ २६५ ॥

— ४८ कमलदलम् । १२ कुलकम् ।

नवीमि सूरिराजानं ब्रह्माण्डसुयशोऽवधिम् । कल्पितानल्पदातारं सुराचार्यलसन्मतिम् ॥ २६६ ॥
 नन्दितानेकराजानं स्वस्तिश्रीश्रेणिसन्निधिम् । नुवामि दमिनां नाथं निर्मलाचाराजिनम् ॥ २६७ ॥ — कर्णिका ।
 श्रीमन्तं विगलद्भीतिं विशदस्वर्णवद्द्युतिम् । जगद्विस्तारिसत्कीर्तिं यशोजितनिशापतिम् ॥ २६८ ॥
 देवप्रशस्यसज्ज्ञातिवंशाकाशदिवापतिम् । सूरीन्द्रं विस्फुरन्नीतिं लिपिचञ्चुकृतस्तुतिम् ॥ २६९ ॥
 श्रीपर्णपर्णसद्वर्णं स्थिरराजस्य नन्दनम् । राजन्मोहितनाकीनं गणस्थगणतारणम् ॥ २७० ॥
 जन्तुसार्थकृतज्ञानं माननिष्पाद्यकारणम् । नुवामि सत्कलापीनमगण्यगुणधारिणम् ॥ २७१ ॥

— कमलोपरि चमरद्वयम् । ४ कलापकम् ।

कौककैककाकांकोकुक्केकांकाकाकः । कुक्कुक्ककिंकांकाकोककांकाककाकः ॥ २७२ ॥ — एकव्यञ्जनचित्रम् ।
 आनमेनममानामं नमन्मुनिमनूननम् । मुनीनामेनमुन्मानिन् ! मुने ! नेना अनाममम् ॥ २७३ ॥ — व्यञ्जनद्वयचित्रम् ।
 तत्तत्तां तनुतां तातानन्तानन्तेन तानतम् । ततनीति तते तेनानननूनेति तां ननु ॥ २७४ ॥ — व्यञ्जनद्वयचित्रम् ।
 ममोद्दाममहाकाममदहामम ते नमः । सद्रासममविनमन् ! मर्त्यानाममहागम ! ॥ २७५ ॥

— बीजपूरादि ९ चित्रमयश्लोकः ।

इत्थं सतां चित्रकरैः सुचित्रैः, स्तुवन्ति साध्यासुरमानवौघाः ।
यान् पूज्यपादान् सुरराजपूज्यान्, शिवाप्तये वाञ्छितऋद्धिवृद्धौ ॥ २७६ ॥

गतप्रमादैरपि सत्प्रमादैर्वक्त्राञ्जसन्तर्जितशीतपादैः ।
तैस्तातपादैरवधारणीयोपवैणवं भक्तिभृतो नतिर्मे ॥ २७७ ॥

प्रमोदपात्री पृथुहर्षदात्री, सम्यग्विधात्री हितहेतुमात्री ।
कल्याणकर्त्री निखिलार्तिहर्त्री, कृपैकपुत्री गुणपङ्क्तिधर्त्री ॥ २७८ ॥

इत्यादिगुणविशिष्टा सौवाङ्गारोग्यकथनचारुतरा । पूज्यैः प्रसादनीया त्वरितं प्रतिपत्रिसितपत्री ॥ २७९ ॥
किञ्च ममानुप्रणतिः प्रसादनीया प्रसादमासाद्य । श्रीतातचरणपङ्कजसेवनधन्यात्मनां शमिनाम् ॥ २८० ॥
तत्रत्यानां वाचककुलकोटिकिरीटरत्नतुल्यानाम् । निरवद्यहृद्यविद्याविशारदानां विमलधाम्नाम् ॥ २८१ ॥
वैयाकरणसुतार्किकसैद्धान्तिकपङ्क्तिबन्धशोभानाम् । परमोपकृतिरितानां विद्याधनदानधनदानाम् ॥ २८२ ॥
श्रीतातपादपादाम्बुजसौरभलीनचित्तवृत्तीनाम् । श्रीकुशलसागराणां सद्धर्मविधानकुशलानाम् ॥ २८३ ॥
लाभाणन्दबुधानां प्रशस्तसत्कर्तर्कनिपुणानाम् । श्रीपूज्यपादसेवाविधानसंलब्धश्लोकानाम् ॥ २८४ ॥

मानादिमविजयानां मुनिजनशिक्षाक्षणैकदक्षाणाम् । मुनिचन्दविजयनाम्नां विधुहाससमानगमनानाम् ॥ २८५ ॥
षे(क्षे)मयुतविजयनाम्नां सुलेखलिखनादिकृत्यदक्षाणाम् । सदुदयविजयगणीनां काव्यरसास्वादविदुराणाम् ॥ २८६ ॥
अभिरामरामनामकविजयगणीनामनिन्द्यवृत्तीनाम् । सुमतिमतिविजयनाम्नामनेकमुनिकोटिशस्थानाम् ॥ २८७ ॥
चारित्रसागराणां दर्शनचारित्रसद्गुणधराणाम् । कल्याणसागराणां कल्याणसमानकान्तिभृताम् ॥ २८८ ॥
नययुतनयविजयानां प्रभुपादाम्भोजभजनचित्तानाम् । कर्पूरपूरचञ्चलयशस्विकर्पूरविजयानाम् ॥ २८९ ॥
गणिहीरसागराणां हीरोज्ज्वलहारि[सु]विशदरदानाम् । सुदयाद्यपदाम्यर्थितसागरपदनामधेयानाम् ॥ २९० ॥
सुविनीतविजयनाम्नां सुविनेयविनेयपङ्क्तिप्रतिष्ठानाम् । कृष्णपदयुक्तविजयाह्वानानां तातकृत्यविदाम् ॥ २९१ ॥
कमलाणन्दगणीनां कोमलकमलाभवदनकमलानाम् । विजयाणन्दमुनीनां पठनोद्योगप्रधानानाम् ॥ २९२ ॥
मुनिविजयसागराणां सारस्वतपाठपठनचञ्चूनाम् । सुविशालसागराणां मुनिविस्मयकारिवचनानाम् ॥ २९३ ॥
शान्तेर्विजयमुनीनां चीवरवरकोशरक्षणपराणाम् । लालादिमविजयानां मुमुक्षुसन्तोषणपराणाम् ॥ २९४ ॥
सुप्रीतप्रीतिसागरनामकदमिनां गणित्वयुक्तानाम् । शैक्षकउत्तमसागरनाम्नामाह्लादितान्यधियाम् ॥ २९५ ॥
षष्ठाष्टमादितपसो विधायकानां सुपार्श्वविजयानाम् । गणिवरमतिविजयानां गोचरविधिसावधानानाम् ॥ २९६ ॥
मुनिगजसागरनाम्नां जयादिविजयाभिधानसाधूनाम् । रत्नत्रयसत्यापनकुशलानां रत्नकुशलानाम् ॥ २९७ ॥
चाम्पश्री-प्रेमश्री-सहजश्रीप्रभृतिसाधुसाध्वीनाम् । नत्यनुनती प्रसाद्ये अत्रत्यानां मुनिजनानाम् ॥ २९८ ॥

प्रीतेर्विमलबुधानां रोहाभिधग्रामवेदमासकृताम् ।
लालकुशलाख्यविदुषां शिष्याध्यापनप्रवीणानाम् ॥ २९९ ॥

गणिहस्तिविजयनाम्नां ऋद्धिसोमाभिधानशमिनां च ।
सत्यादिमविजयानां सिद्धेर्विजयाभिधानानाम् ॥ ३०० ॥

दीपाद्विजयमुनीनां गणिदर्शनविजयसंज्ञकयतीनाम् ।
उदयविजयाभिधानां सुमुक्तिपदयुक्तविजयानाम् ॥ ३०१ ॥

विज्ञप्तिरेखसंग्रह

दर्शनविजयगणीनां हर्षादिमविजयसंज्ञकगणीनाम् ।
गणिबीरकुशलनाम्नां जीताद्विजयाभिधानानाम् ॥ ३०२ ॥
बीरादिमविजयानां शिवपदसंयोजनासविजयानाम् ।
लक्ष्मीविजयगणीनां रविविजयानां गणित्वलुषाम् ॥ ३०३ ॥
कुशलादिमविजयानां लब्ध्यादिमकुशलसंज्ञकमुनीनाम् ।
ऋषिलाडिकाख्यदमिनां देवर्ष्यभिधानधातृणाम् ॥ ३०४ ॥
मुनिविजयसोमनाम्नां चाम्पर्वेष्टृद्विविजयदमिनां च ।
वृद्धिविमलाख्यशमिनां विद्याविमलाभिधानस्य ॥ ३०५ ॥

इत्यादयः सप्तद्व्यस्तौ प्रणमन्ति प्रभोः क्रमान् । †..... ॥ ३०६ ॥

विद्वेषिभार्जारभयप्रणाशी, प्रेक्षावतां रञ्जतु मानसानि ।
नवाङ्गधदकैरवबन्धुः १६९९वर्षे, दीपालिकापर्वणि लेख एषः ॥ ३०७† ॥

॥ इति श्रेयः ॥

† अस्मिन् श्लोकोत्तरार्द्धः पतितः प्रतिभाति मूलादर्शे । ‡ मूलादर्शेऽत्र ३१० क्रमाङ्को लिखितो कथ्यते । ततो मध्ये कुत्रापि ३ पञ्चमि पतितानीति ज्ञायते ।

श्रीमेरुविजयगणिप्रेषिता

[१०] — विज्ञप्तिः । —

स्वस्तिश्रीः क्रमपङ्कजं क्रतुभुजां राजीभिरभ्यर्चितं, भव्यानामपुनर्भवप्रतिभुवस्तस्य प्रदिश्यात् सदा ।
यन्मूर्धानमलञ्चकार चिकुरश्रेणीमिषेणोल्बण-व्यालः किं वदनेन्दुमण्डलवचःस्वच्छामृतेच्छादधिः ॥ १ ॥
आबाल्याधिगमाद् वयं प्रणयतो मूर्धानमारोपिताः, सौभाग्यैकभुवो बभूम भगवान् कस्मादकस्मादथ ।
अस्मान्नाशयतीत्यसातवशतः श्यामानवेक्ष्येव तान्, केशान् मूर्धनि किं दधौ व्रतविधौ कारुण्यपुण्योदधिः ॥ २ ॥
स्वाहाभुक्प्रभृतिं चतुर्विधगतिं त्यक्त्वा व्रतादानतो, मूलादुद्वनितावशेषविषमद्वेषादिदोषाङ्कुरः ।
वर्तिष्ये सततोच्चपञ्चमगतावेवं किमावेदयन्, स्पष्टं मुष्टिचतुष्टयेन कृतवान् लोचं कचानामसौ ॥ ३ ॥
समस्तसुरसुन्दरीदलितनेत्रनीलच्छटा-कटाक्षलहरीजलस्त्रपितपादपीठस्थलम् ।
तमाप्तमुकुटं जटानिशितखङ्गखण्डीकृत-प्रचण्डमदनद्विषं मनसि कृत्य नित्योदयम् ॥ ४ ॥
— श्रीऋषभजटामुकुटवर्णनम् ॥

यत्राऽग्रंलिहशम्भुपुङ्गवगृहप्रोत्तुङ्गशृङ्गप्रभा, शुभ्रादभ्रविभूतिविभ्रमवती वेह्लपताका बभौ ।
पूर्णस्वर्णघटो यदीयनिकटे प्रष्टप्रतिष्ठां दधावम्भःकुम्भ इवाऽभ्रवर्त्मसरितो मुक्तः प्रतीरस्थले ॥ ५ ॥
यत्राऽब्रह्मपौरुषोत्तमगृहे गौरीगुरुस्पर्धके, शृङ्गारोपितरौप्यकुम्भविलसत्केतूप्रभूतप्रभौ ।
जानीमः समवेक्ष्य दक्षतनयाधीशान्तरिक्षापगे, ह्रीते प्राविशतां महानटजटाजूटाटवीकोटरम् ॥ ६ ॥
अस्ति स्वस्तिमती मदीयतनया पद्मालया सम्प्रति, क्रीडन्ती व्रतिराजपत्न्यजरजःपुञ्जेन पुण्यीकृते ।
द्वीपेऽस्मिन्निति मूलतः कलयितुं वार्तामुदन्वानिव, प्रैषीत् खोत्कलिकां कलङ्कविकलां यच्चैत्यकेतुच्छलात् ॥ ७ ॥
किं निर्लज्जतया विपर्ययरतिं निर्मापयन्तीं जगत्, प्रत्यक्षं समवेक्ष्य नीरनिधिना सार्धं नभोनिम्नगाम् ।
हीता कीर्तिकनी मुनीशितुरसौ चिक्षेप गोमुं तयोरूर्ध्वं प्रावरणं यदासशरणे विस्तीर्णकेतुच्छलात् ॥ ८ ॥
धत्तेऽतिधौतकलधौतविनिर्मितो यत्प्रासादसंस्थितघटः प्रकटप्रतिष्ठाम् ।
किं व्योमवर्त्मगमनश्रमखिन्नभास्वदश्वाननान्निपतितोज्ज्वलफेनपिण्डः ॥ ९ ॥
यस्मिन् विहारहरिणाङ्गविभासिकुम्भ-दम्भेन यन्निहितकेतनकोमलाङ्गी ।
प्रासूत नूतनमिवाण्डमखण्डमेतत्, श्रीसूरिभासुरयशस्तरुणप्रसङ्गात् ॥ १० ॥
यस्मिन् विहारशिखरस्थितशातकुम्भ-कुम्भं निभाल्य तरुणीस्तनकुम्भयुग्मम् ।
ब्रीडानिपीडितमशुक्लमुखं विधाय, नष्टा प्रविष्टमिव कञ्चुलिकान्तराले ॥ ११ ॥
यत्रोच्चकाञ्चनशिलोच्चयदर्शनीय-प्रासादशृङ्गनिशिताग्रशताङ्गभङ्गात् ।
मध्यन्दिने दिनकरस्वरया प्रयाति, भीतो न विष्णुपदमध्यभुवं गतः किम् ॥ १२ ॥
अग्रंलिहार्हद्वहत्तुङ्गशृङ्ग-संयुक्तमुक्ताफलपङ्क्तिराभात् ।
यदङ्गनावक्त्रविधेर्दिदृक्षा-व्यग्रा ग्रहाणामिव मालिकेयम् ॥ १३ ॥
यस्यां पुरि स्मेरमुखीमुखाब्ज-राजीसमुज्जृम्भितकान्तिनिर्जितः ।
तेने तपःश्वेतघटच्छलादिव, च्छायाभृदहर्हत्सदने तदासये ॥ १४ ॥
यदङ्गनामङ्गलकेलिगीतनिर्हादतृप्ताऽर्पयति स्म तासाम् । सारङ्गराजी निजद्वक्सरोजश्रियं किमु प्रत्युपकारहेतवे ॥ १५ ॥

किञ्च प्रमोदपदवीपथिकीकृताङ्गिग्राते निवारितपरस्परवैरभावे ।
पर्यायतो विदितपर्युषणाभिधानपर्वण्यखर्ववरपर्वसुपर्वशैले ॥ ३४ ॥
आसीन्नवक्षणनवक्षणकल्पकल्पश्रीकल्पसूत्रपरिवाचनमादरेण ।
नानातपस्तपनमप्रतिमप्रभावपूगप्रदानमसमानजिनार्चना च ॥ ३५ ॥
चैत्ये जिनाधिपतिसप्तदशप्रकारपूजाविधानविमलीकृतबोधिवृद्धिः ।
श्रीजैनशासनगुणग्रहणप्रवीणनिःशेषमार्गगणद्रविणप्रदानम् ॥ ३६ ॥
साधर्मिकैः सुमनसा विहितान्यतुच्छ-वात्सल्यकानि कलिकश्मलनाशकानि ।
इत्यादिपर्वसुकृतानि कृतान्यविघ्नं, श्रीपूज्यपादचरणस्मरणप्रसादात् ॥ ३७ ॥

[अथ श्रीपूज्यवर्णना -]

अखण्डगुणमण्डलीकलितकीर्तिसीमन्तिनी-वशीकृतजगत्रयीमनुजपूज्यपादाम्बुजः ।
जयत्यमरभूधरस्थिरतरप्रतिज्ञाधरः, स्मरस्मयशिवाधवः प्रवरसाधुवृद्धश्रवाः ॥ ३८ ॥
किमिव देव ! तव प्रमुखं मुखं, समवलोक्य विधुर्विधुरोऽभवत् ।
भ्रमति भीतवदेष तिरोभवन्नभसि दुर्दिनमध्यगतो यतः ॥ ३९ ॥
असमसौम्यगुणेन भवन्मुख-प्रतिमतामुपगच्छतु चन्द्रमाः ।
क्षिपति किं नु स बाह्यगतं तमस्तनुमतां मनसि स्थितमप्यसौ ॥ ४० ॥
ननु निपीय तवाऽऽस्यवचःसुधां, विधुसुधां विदधुर्विबुधा मुधा ।
समभवन्निव शैवलवल्लरी, तदुपरि स्फुरदङ्गमिषेण तत् ॥ ४१ ॥
किमिदमद्भुतसम्पदहं न वा, समवलोक्य मुखं भगवंस्तव ।
इति परीक्षितुमङ्गमिषात् करे, हिमकरो मुकुरं किमचीकरत् ॥ ४२ ॥
यतिपते ! त्वदतुच्छमुखच्छर्वि, किमु निशम्य हिमद्युतिरद्भुताम् ।
मलिनतां वहति स्म तमामसौ, वपुषि लक्ष्ममिषादमुखोदयात् ॥ ४३ ॥
सुविधिना विधिना विधुमध्यगां, किमु सुधां परिगृह्य विनिर्ममे ।
तव मुखं प्रमुखं कथमन्यथा, भवति चिह्नमिदं तुहिनद्युतेः ॥ ४४ ॥
भुवि भवद्भदनेन समं हिम-च्छविमवेक्ष्य गतं प्रतिपक्षताम् ।
मृदवलितकरः स्थविरः क्रुधा, प्रहरति स्म किमङ्गमिषादिमम् ॥ ४५ ॥
यदि सितद्युतिमण्डलमन्वहं, वहति निर्मलमुत्पलयामलम् ।
विकचलोचनयुग्मभवन्मुखोपमितिमेति तदा कथमप्यदः ॥ ४६ ॥
सदृशतां भवदास्यशशाङ्गयोर्हृदि विचार्य विरञ्चिरचीकरत् ।
किमुपलक्षितुमैन्दवमण्डलेऽचलकलङ्गमिषादुपलक्षणम् ॥ ४७ ॥
शशभृतं कृतवानिव तावकाननविनिर्मितये प्रतियातनाम् ।
शतघृतिः समतामवगाहते, कथमिदं भृशमस्य न चेदिति ॥ ४८ ॥
यदानेन्दोः स्फुरदंशुजालविलासदासीकृतदर्पणस्य ।
सहस्रचक्षुः किमभूदभूतपूर्वं हरिर्द्रष्टुमभीष्टरूपम् ॥ ४९ ॥
यस्याऽऽस्यमासीन्ननु पुष्पदन्तयोर्द्वयोस्तुलामाकलयद्गुणालिभिः ।
उन्मीलितानल्पकलामृणालिनि, विद्वच्चकोरस्पृहणीयमूर्तिमत् ॥ ५० ॥

शङ्के मृगाङ्कोऽप्यवलोक्य यन्मुख-श्रियं विशिष्टामटति स्म विस्मितः ।
 इतीक्षितुं वस्तु किमस्ति वा न यत्, समानतामर्हति यन्महीतले ॥ ५१ ॥ — मुखवर्णनम् ।
 सम्पूर्णपार्वणनिशामणिवर्णनीय-ज्योतिष्मदष्टदिशि यस्य यशोऽभिगीतम् ।
 जानीमहे मनुजखल्लनलोचनाभिः, श्रोतुं प्रजापतिरभूदयमष्टकर्णः ॥ ५२ ॥
 विमलीकृते वसुन्धरां, प्रसरन् यस्य यशोमहोदधिः । इह यन्न सुधांशुमण्डलं, शुशुभे पाण्डुरपुण्डरीकवत् ॥ ५३ ॥
 सुरनिकरकराग्रव्यग्रचामीकराद्रि-क्षुभितजलधिमध्यस्पर्धिवर्धिष्णुरोचिः ।
 गगनतलकुवेलेऽनर्गलं खेलति स्म, प्रतिदिनमिह यस्य श्लोकलीलामरालः ॥ ५४ ॥
 तैः सुप्रपञ्चितचरित्रगुणप्रवीणैरस्तोकशोकविषयव्यवसायरीणैः ।
 तातैः प्रसादितनिजाङ्गपरिच्छदाङ्गवार्त[र्ता]प्रवृत्तिकलितं प्रतिपन्नमीहे ॥ ५५ ॥
 तातेन तेन मुनिमानवसेवितेन, तुष्टैः शिशोः शशभृतेव कुमुदनस्य ।
 सद्यः प्रसद्य निरवद्यहृदा प्रसाद्या, पत्नी प्रसत्तिकलिता वरचन्द्रिकेव ॥ ५६ ॥
 श्रीतातपादैः प्रगतप्रमादैर्महाप्रसादैर्मुनिनिगमपादैः । त्रिसायमंशुप्रमिता नतिर्मेऽवधारणीया गणिपुङ्गवैश्च ॥ ५७ ॥
 ब्रह्माण्डमण्डलसरःप्रसरच्छरदिन्दुकीर्तिकुमुदवनाः । श्रीकनकविजयवाचकसरोजिनीजीविताधीशाः ॥ ५८ ॥
 विहितगुणमणिपरीक्षणविचक्षणाभरणसत्यसौभाग्याः । अवगतधर्माधर्मस्वरूपकविधर्मचन्द्राश्च ॥ ५९ ॥
 श्रीदेवविजयकवयः श्रीमत्पूज्यक्रमाब्जविशदवयाः । सन्मूर्तिर्कीर्तिविजया विशारदद्विजपतिप्रतिमाः ॥ ६० ॥
 वरसुमतिस्सुमतिकुशलाः कुशलाः पाखण्डखण्डने मुशलाः ।
 कुंअरविजया गणयः प्रवीणजननलिनदिनमणयः ॥ ६१ ॥
 निर्मितवैयावृत्या गणयः श्रीखीमविजयनामानः । सद्बुद्धिऋद्धिविजयाभिधानगणिरोहिणीरमणाः ॥ ६२ ॥
 लावण्यपुण्यवसतिश्रीमल्लावण्यविजयनामानः । श्रीसौम्यसोमवदना गणयः श्रीसोमविमलाश्च ॥ ६३ ॥
 निरमर्षचतुरहर्षप्रकर्षगणिहर्षविजयनामानः । सन्मानदानगानप्रधानमुनिमानचन्द्राह्वाः ॥ ६४ ॥
 नीलोत्पलदलदर्शनगणिदर्शनविजयनामधेयाश्च । सद्भावभावविजया मुनयः प्रतिपन्नवरविनयाः ॥ ६५ ॥
 सद्धर्मधर्मविजयाभिधानमुनयः प्रधानगुणनिधयः । विलसद्गुणमणिरोहणधरणीधरसाधुगुणविजयाः ॥ ६६ ॥
 तेजस्वितेजविजया मुनयोऽपि च मेघविमलनामानः । सिद्धिविमलाभिधानाः कल्याणप्रवरसौभाग्याः ॥ ६७ ॥
 साध्वीश्रीरूपाई-मुनयश्रीलालबाइसाध्व्यश्च । राजश्री-सहजश्री-चाम्पासाध्व्यश्च वरसाध्वयः ॥ ६८ ॥
 इत्यादितातपादप्रसादनारसिकसाधुसाध्वीनाम् । प्रणमत्यनुनती मे, शिशोः प्रसाद्या कृपावद्भिः ॥ ६९ ॥
 इहत्याः किञ्च कवयः श्रीलब्धिविजयाभिधाः । शान्तिविजयनामानश्चारित्रविजयाभिधाः ॥ ७० ॥
 सूरविजयनामानः सत्यादिविजयास्तथा । मुनीन्द्रविजयाह्वाना वेलाकूलस्थिता अपि ॥ ७१ ॥
 श्रीमत्पण्डितलावण्यविजयाः प्राप्तसज्जयाः । चन्द्र-वीरादिविजयौ रविविजयनामकाः ॥ ७२ ॥
 इत्यादिकाः प्रशमिनः सकलश्च सङ्घः, श्रीपूज्यपादगुणगानविधानदक्षाः ।
 कुर्वन्ति तातचरणाम्बुरुहप्रणामं, सर्वसहानिहितमस्तकपुण्डरीकाः ॥ ७३ ॥
 विद्वन्मनोयुवविनोदपदप्रचारा, श्लेषप्रगल्भरससारवचःप्रपञ्चा ।
 चेतश्चमत्कृतिकरी हरिणेष्वेव, पत्नी मुनीश्वरकरग्रहणं करोतु ॥ ७४ ॥
 ['अस्य लेखस्याऽऽद्यन्तकाव्यद्वयं गतं ज्ञायत इति ज्ञेयं ज्ञानविद्धिः ।' — इति आदर्शे टिप्पणिः ।]
 ॥ सं० १७४१ वर्षे श्रीभुजनगरे श्रेयः सर्वसङ्घस्य ॥

तपोगच्छाधीशश्रीविजयसेनसूरिं प्रति महोपाध्यायकीर्तिविजयप्रेषिता

[११] — विज्ञप्तिपत्रिका —

॥ ऐं नमः ॥ श्रीविजयसेनसूरिगुरुभ्यो नमः ॥

स्वस्तिश्रीर्भजते भवार्णवभयं हर्तुं क्षमाधीश्वरम्, श्रीपार्श्वं प्रवरप्रियङ्गुसदृशं ज्योतिःप्रकर्षं मुदा ।
आवाल्याजिनपेन येन कृपया निष्काश्य सत्स्वेच्छया, भोगीन्द्रं ज्वलनात् शठेशकमठो दूरीकृतोऽज्ञानवान् ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रीसहितं फणीन्द्रमहितं पद्मावतीसेवितम्, निःशेषाङ्गिजनेप्सितार्थकरणे चिन्तामणीसन्निभम् ।
पार्श्वं पार्श्वपतिं प्रणौमि परमप्रीत्या पदं सम्पदाम्, किं कल्याणमयं स्वकीयसुचिरक्षेत्रप्रभापेशलम् ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीः सुरराजराजिरचितार्चासञ्चयं सच्छ्रियम्, भूमीनायकमश्वसेनतनयं सुश्रेयसे शिश्रिये ।
स्वीयं प्राणपतिं जनार्दनमिति ज्ञात्वा च हित्वा द्रुतम्, संसाराश्रितजन्तुजातकरुणाप्रारब्धचित्तोदयम् ॥ ३ ॥
स्वस्तिश्रीनिकरं समस्तभक्तश्रेयस्करं सत्करम्, लावण्यैकसरोवरं भजत भो ! पार्श्वं जिनाधीश्वरम् ।
आधिव्याधिहरं हिरण्यसदृशक्षेत्रप्रभाभास्वरम्, भास्वत्कान्तिभरं मनोज्ञपयसा सन्तर्जितो मे स्वरम् ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रीर्वरवारिवाहतनुभाप्राग्भारसंशोभितम्, सेवासक्तमनाः सना श्रयति यं श्रीपार्श्वपार्श्वेश्वरम् ।
मत्वात्मीयपतिं जडाश्रयमिति त्यक्त्वा च शर्मच्छया, सर्वोत्कृष्टगुणाश्रयं शिववधूकण्ठैकहारोपमम् ॥ ५ ॥

स्वस्तिश्रियाश्रितमनोज्ञपदारविन्द, सौवर्णवर्णवरकोमलकायकान्तम् ।
सल्लोचनद्वयपराजिततारपद्मं, श्रीमारुदेवमनिशं भज भूरि भूत्यै ॥ ६ ॥
स्वस्तिश्रिया कलितमञ्जुलदेहरूपं, श्रीनाभिभूमिरमणीरमणाङ्गजातम् ।
सेवे सदा सकलवाञ्छितशर्ममर्मसम्पादनैकसुरभूरुहरूपरूपम् ॥ ७ ॥

स्वस्तिश्रीसहितस्य यस्य वृषभश्चिह्नच्छलात् सेवते, विज्ञप्तिं करणाय पत्कजमिति कारुण्यपुण्याम्बुधे ! ।
तिर्यक्त्वं मम दुःस्थितस्य सहसा दूरीकुरु त्वं प्रभो !, विश्वे विश्वजनव्रजेप्सितमहानन्दौघसम्पादकः ॥ ८ ॥
स्वस्तिश्रीवृषभादितीर्थपगणं संशोभमानप्रभम्, श्रीमन्तं प्रणिपत्य भक्तिवशतः संयोज्य हस्तद्वयम् ।
निःशेषातिशयाभिरामतटिनीप्राणाधिराजेश्वरम्, प्राज्यालहादविवर्धनैकरजनीप्राणप्रियं नायकम् ॥ ९ ॥

श्रीगौड-चौडादिकदेशमुख्यम्, समस्तलक्ष्मीललनानिवेशः ।

तिरस्कृतानेकसुरादिदेशः, श्रीगूर्जरो भाति वरप्रदेशः ॥ १० ॥

तत्रैकदेशे वररायदेशः, सद्धर्मपक्षैककृतप्रवेशः । निराकृतानेकनिशाचरेशः, सन्यायकक्षीकृतसर्वदेशः ॥ ११ ॥

विराजते यत्र पुरं प्रधानमिलाभिधानं कमलानिधानम् । विशालवापीवनवप्रविप्रविहारविद्वज्जनशोभमानम् ॥ १२ ॥²⁵

यस्मिन् पुरे राजति काननाली, कास्मीरजन्माग्रसुवृक्षराजी ।

राजादनश्रीफलचास्ताली-प्रियङ्गुपुन्नागलताकराली ॥ १३ ॥

सन्नागवल्लीततमंडपाढ्या, रम्भातिरम्भालवलीलतायाः । कदम्बकैश्वम्पकपुष्पजाति-सत्केतकीमालतिकाभिरामैः ॥ १४ ॥

विराजते यत्र विचित्रपद्मपद्माकरः कोमलपूरितान्तः । सहस्रपत्रैः शतपत्रपूरैः, सदृष्टपत्रैश्च विराजमानः ॥ १५ ॥

प्रथा सरो मानसनामधेयं, सद्राजहंसैः प्रविराजमानम् । अनेकचक्रावलिचातकैश्च, पारापतैः खञ्जनयामलैश्च ॥ १६ ॥³⁰

विराजते यत्र पुरे जिनानां, प्रासादपङ्क्तिः प्रवरप्रभाभिः । प्रोत्तुङ्गदण्डाग्रशिरःप्रदेशध्वजप्रभापूरितदेहदेशाः ॥ १७ ॥

- श्रीमञ्जिनानां प्रतिमा विभान्ति, प्रासादमध्ये वरकान्तिकान्ताः ।
 अनेकदेवेन्द्रसुरेन्द्रचन्द्रासुरेन्द्रनागेन्द्रकृतैकसेवाः ॥ १८ ॥
 प्रासादपङ्क्तौ विरराज कुम्भः, सुवर्णवर्णप्रभयाभिरामः ।
 भव्याङ्गिनां कामितपूणाय, क्षोणीतले कामघटेव नित्यम् ॥ १९ ॥
 यस्मिन् पुरे राजति राजलोकः, सदैव दूरीकृतसर्वशोकः । सन्मानसंशोभितसाधुलोको, दाक्षिण्यचातुर्यगुणोपपेतः ॥ २० ॥
 पण्पाङ्गनापात्रपरंपराभिर्विराजते वर्यपुरं पुराग्रम् । अष्टादशाग्रेसरवर्णवर्यं, महीधरश्रेणिविराजमानम् ॥ २१ ॥
 सुश्राविका यत्र पुरप्रधाने, विवेकचातुर्यगुणैकराजी ।
 सिद्धान्तशास्त्रार्थविचारदक्षा, साक्षात् सदा भाति सरस्वतीव ॥ २२ ॥
 यस्मिन् पुरे खञ्जनमञ्जुलाक्षि-लक्ष्मीव साक्षाललना विभाति ।
 सुवर्णमुक्ताफलभूषणौव-विभूषितक्षेत्रमनोज्ञयष्टिः ॥ २३ ॥
 यस्मिन् पुरे भाति सदा सदाभा रामा रमेव प्रतिवासरं हि ।
 प्रकुर्वती स्वीयपतेश्च सेवां, स्वकीयनाथानुगतैकचित्ता ॥ २४ ॥
 यस्यां नगर्या रमणीयरामा, विभाति नित्यं सुगुणैकधामा । सद्धर्ममार्गे कृतगीतगाना, सुराङ्गनागानसमानगाना ॥ २५ ॥
 यस्यां नगर्या प्रमदा समोदा, हर्षप्रकर्षेण ददाति दानम् । वाचंयमानां वरसंयमानां, महोदयानन्दसुखप्रदानाम् ॥ २६ ॥
 यस्मिन् पुरे भाति सदा सतीव, सीमंतिनीश्रेणिरतीव नित्यम् ।
 पतिव्रतादिप्रगुणाभिरामा, सद्धर्ममर्मैकसुसावधाना ॥ २७ ॥
 विभ्राजते यत्र पुरे मृगाक्षी स्वकीयगत्या जितराजहंसी । मनोज्ञमाधुर्यवचःप्रपञ्चसन्तर्जितानेकपिकैकगाना ॥ २८ ॥
 उपाश्रये यत्र विभाति रामा, श्रीमद्भूरूपां पुरतः सकामा ।
 मुक्ताफलस्वस्तिकसत्समूह-सम्पादनैः शोभितदेहदेशा ॥ २९ ॥
 सुश्राविका भान्ति पुरप्रधाने, यत्रापणश्रेणिविराजमाने । समस्तलक्ष्मीधनदोषमाना, सद्धर्मकार्येषु सुसावधाना ॥ ३० ॥
 उपासका यत्र पुरे जयन्तु, चातुर्यधैर्यादिगुणाभिरामाः । निःशेषशास्त्रार्थविचारसार्थविज्ञातजीवादिकतत्त्वतत्त्वाः ॥ ३१ ॥
 जयन्तु यस्मिन्नगरे समस्त-श्राद्धाः सुधाकल्पवचःप्रपञ्चाः ।
 सन्यायमार्गाजितहाटकौघाः, संवर्धितानेकपवित्रपुण्याः ॥ ३२ ॥
 यस्मिन्निल्लादुर्गवरे जयन्तु, सुश्रावकाः पुष्कलि-शङ्खतुल्याः ।
 सद्धर्ममार्गप्रवरप्रतिज्ञा, देवासुरश्रेण्यहतप्रभावाः ॥ ३३ ॥
 स्वदारसन्तुष्टिभृतः सुशीलाः, सुदर्शनश्रेष्ठिसमप्रतिज्ञाः ।
 श्रद्धालवः श्राद्धगुणप्रकृष्टा, जयन्तु यस्मिन्नगरे गुणज्ञाः ॥ ३४ ॥
 श्रीतातपादाम्बुजरेणुपुञ्ज-पवित्रिते श्रीमति तत्र दुर्गे । इल्लाभिधाने नगरप्रधाने, निःशेषलक्ष्मीललनानिधाने ॥ ३५ ॥
 श्रद्धापरश्राद्धसहस्रयुक्तात्, मनोज्ञहर्म्यावलिशोभमानात् ।
 विद्यापुराद् वर्यवशासमूहात्, प्रज्ञातसिद्धान्तरहस्यपौरात् ॥ ३६ ॥
 क्षोणीतले न्यस्तनिजोत्तमाङ्गः, संयोजितात्मीयकराम्बुजन्मा ।
 सत्कीर्तिपूर्वं विजयाभिधानः, शिशुः प्रकृष्टाणुनिभः सहेलम् ॥ ३७ ॥
 हर्षप्रकर्षैकमनोज्ञचित्तं, सोत्साहसंयुक्तमतीव भक्त्या । खोत्कण्ठसङ्घातसमन्वितं च, सद्वादशावर्तकवन्दनेन ॥ ३८ ॥
 विज्ञप्तिकां संतनुतेऽभिवन्द्य, यथा प्रयुक्तं हि यथावत्कृत्यम् । प्रौढप्रभाते कमलाकरेषु, प्रबोधितानेकपयोजराशौ ॥ ३९ ॥
 समस्तचक्रावलिक्रवाकीप्रमोदसन्दोहविधानदक्षे । भानौ प्रभापिञ्जरितास्य लोके, समुत्थिते कुङ्कुमरक्तभानौ ॥ ४० ॥

महेभ्यसभ्यावलिशोभितायां, समग्रदेवेन्द्रसो(शो)भानिभायाम् ।
 अनेकचातुर्यगुणप्रकर्ष-सुश्राविकाश्रावकशोभितायाम् ॥ ४१ ॥
 प्रज्ञप्तिसूत्राङ्ग-सुराजप्रश्नी-ससूत्रवृत्तेर्विधिवत् सुवाचनम् ।
 सदर्थसंदर्भनयान्वितायाः, सदर्थतः शम्भुसमुद्रवायाः ॥ ४२ ॥
 समस्तवाच्यमशास्त्रपाठनं, सदैव योगोद्धहनं च वाहनम् । तुर्यव्रतोच्चारणपूर्वकं च, श्रद्धापरश्राद्धपरंपराणाम् ॥ ४३ ॥
 सदोपधानादिक्रियाकलाप-सुवाहनं मोक्षसुखाभिलाषिणाम् ।
 सुश्राविकाश्रावकसञ्चयानां, सानन्दनन्द्युत्सवपूर्वकं च ॥ ४४ ॥
 निःशेषधर्मादिकृत्यजातं, संजायते जातमघोत्सवेन । क्रमागते वार्षिकनामपर्वणि, प्रमोदितानेकनृसत्सुपर्वणि ॥ ४५ ॥
 समस्तपर्वप्रकरप्रगर्व-प्रहारिणि प्रोद्धुतशर्मणीह । निरन्तरं सप्तदशप्रकार-जिनार्चनं श्रीजिनमन्दिरेषु ॥ ४६ ॥
 पूगीफलश्रीफललङ्घुकादिभिः, प्रभावनापूर्वकमद्भुतं च ।
 साधर्मिकाणां शुक्रभक्षिकादिभिः, सुभक्तिपूर्वं प्रतिपक्षिकादिषु ॥ ४७ ॥
 सद्रव्यसङ्घातसुदानपूर-प्रमोदितानेकवनीपकौघम् । समस्तसत्त्वाभयदानकानां, प्रघोषणं प्रोद्धुतशब्दकौघैः ॥ ४८ ॥
 यथाक्रमं चाक्रिकतैलिकादि-कुर्ममर्मालिनिवर्तनं च । अनेकवादित्रसमस्तसङ्घ-पुरस्सरं श्रीजिनराजवन्दनम् ॥ ४९ ॥
 दुष्टाष्टकर्मावलिषष्ठपुञ्ज-प्रज्वालनं प्राग्र्यधनं जयाभम् । अनेकपक्षक्षपणाष्टमादि-सुदुस्तपं श्रेणिविधानपूर्वकम् ॥ ५० ॥
 इत्यादिपर्वावलिपुण्यकृत्यं, विघ्नाद्यभावेन सुखेन जातम् । श्रीतातपादप्रवराम्बुजन्म-प्रौढप्रभावादपरं सुदृष्ट्वा ॥ ५१ ॥
 प्रभो ! त्वदीयं वदनं निरीक्ष्य, समस्तलक्ष्म्याः सदनं सदोदयम् ।
 तमस्विनीप्राणपतिर्जगाम, सू(शू)न्यालये सर्वकलोद्भिज्जितः सन् ॥ ५२ ॥
 वाच्यमाधीश्वर ! तावकीनं, वृत्ताननं वीक्ष्य कलाभिरामम् ।
 दोषाकरोऽहं निजकीयचित्ते, ज्ञात्वेत्यगात् सू(शू)न्यपदे सलज्जः ॥ ५३ ॥
 प्रभो ! त्वदीयाननकौमुदीशः, चकास्ति विश्वत्रितये मुनीश ! ।
 प्रोत्सासयन् पावनपुण्यमार्गः, चकोरसङ्घातमतीव प्रीत्या ॥ ५४ ॥
 विभ्राजते त्वन्मुखशर्वरीशः, क्षोणीतले प्रोन्नतसन्नोः । प्रकर्षयन् पण्डितमानवौघ-श्रोतस्विनीप्राणपतिं सहेलम् ॥ ५५ ॥
 समस्तसूरीशमनोज्ञवक्त्र-सुधाकरः कान्तिसुधाप्रयुक्तः ।
 विबोधयन् मानवकैरवौघं, संकोचयन् दुर्मदवादिवारिजान् ॥ ५६ ॥
 श्रीमत्थिरानन्दन ! तावकीनं, समीक्ष्य वक्त्रं विबुधा वदन्ति ।
 किं कौमुदीशः कलकान्तिमत्त्वात्, किं दर्पणः पेशलकान्तिमत्त्वात् ॥ ५७ ॥
 विभ्राजते त्वन्मुखपूर्णमेन्दुर्विस्त्रे(श्वे) यथा मञ्जुलरक्तकन्दुः ।
 मनोज्ञलावण्यसुचन्द्रिकौघं, विराजमानः थिरराजपुत्र ! ॥ ५८ ॥
 श्रीमद्गणाधीश्वर ! तावकीनमुखौषधीप्राणपतिर्विभाति । हर्षप्रकर्षं जनयन् नितान्तं, समस्तभव्यव्रजकैरवाणाम् ॥ ५९ ॥
 त्वदीयवक्त्रप्रभया जितः सन्, पद्माकरः पद्मसरोवरेषु । पङ्कप्रकर्षेषु गृहं चकार, से(शे)वालसंयुक्तशरीरयष्टिः ॥ ६० ॥
 दृष्ट्वा त्वदीयाननकान्तकान्तिं, पाथोरुहं पद्मसरोवरेषु ।
 सी(शी)तादि दुःखं सहते सदैव, प्राप्तुं प्रभो ! त्वन्मुखकान्तिसाम्यम् ॥ ६१ ॥
 महीतले त्वद्ददनारविन्दं, विराजते सूरिशिरोवतंसम् । अनेकभव्यव्रजराजहंसैः, संसेव्यमानं कमलानिधानम् ॥ ६२ ॥
 इत्यादिकसद्गुणसो(शो)भितायां, समस्तसूरीशशिरोमणीनाम् ।
 अथैव मां मोदकरा भविष्यति, प्रसादपत्री करुणापराणाम् ॥ ६३ ॥

तपोगणपतिश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० उदयविजयप्रेषिता

[१३] — विज्ञप्तिपत्रिका —



स्वस्तिश्रियः केवलसम्पदश्च, चक्रित्वलक्ष्म्याः सुषमाः प्रभाश्च ।
गिरश्च सर्वोत्तममान्यताश्च, यच्छक्तिनद्यां विकसन्ति पद्माः ॥ १ ॥
श्रीजीरिकापट्टयभिधा पुराऽऽसी[त्], पुरी परीता परमर्द्धिलोकैः ।
समण्डनीभावमियाय सा पूर्वेनोग्रधाम्ना स शिवाय पार्श्वः ॥ २ ॥
वामाऽप्यवामाऽजनि यस्य माता, पाता प्रजानां च पिताऽश्वसेनः ।
प्रभावती यस्य च धर्मपत्नी, नाम्नाऽपि सौभाग्यरमाग्रमाऽभूः ॥ ३ ॥
वाराणसी येन पवित्रिता भूः, स्वजन्मना भानुमतेव पूर्वा ।
नागोऽपि नागाधि[प]राजलक्ष्मीमवापितः सद्गुरुणैव शिष्यः ॥ ४ ॥
साध्वी यदीयाऽजनि पूष्पचूला, कूलानुगा या भववारिराशेः ।
गणाधिपा यस्य दशाऽप्यभूवन्, नरस्त्रियो यद्वचनेन तीर्णाः ॥ ५ ॥
प्रतिस्थलं यस्य विहारमाला अद्यापि बह्व्यो भुवने स्फुरन्ति ।
जनस्य तत्कारयितुर्यशांसि, मुक्ताकलापा जगतीस्त्रियो वा ॥ ६ ॥
बिम्बानि भूयांसि च यस्य लोके, माहात्म्यपीयूषघटा इवास्मिन् ।
स्फुरन्ति तत्रापि स कोऽपि जीरापल्लीपतिः शक्तिसुधापयोधिः ॥ ७ ॥
श्रीस्तम्भतीर्थावनिभोगशाली, विश्वार्थसार्थानुभवोऽपि रम्यः ।
कामानुरूपोऽधिककामदोऽपि, कामप्रजेता भगवान् प्रकामम् ॥ ८ ॥
वामासतीकुक्षिखनीमहार्घ्यमणिर्जनाभीष्टविधानदक्षः ।
रविच्छविभ्योऽपि हि यस्य बोधच्छविः स लोके च चकास्त्यलोके ॥ ९ ॥
मन्त्रा यदीयाः शतशः सुराणामधिष्ठिताः कामितपूरकाश्च ।
वंशाम्बुजे यश्च निजेऽस्ति हंसः, क्रीडापरः केवललक्ष्मिहंसा ॥ १० ॥
दिव्योपभोगः स च दिव्यदानी, गतान्तरायोऽप्यजरामरश्च ।
नित्यो विभुः शाश्वतसम्पदाढ्यो, जयत्यनन्तो जगदेकवीरः ॥ ११ ॥
किं द्युर्मणीनामिव यो महिम्नामाधारभूतः परमोपकारी ।
तं पार्श्वनाथं सुषमासनाथं, भक्त्या नमस्कार्यपदेऽभिषिच्य ॥ १२ ॥
पुराभिधं बन्दिरमन्दिरायाः, पदं मुदामेकखनीव भाति ।
धर्मार्थकामत्रयकुत्रिकाट्टप्रायं प्रियं विश्वजनावलीनाम् ॥ १३ ॥
जानीमहे नो जलधिप्रसङ्गाद्, रत्नाकरस्तन्नगरं गरीयः ।
द्रङ्गस्य सङ्गाद् यदि वा पयोधी, रत्नाकरत्वैकयशो बिभर्ति ॥ १४ ॥

साक्षादतिक्रामति सिन्धुसङ्गात्, सीमानमेतत्पुररत्नभूर्न ।
यद्वा पुरस्यास्य सदा प्रसङ्गात्, सीमानतिक्रामक एष सिन्धुः ॥ १५ ॥
श्रीणामजस्रं प्रभवः पयोधिर्मन्ये पुरस्यास्य समीपवृत्तेः ।
समीपवृत्तेर्यदि वा पयोधेः, पुरं पुरं वा श्रिय एकभूमिः ॥ १६ ॥
अस्माकमत्यच्छतराशयानां, सन्तापको मित्रतयापि पापः ।
सुधावलेपा इति यत्र गेहाः, सूरं ध्वजाग्रैः परिताडयन्ति ॥ १७ ॥
खरस्वरूपोऽपि हि मित्रनामा, व्यतीतवस्त्रीभवदन्दवृन्दः ।
शुद्धाशया यत्र सुधावलिता, गृहा ध्वजैस्तं परिधापयन्ति ॥ १८ ॥
राजाऽपि रात्रौ परितः प्रचारं, करोषि(ति) तद्रष्टुमनर्ह एव ।
प्रच्छादयन्तीति यदीयगेहाः, सुधाकरं नक्तमिह ध्वजाग्रैः ॥ १९ ॥
वस्तूनि सर्वाण्यपि यत्र काममगण्यताभाञ्जि भवन्ति नित्यम् ।
सद्रोहणाद्राविव रत्नमाला, तारावली वा गगने प्रदीप्रा ॥ २० ॥
सौगन्धिकाट्टेषु समाततास्ते, कस्तूरिका वा हिमवालुका वा ।
तदट्टलक्ष्म्याः किल नित्यतायै, निशादिने साधु नियञ्जिते ते ॥ २१ ॥
यदुच्चगेहावलिरार्हती गीरिवानिशं निर्मलतां विभर्ति ।
घाणीं पिकानां शितिपाक्षिकाणां, कुहूमयं तेन वृथा करोति ॥ २२ ॥
यस्मात् सुधाभिः सितिमानमेते, गेहा दधाना निजदीप्तिदम्भैः ।
निधीन् समग्रानपि पूर्णिमायाः, श्रियं प्रदीपामपि लम्भयन्ति ॥ २३ ॥ - यमलम् ।
क्रयाणकानां निकरः पयोधिमाग्रेण यत्रैति पुनः प्रयाति ।
मीनादिराशाविव पद्मपाणिमुख्यग्रहाणां गगनाध्वनौघः ॥ २४ ॥
उग्राश्च भोगाश्च सुनागराश्च, स्फुरन्ति यस्यां शतशोऽपि लोकाः ।
भोगार्णसां वासकृते द्युनद्यां, मीनाकरा वा मकराकरा वा ॥ २५ ॥
त्रिभिस्त्रिधा यत्र भृशं विभक्ता, पुरस्य सर्वाऽपि हि राजधानी ।
अर्थेन कामेन वृषेण चेति, सम्यग् मिलित्वा विगलद्विरोधे ॥ २६ ॥
श्रीपूज्यविष्णुप्रतिबद्धवासे, भोगाम्बुधौ द्रङ्गमणीयमाने ।
इत्यादिवृत्तैरुपवर्ण्यमाने, पुराभिधे तत्र पुरप्रधाने ॥ २७ ॥ - इति नगरशोभा ।

*

यत्पूज्यपादैः प्रथमं व्यलोकि, स्वभक्तिसंयुक्तजनोपसेव्यम् ।
जीराउलीपार्श्वजिनेन्द्रचैत्यादिभिः सनाथीकृतमध्यभागम् ॥ २८ ॥
मुनिद्विषोऽस्यां कटुकाः पुराऽपि, चैत्यद्विषो लुम्पकपक्षदक्षाः ।
द्वयीद्विषः साम्प्रतमत्र केचिद्, विशेष एष प्रबभूव नव्यः ॥ २९ ॥
सुश्रावकास्तेन च येऽत्र जैनचैत्यादिपूजाविधिसावधानाः ।
तन्मानिनः स्वानपि पूर्वजान् ये, व्यामूढरूपानिव मानयन्ति ॥ ३० ॥
श्रीपत्तनं धर्ममयं च राजद्, रङ्गाभिधं द्युन्ननिवासभूमिः ।
कामाश्रयः सूर्यपुरं त्रयीमुत्क्रयीमयं वैतदिदं न विद्मः ॥ ३१ ॥

विज्ञप्तिलेखसंग्रह

इत्यादिवृत्तैरुपवर्ण्यरूपादकथ्यरूपाञ्जलधीरितार्थम् ।
 श्रीस्तम्भतीर्थादितिदम्भलोकाच्छ्रीपूज्यतत्त्वीकरणप्रवीणात् ॥ ३२ ॥
 भक्तीरितः प्रीतिपवित्रितात्माऽऽत्मारामलीनैकमना मनाग्नः ।
 ज्ञप्त्योदयादिर्विजयः स्थिरश्रीः, प्रमोदसिन्धुः कृतवन्दनादिः ॥ ३३ ॥
 विनीतभावस्तरणिप्रमाणावर्तान् विनिर्माय नतिं वितन्वन् ।
 विज्ञप्तिमाविष्कुरुते यथाऽत्र, कृत्यं प्रभातेऽरुणपूतलोके ॥ ३४ ॥
 स्वाध्याय आद्याङ्गमुखागमानां, व्याख्यानमावश्यकवृद्धवृत्तेः ।
 तदुत्तरं पर्व समभ्युपेतं, श्रीवार्षिकं नाम सुधर्मसेव्यम् ॥ ३५ ॥
 जिनालये सप्तदशप्रकारा, पूजा चतुःपारणकादि सर्वम् ।
 पर्वोचितं कल्पसुवाचनादि, तत्रापि जज्ञेऽस्ति च जायमानम् ॥ ३६ ॥
 श्रीपार्श्वनाथस्य पदप्रसादः, श्रीपूज्यरागेण स सद्वितीयः ।
 निबन्धनीभावमियाय तत्राधुनाऽप्यसावेव तदीयहेतुः ॥ ३७ ॥

अपरम्—

मातुं न शक्नोति गुणान् यदीयान्, ब्रह्माऽपि मानातिगताप्रपन्नान् ।
 तत्संख्ययैते गगने विकीर्णास्तारागणास्तेन परिस्फुरन्ति ॥ ३८ ॥
 यद्गच्छमय्ये बहवोऽपि मूढा, अपि स्फुरद्धस्तमहामहिम्ना ।
 क्षणेन पाण्डित्यमां भजन्ते, न हीरसूर्यादिषु तत्प्रसिद्धम् ॥ ३९ ॥
 विद्याऽपि येषां स्वत एव सिद्धा, रूपं च वाणी च विशालरूपा ।
 एकैकभावस्य कथाप्रबन्धे, पाथोजजन्माऽप्यसमर्थ एव ॥ ४० ॥
 सीमातिगानां गुणमण्डलानां, मुक्ताफलानां प्रविधातुकामः ।
 मालां विधिः पारमनाम्नवंस्ता, विमुक्तवांस्ता वियतीह ताराः ॥ ४१ ॥
 सभूषणा सम्प्रति सा सुराष्ट्रावनी कनी हेममणीखनीव ।
 पत्न्यासमुच्चैः सुविहारलक्ष्म्या, श्रीपूज्यतो या पुरवद् बिभर्ति ॥ ४२ ॥
 यदीयगच्छे कवयोऽप्यनेके, क्रियापरास्तार्किकपुङ्गवाश्च ।
 व्यापारिणां वा जगतीपतीनां, कोशेषु माणिक्यपरम्परेव ॥ ४३ ॥
 भाणी यदीया जननी प्रतीता, शिवाङ्गणारूयोऽपि च यत्पिताऽऽसीत् ।
 क्रियापरो यस्य च शिष्यवर्गः, स्वर्गङ्गाया यस्य यशः समानम् ॥ ४४ ॥
 अहो महज्ज्ञानमहो क्रियेयमहो तपः क्रोधजयोऽप्यहो सः ।
 विशिष्य कः ख्यातुमलं गुणांस्तान्, यद्देहपेटीमणिरत्नराशीन् ॥ ४५ ॥
 गुणैरनेकैरिति वर्णनीयैर्मम प्रणामो मनसाऽवधार्यः ।
 अनुप्रणामः प्रभुसेवकानां, प्रसादनीयः प्रततव्रतानाम् ॥ ४६ ॥
 तथा हि—लक्ष्मीविजयाख्यविज्ञा, यशःपदाद्या विजयाः समन्त्राः ।
 धनादयो वा विजयास्तथाऽन्ये, विज्ञाश्च हेमाद्विजयादयोऽपि ॥ ४७ ॥
 इत्यादिकानां पुनरार्थिकाणां, मानेन्दिराणामपरापराणाम् ।
 नामोऽनुनामश्च विधापनीयः, प्राप्तः स्मृतेर्गोचरतां गणेन्द्रैः ॥ ४८ ॥

मदीयसम्पर्किमुनिव्रजस्य, श्रीपूज्यभक्तिप्रवणाशयस्य ।
 तथा हि—वीराद्विजयाः प्रबुद्धा, रवेः पदाद्या विजयाश्च विज्ञाः ॥ ४९ ॥
 दीपादयो वा विजया गणेशाः, शिवादिमाः सद्विजयाः सधर्माः ।
 ततः परं सत्कुशलप्रधाना, गणेशवर्या विजयाग्रशब्दाः ॥ ५० ॥
 देवादिमाः सद्विजया जिनाद्या, लाधादयोऽन्ये स्थिरवासभाजः ।
 गणिः कृपाद्यो विजयश्च हेमादिमः पुनः सद्विजयो गणीष्टः ॥ ५१ ॥
 ह्यञ्जनाभिधानश्च मुनिः सुवृद्धसत्यादयोऽत्रत्यजनाः प्रतीताः ।
 अत्रत्यसङ्घोऽनघभक्तिशाली, सर्वेऽपि चैते प्रणमन्ति पूज्यान् ॥ ५२ ॥
 श्रीपूज्यनाम्नाऽत्र जिनाधिनाथाः, ग्रीत्या नमस्याविषयीक्रियन्ते ।
 प्रणामवेलामधिगम्य तेषामहं स्वचित्तेऽपि विधेय आर्षैः ॥ ५३ ॥
 सद्यस्कपधैर्लिखितेन शीघ्रं, वैयग्र्ययोगाच्च मनोऽप्रसत्तेः ।
 यथातथागुम्फितमेतदास्ते, दूष्यं न वैदुष्यपयोधिभिस्तत् ॥ ५४ ॥
 श्रीगूर्जरक्ष्मावलयेऽत्र वर्षे, पादोऽवधार्योऽथ विपर्ययो वा ।
 इत्यादि विस्तारवदेव सर्वं, प्रसादनीयं कृतनिर्णयं यत् ॥ ५५ ॥
 सत्फाल्गुने मासि वलक्षपक्षे, यौगप्रमेयप्रमकर्मवाढ्याम् ।
 कनीव पत्री प्रगुणीकृतेयं, पाणौ गृहीता प्रतनोतु भद्रम् ॥ ५६ ॥
 ॥ पूज्याराध्यसकलभट्टारकदेवभट्टारकश्री१९श्रीविजयप्रभसूरीश्वर-
 चरणसरोजानां श्रीपुरबन्दिरे । सं० १७१८ वर्षे ॥

तपोगणपतिश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० लाभविजयप्रेषितो

[१४] — विज्ञप्तिलेखः । —



॥ श्रीमद्भामाजानिजन्मा जयति जयति ॥ वाग्देव्यै नमः । श्रीसद्गुरवे नमः ॥

स्वस्तिश्रीवनिताकटाक्षलहरीसञ्चारिसच्छङ्खपुर्नारीकण्ठविहारिहारिविलसद्धारोपमानः प्रभुः ।

श्रीमत्पार्श्वजिनो बभस्ति सकले विश्वत्रये भास्करो, भव्याम्भोजविभासने शिवकरः श्रीआश्वसेनिर्जिनः ॥ १ ॥

स्वस्तीन्दिरालिङ्गितचारुदेहः, समस्तगोपालकुलावतंसः ।

वशीकृतो येन महोरगेनः, श्रीपार्श्वराट् वः स जिनः श्रियेऽस्तु ॥ २ ॥

वाग्देवतायां जनको जनानां, सुखंकरः सृष्टिकरः स्वयंभूः ।

श्रीपार्श्वराट् शंखपुराधिराजो, ददातु सौख्यान्यखिलानि वो नः ॥ ३ ॥

शंभुः शिवेशः फणिसेवितोऽसौ, गणाधिनाथाभिनतांहिपद्मः ।

कन्दर्पदर्पापहको ददातु, वो नः श्रियं शङ्खपुरेशपार्श्वः ॥ ४ ॥

शङ्खादिपुर्नायकपार्श्वदेवो, देवासपुर्यां कृतसन्निवासः ।

पृथीकृतं येन जगन्नयं स रातु श्रियं सर्वगुणाभिरामः ॥ ५ ॥

हौं ॥ स्वस्ति रमां स जिनों मम दद्याद्, यत्पदकोकनदं समुपास्ते ।

अङ्गतया हरिणोऽम्बककान्त्या, निर्जित एष ततो जिनशान्तेः ॥ ६ ॥

लोचनकान्तितयापि मृगाक्ष्यो, मां जिनराज ! जयन्ति नितान्तम् ।

वक्तुमितीव मृगः पदसेवामातनुते किल किं मृगकेतोः ॥ ७ ॥

जिनवरेश ! कुरङ्ग इति प्रभो मदभिधानमिदं प्रवदन्ति यत् ।

अपनय त्वमितीव वदत्ययं, हरिणको हि यदीयपदम्बुजे ॥ ८ ॥

यदा जितः स्त्रीनयनैः पृथिव्यां, गत्वा खमिन्दुं किल संश्रितोऽहम् ।

तदा प्रभृत्येव वदन्ति लोका, मदीयसङ्गात् सकलङ्गमेतम् ॥ ९ ॥

अतः परं नाथ ! ब्रजामि कुत्र, दीनो वराको बहुलजितश्च ।

इतीव विज्ञप्तिमसौ तनोति, मृगो यदीयांहिकजद्वयेऽरम् ॥ १० ॥

हौं ॥ स्वस्तीन्दिरा सुन्दरमन्दिरं सद्भरेन्द्रदेवेन्द्रनतक्रमाब्जः ।

चतुर्मुखः सौख्यकरः स देवो, ददातु सौख्यं मुनिसुव्रताख्यः ॥ ११ ॥

सकलसेवकलोकसमीहितफलसमर्पणनाकितरूपमम् । यदमलांहिकजद्वयमुत्तमं जयति कूर्मवरान्वितमन्वहम् ॥ १२ ॥

चरणद्वितयं किल यस्य विभोर्भुवनत्रयसिद्धिमतिप्रवराम् ।

प्रददाति यदेतदिदं न किमु नितरामपि चित्रकरं सुधियाम् ॥ १३ ॥

यदीयपत्पद्मपुत्रे कूर्ममिषान्मुरद्विद् किमितीव वक्ति । भवार्णवात्तारयसि त्वमीश ! सर्वास्ततो मामपि तारयस्व ॥ १४ ॥

यक्रमाम्बुजगन्धरसौधमत्ति(?) नाकिमनुजालिगणोऽरम् । यस्य पत्पयसि तस्य सुसेवां कुर्वते मुनिजनद्विजराजाः ॥ १५ ॥

स्वस्तिश्रियं यच्छतु वामवामासूनूर्मनूनुद्युतिभासमानः । सुधाशरो भद्रकरः स पार्श्व उक्तेः पाटे कृतसन्निवासः ॥ १६ ॥

यदीयदानं प्रविलोक्य नाकिद्रुमा नितान्तं किल लज्जिता वै ।
 गतप्रभा नन्दनकानने गता विलज्जिता यान्ति नगाटवीषु हि ॥ १७ ॥
 ओजोऽन्वितामन्वहमादरेण, यदीयमूर्तिं प्रविलोक्य पूषा ।
 दासो बभूवेति किलावजाने, ददाति नो चेत् किमयं प्रदक्षिणाम् ॥ १८ ॥
 अहिमहीपतिरंहियुगे विभोर्वसति यस्य सुधाश्चरश्मर्षणः ।
 कथयितुं किमितीव विषोऽज्ज्ञितं, कुरु विभो ! किल मां सुधयान्वितम् ॥ १९ ॥
 जयति यस्य यशो जगतस्त्रये, जनमनःसुखदं विशदं सदा ।
 यदधिपीय नराः प्रविमेनिरे, मनसि मिष्टतराऽपि सुधा मुदा ॥ २० ॥

ह्रीं ॥ स्वस्तिश्रीमधुपीनिषेवितपदम्भोजं जगज्जीवनमीडे नागहृदे स्थितं भगवतं (?) तं वामवामाङ्गजम् ।
 कैलासोदरसोदरं गुणभरं बिभ्राणमानन्ददम्, संसारोदधितारणं गतमदं शार्दूलविक्रीडितम् ॥ २१ ॥

यदीयवक्त्रस्य मनोहरत्वं, विलोक्य वार्जं बहुलज्जितं सत् ।
 लीनद्विरेफालिमिषात् किमेतद् भुङ्क्ते विषं दोषविशेषशेषम् ॥ २२ ॥

यदीयवक्त्रं निखिलाम्बुजन्मराजं चकाराम्बुजभूर्यदेतत् । तदास्यदास्यं कुरुते हि मञ्जुकज्जद्वयं नेत्रयुगच्छलेन ॥ २३ ॥
 यदास्यपद्मं प्रविलोक्य पद्मं जले ममज्जातिविलज्जितं सत् । बुधैर्जनैरेव विमन्यते स्म नो चेदिदं प्रादुरभूततः किमु ॥ २४ ॥

यस्यास्यपाथोजमलं विलोक्य, लज्जाप्रपूर्णं जलजं बभूव ।
 ततो द्विरेफालिमिषात् करालां, निजोदरे प्रक्षिपतीव शस्त्रीम् ॥ २५ ॥

सर्वभद्रकरं देवपञ्चकं नौम्यहं लसत् । सद्गुणौघधरं दुष्टकर्महं स्वच्छमानसम् ॥ २६ ॥ — धनुर्वन्धः ।
 सकलमङ्गलकेलिकलागृहम्, विबुधपङ्कजकाननभास्करम् ।
 समभिनम्य मुदा जिनपञ्चकममरसन्नकृतस्थिति सर्वदा ॥ २७ ॥

॥ इति जिनवर्णनम् ॥

अथ परमगुरुरूपदपवित्रीकृतपुरवर्णनम् —

ह्रीं ॥ यस्मिन् पुरे काननमस्ति रम्यं तमालताम्बूलपियालशालि ।

मालूरजम्बीरकरीरसारं सत्तालमालामलकीविशालम् ॥ २८ ॥

मत्तभ्रमद्भुङ्गकुलैः कलश्रि सत्कोकिलाकेकिकलारवालि । विलासियूनोर्हृदयस्य चौर्यकरं हरिद्विस्त्रधरं नरश्रि ॥ २९ ॥

रसालसाला बहुनम्रशाखाः, फलातिभारेण नतोत्तमाङ्गाः ।

वदन्ति यस्मिन् विपिने नितान्तं, विश्वभरां स्वां जननीं मुदेव ॥ ३० ॥

कि(क?)म्रोऽस्ति वप्रो न विनम्रदेहो, हिरण्मयः सर्वबुधैः प्रवर्ण्यः ।

विस्मेरकान्तिः कपिशिर्षकालिशालिस्तु वृन्दारकशैलरूपः ॥ ३१ ॥

मेनेऽहमेवं नहि वप्र एष मेरुस्समादाय दिवं करे स्वे । स्वर्लोकलोकैः परिभूषिताङ्गस्समागतस्सद्गुस्वन्दनाय ॥ ३२ ॥

यस्मिन् पुरे भान्ति निकेतनानि, मरुल्ललत्पल्लवसदध्वजाभिः ।

देवापगाराजितमूर्धदेशा अनल्पदेहा इव मेनकेशाः ॥ ३३ ॥

यस्मिन् पुरे वेशमशिरःस्थलेषु, भान्ति ध्वजावायुचलत्प्रदेशाः ।

सन्नाधिनाथस्य लसन्ति कीर्तयः, किमु प्रधाना गगनाङ्गणेऽन्वहम् ॥ ३४ ॥

यस्मिन् पुरे सन्नवरैर्मनोहरैर्ध्वजव्रजै राजितसच्छिरोभिः ।

विभासमानैः किमु तन्यतेऽरं हास्यं सुपर्वालपतिर्नगर्याः ॥ ३५ ॥

यस्मिन् पुरे कान्तनिकेतनानि, सत्केतुभिर्भान्ति भृशं नितान्तम् ।
 जित्वा श्रिया स्वर्गपुरीं किमेतैर्मौलौ ध्रियन्ते खलु निर्जयाङ्गाः ॥ ३६ ॥
 यस्मिन् पुरे रात्रिवरं गृहाल्यश्चुम्बन्ति सर्वा ध्वजजिह्वया वै ।
 तप्ता रवेरातपतोऽहि नित्यं, सुधांशुबिम्बं समबाणरम्यम् ॥ ३७ ॥
 यस्मिन् पुरे सद्वलभीपताकामिषाद् विजाने सुरनद्य एताः ।
 स्नानेन देवाः परिपीडयन्ति, गताः शरण्यं नगरस्य तस्मात् ॥ ३८ ॥
 यस्मिन् पुरे साधुसुधाविलिप्तैः, सौधैर्धरामण्डलमावभासे ।
 निष्काश्य दुष्टां विधुवैरिणीं तिथिं, स्थितेव रम्या खलु पूर्णिमा तिथिः ॥ ३९ ॥
 यस्मिन् पुरे बालमृगाम्बुकानां, स्नानेन जाताऽतिकषायिताशया ।
 नासीत् प्रसन्नाऽखिलया निशापि, वापीवराङ्गा ग्रहिलेव भामिनी ॥ ४० ॥
 यस्मिन् पुरे हृदपथे घरद्वजैः शब्दैर्लसत्सक्तुकरैर्विवादम् ।
 घनेन सार्धं क्रियते हि यस्मात्, तस्मात् स जातो घनघर्घरस्वरः ॥ ४१ ॥
 क्रीणन्ति पत्रेण मदेन साकं, गुञ्जन्तमप्येवमलिं मलीमसम् ।
 तद्वन्धलुब्धं वणिजश्चतुःपथे, जना रविः(वैः?) पूरितकर्णदेशाः ॥ ४२ ॥
 यस्मिन् कस्मीरजपुञ्जराजयः, प्रदोषकाले किल संप्रसारिताः ।
 रेजुर्वरा अस्तमितस्य भास्वत इव प्रभारक्ततरा निरन्तरम् ॥ ४३ ॥
 यस्मिन् पुरे चारुचतुःपथानि, विभान्ति वेदाहिकुलैर्मितानि ।
 तद्वर्णनं कर्तुमहं क्षमो नो, स्वल्पैर्दिनैरेकरसज्ञको वै ॥ ४४ ॥
 यस्मिन् पुरे चारुणि राजमाने, जिनालयानां छलतः किमेते ।
 अनल्पकैलासदरीभृतोऽभवन्, सुधान्विताः शम्भुनिवासयोग्याः ॥ ४५ ॥
 यस्मिन् पुरे तोरणधोरणीभिर्विराजितं वेश्म मुनीश्वराणाम् ।
 भातीव पुर्बालमृगाम्बुकाया ललाटचित्रं बहुचित्रशालि ॥ ४६ ॥
 यत्पत्तनं भाति पयोधिपुत्रीप्रालिङ्गितं सर्वगुणाभिरामम् ।
 सत्ताक्ष्यकेतोर्हृदयाम्बुजन्मस्थलं कलङ्केन विनिर्गतं वै ॥ ४७ ॥

श्रीमत्तातपदस्पर्शपावनीभूतभूतले । श्रीमति पत्तने तत्र यथास्थाने गुणान्विते ॥ ४८ ॥

॥ इति गुरुचरणनीरजपरपरागपुञ्जपवित्रीकृतपुरवर्णनं समाप्तिं पफाण ॥

अथ नगरवर्णनम् —

ह्रीं ॥ लङ्का शङ्कावती येन, काशी व्याशा कृता तथा । कम्पमाना कृता चम्पोज्जयिनी जितकान्तिका ॥ ४९ ॥

क्रीडाशैलः सोऽस्ति यस्योपकण्ठे, चारुत्वं यस्यावलोक्याब्धिमध्ये ।
 मैनाकाद्या लज्जिताः सन्निपेतुरन्ये ये मद्यां स्थिता निस्त्रपास्ते ॥ ५० ॥
 गलम्भराणोनिवहच्छलेन करेणुराजेव चभास्ति शैलः ।
 शावत्वमस्याखिलसानुमन्तो मैनाकमुख्या दधति प्रकामम् ॥ ५१ ॥
 क्रीडार्थमस्मिन्नचले नितान्तं, व्रजन्ति लीलाकलिताबलानाम् ।
 धवस्य कण्ठार्पितदोर्लतानां, यूथान्ययुग्मार्गणपीडितानाम् ॥ ५२ ॥

चण्डी प्रचण्डद्युतिभासमाना, चतुर्भुजा राजति यत्र शैले ।
चक्रत्रिशूलांकुशशस्त्रवृन्दं, कृत्वाऽघनाशाय करे स्थितेव ॥ ५३ ॥
चण्डीसमीपे विमलाम्बुकुण्डं, दरी च तिष्ठत्यथ संवसन्ति ।
तपस्विनः सञ्चितवह्निकाष्ठमात्रोपजीव्या अचले च तस्याम् ॥ ५४ ॥
द्वितीयपार्श्वे बहुराजसेव्या देवी भवानी भवदुःखहर्त्री ।
कल्याणकर्त्री बहुधूपधूमश्यामीकृताङ्गा जननिर्विभाति ॥ ५५ ॥
आदित्यवाहैः प्रमितानि नीरकुण्डानि चण्डीनिकटे विभान्ति ।
वराणि कान्ताकुचचन्दनानां, प्रक्षालनात् संकलुषीकृतानि ॥ ५६ ॥
पयोभरैः पूर्णपयोधराश्च, श्यामाः स्वनन्त्यो नगमेखलायाम् ।
चरन्ति गावो गगनाङ्गणे च, पयोदमाला जनसौख्यकाराः ॥ ५७ ॥
एकत्र गोपीकलगीतशब्दैरूध्वीकृतश्रोत्रमृगा रमन्ति ।
एकत्र मेघध्वनिसक्तकर्णा, नृत्यन्ति यस्मिन्नचले मयूराः ॥ ५८ ॥
परिरमद्युवतीजनसंकुलं मधुकरैः परिराजितभूरुहम् । विपिनमत्र विभाति दरीभृति जनमनोधनतस्करमद्भुतम् ॥ ५९ ॥
कल्याणदासभक्तेन योगमार्गानुगामिना । कृतौकं भाति शैलस्य मेखलाया मनोरमम् ॥ ६० ॥
ष(ख)र्जूरनारङ्गलवङ्गपूगं सच्चम्पकश्रेणि च चारुचूतम् ।
सच्चन्दनं नन्दनकाननाभं वनं बुधैः पूरितमध्यभागम् ॥ ६१ ॥ - (युग्मम्)
छटोच्छलद्वारिलसत्तटाको, बभस्ति रम्यो निकटे वनस्य ।
सत्केकिकोकद्विजचक्रवाकविलासिनारीजनसेव्यदेशः ॥ ६२ ॥
यस्मिन् पुरे वप्रवरश्चकास्ति, सन्मृन्मयश्छप्परराजिताङ्गः ।
विराजितो गोपुरराजिभिश्च, भटैः सशस्त्रैर्बहुसेवनीयः ॥ ६३ ॥
परावलालोकनके गताक्षाः, परापवादे गतजिह्वाश्च ।
परस्वग्राहे गतदोर्लताश्च, यस्मिन् पुरे श्राद्धवरा वसन्ति ॥ ६४ ॥
नयशोभाजनाः श्राद्धाः सन्ति यस्मिन् पुरे कुजाः । अपूर्वदानिनो धर्मानुरक्ता गुरुसेवकाः ॥ ६५ ॥
मत्तमातङ्गगामिन्यो दोषाकरमुखास्तथा । सन्ति यस्मिन् पुरे श्राद्धाः, कौलेयक्यो दयापराः ॥ ६६ ॥
अर्हद्वेश्मत्रयं यत्र भाति यत्रानुबिम्बिताः । तारकाः कुर्वते भ्रान्तिं मुक्तानामन्वहं नृणाम् ॥ ६७ ॥
मुनीनां निलयं यत्र दूरीकृततमोभरम् । धर्मकार्याणि यत्रैव चलन्ति हि निरन्तरम् ॥ ६८ ॥
पुरात् तस्मात् विनेयाणुल्लाभादिविजयो मुदा । विज्ञप्तिपत्रिकां भक्त्या, श्रीगुरावुपढौकते ॥ ६९ ॥
कृत्यं यथा प्रभाते प्रजायते सभ्यशोभितसभायाम् । व्याख्याने षष्ठाङ्गं स्वाध्याये पञ्चमाङ्गं च ॥ ७० ॥
प्रभातेऽत्र यतिः कश्चिन्नैषधं पठति द्रवम् । नाट्यग्रन्थान् यतिः कश्चित् कश्चित् सिद्धान्तकौमुदीम् ॥ ७१ ॥
चम्पूकथां यतिः कश्चित् कश्चिल्लिङ्गानुशासनम् । कश्चित् विचारशास्त्राणि कश्चित् सारस्वतं तथा ॥ ७२ ॥
वृत्तरत्नाकरं कश्चिद् वाग्भटालङ्कृतिं तथा । कश्चित् कुमारकाव्यं च कश्चित् सिद्धान्तचन्द्रिकाम् ॥ ७३ ॥
योगं श्रीपञ्चमाङ्गस्य, वहन्ति मुनयो मुदा । श्रावका धर्मबुद्ध्या च, द्वादशव्रतपौषधान् ॥ ७४ ॥
इत्यादिसुकृतकृत्यैः प्रवर्तमाने क्रमात् प्राप्तम् । पर्युषणापर्वं सद्धर्मदं बोधिदं श्रेष्ठम् ॥ ७५ ॥
जिनभुवनभूरिपूजननर्तनगानं च दानमानादि । कल्पादिसूत्रवाचनमभवच्छ्रीमद्गुरोर्ध्यानात् ॥ ७६ ॥
साधर्मिकवात्सल्यैरष्टमषष्ठैस्त्रयोदशैर्दशमैः । एतैः सह संजातं सर्वं श्रीमद्गुरोः स्मरणात् ॥ ७७ ॥

अथ श्रीमत्परमगुरुवर्णनम् -

भवापगानाथसमाप्तपारं, श्रीसिद्धिनारीकुचहारिहारम् । विवेकदृष्ट्या जितदेवमारं, जगज्जनानन्दकरं विदारम् ॥७८॥
यशोलतामण्डपमेवनीरं, प्रतापवह्नौ प्रवरं समीरम् । भव्याग्रपृथ्वीरुहवृन्दकीरं, सूक्तादिशास्त्राब्धिपरासतीरम् ॥७९॥
रीत्यादिकाव्याङ्गविचारपूर-शोभायमानं बुधपद्मसूरम् । जगद्विहारीकृतकीर्तिपूरं, यमीश्वरं धर्मवने मयूरम् ॥ ८० ॥
तावद्भजेहं वरसूरिवीरं, दयाकरं दुःखदवाग्निनीरम् । वरप्रभं संयमिमौलिहीरं, न्यायादिविद्यानिपुणं गभीरम् ॥८१॥
पद्मचतुष्टयस्य कमलबन्धचित्रम् । तत्परिधौ श्रीगुरोरभिधानम् ।

महन्मुनिभिः प्रणतांहिपद्ममहं भजे मञ्जुयशःसुधाम ।

मदीयनेत्रामलपद्मयुग्म महःपतिं सन्महसां सुधाम ॥ ८२ ॥ - खड्गबन्धचित्रम् ।

प्रवृद्धशीलाङ्गरथाधिरुहस्तपःकृपाणः क्षमणः स्फुरोग्रः । धनुर्धरः शीलतनुत्रधारी विशिष्टशक्तिः सपृषत्कचक्रः ॥ ८३ ॥
॥ श्रीसूरिराजः प्रजधान रागद्वेषौ महीमण्डलवज्रपाणी । अतः पताकाद्वितयं जयस्य भूयुग्मनासामिषतश्चकास्ति ॥८४॥

कर्तुं स्वयंभूर्गुरुराजवाणीमिन्दोः सकाशादमृतं लुण्ठ ।

तद्दुःखभाक् सन् कृशतामुपैति, विभर्ति काष्ण्यं हृदये च कोपात् ॥ ८५ ॥

कर्तुं मनोभूर्गुरुवाचमिन्दुं, निपीड्य यत्रे कुहुनाग्निं दुष्टे ।

सुधां जग्राह प्रवरो ततोऽभूद्, विधुः कलङ्कच्छलतः सरन्ध्रः ॥ ८६ ॥

पद्मासनः श्रीगुरुनाथवाणीं, विधातुमिन्दोरमृतं जग्राह ।

तद्दुःखभाक् सन् जलधौ ममज्ज, नो चेत् कथं प्रादुरभूत्ततोऽयम् ॥ ८७ ॥

वराणि वाक्यानि गुरोर्निपीय, जाने नृणां नाकिगणेन साम्यम् ।

पीयूषपूरादधिकां नरोगां, बुधाः सुधां साधुतमां पिवन्ति ॥ ८८ ॥

तव गिरं गुरुराज ! विधिव्यधादमृतमण्डलतः प्रविलुब्ध तत् ।

पतित एष ततो रससीकरः, समभवद् रजनीरमणः खलु ॥ ८९ ॥

तृप्तिः परा स्यादमृताशनानां, पीयूषपानेन यथा विशेषात् ।

तथा त्वदीयाननसुक्तिसारपानाद् भवेद् भूरितरा नराणाम् ॥ ९० ॥

वेधा विधातुं गुरुराजवाचं, सर्वा सुधां वै जगतो जग्राह ।

देवो वृषाङ्गस्तदनासिभाक् सन्, भुङ्क्ते विषं साधु सुधाशनोऽपि ॥ ९१ ॥

॥ गिरं विधातुं हि विधिर्जग्राह सुधामशेषाममृतस्य कुण्डात् । अनन्तनागस्तदनासिदुःखान्ममज्ज मद्यामपि मूर्च्छयित्वा ॥९२॥
पीयूषपानं सुखदं तथापि वृथैव मचेतसि भाति यस्मात् । पीयूषपानादधिकानि कर्णे श्रुतानि वाक्यानि गुरोर्मयारम् ॥९३॥

गुरोर्गिरस्ता जगतीतलेऽलं, जयन्ति यासां विमलैर्विलासैः ।

बोधिर्जनेऽरं भवतीव मुक्ताशुक्तौ पयोविन्दुभिरानिलैः (?) ॥ ९४ ॥

गिरं गुरोर्वर्णयितुं क्षमो नो, सहस्रजिह्वोऽपि सहस्रवर्षैः ।

स्वर्पैर्दिनैरेकरसज्जकोऽहं, शक्नोमि तां वर्णयितुं कथं वै ॥ ९५ ॥

वविणिज्जभ [मय]णो मणहरदेहो पसत्थगुणनिलओ । सिरिविजयप्पहसूरी जयउ महीमंडले सयले ॥ ९६ ॥

स्नातस्याप्रमितस्य मेरुशिखरे शच्या विभोः शैशवे, यस्यास्यं पवलीकृतं नयनयोः कान्त्योल्लसद्दीर्घयोः ।

श्रीमच्छ्रीविशालाङ्गजस्य गणपस्तस्यैष पट्टोद्भुरः, सूरिश्रीविजयप्रभो विजयताद् विश्वम्भरामण्डले ॥ ९७ ॥

भव्यानां चित्तपाथस्तनयवनगणे सञ्चरद् भृङ्गराजः, पुण्याब्धिः प्रीतिदायी सितरुचिरिव यः स्वीयगोभिस्तमांसि ।

विध्वंसन् दुष्टकर्मद्रुमविपिनगणे मत्तहस्तीयमीन्द्रः, श्रीमच्छ्रीसूरिराजो जयतु वसुमतीमण्डले यावदर्कः ॥ ९८ ॥

पुष्पायुधस्य विजये विषयाम्बकामं, कल्पान्तकालपवनं खलु मोहदीपे ।

संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तुसेतूपमं सकलसूरिवरं प्रणौमि ॥ ९९ ॥

श्रीसूरिराजसदृशं समवाप्य नाथमन्यं गुरुं क इह सूर्खजनो भजेत ।

त्यक्त्वा शिशुं शुभमणिं प्रविहाय काचमन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ १०० ॥

निबिडमई सुहकरणो दुहहरणो सयलपावविसहरणो । आणंदिअसयलजणो जयउ वरो सयलमुणिणाहो ॥ १०१ ॥

इत्याद्यनेकगुणमणिधरणे सद्रोहणाचलामैश्च । अवधार्या प्रणतिर्मे स्वशिक्षावधार्य हितपूरम् ॥ १०२ ॥

निःशेषशास्त्रजलधेर्गतपारकाणां, स्वस्याङ्गसुन्दरतया जितहृच्छयानाम् ।

श्रीमद्विनीतविजयाभिधवाचकानां, वाच्या तथा गुरुवरैः प्रणतिर्मदीयाः ॥ १०३ ॥

तथा - कवयो नयधौरेया नयादिविजयाह्वयाः । रच्यादिवर्धनास्तेऽवघातिनः कृतिसत्तमाः ॥ १०४ ॥

यशोविजयिनः प्राज्ञा यशोविजयसंज्ञिकाः । रामाद्विजया धीमन्तः श्रीमन्तः स्फीतकीर्तयः ॥ १०५ ॥

धन्यादिविजयाः प्राज्ञाः सदाचारविशारदाः । तत्त्वज्ञानविदस्तत्त्वविजया गणयो वराः ॥ १०६ ॥

सिन्धादिविजयाः सन्तश्चतुराश्चतुराह्वयाः । केसराद्विजयाः स्मेरकेसरच्छविसाधवः ॥ १०७ ॥

इत्यादियतयो ज्ञाता, अन्येऽपि च भवन्ति ये । नतिश्चानुनतिस्तेषां विज्ञाप्या गुरुभिः सदा ॥ १०८ ॥

तथा - अत्रत्या गणयः सन्तः, शुभादिविजयाह्वयाः । विनेया विनयाह्वाश्च, विनयान्वितचेतसः ॥ १०९ ॥

वृद्ध्यादिविजयाः शास्त्राध्ययनाभ्यासकारिणः । भीमादिविजयाः सन्तो योगमार्गानुगामिनः ॥ ११० ॥

साध्यादिविजयाः शैक्षाः साधुमार्गे रताः सदा । शङ्कराः सर्वलोकानां शैक्षाश्च शङ्करर्षयः ॥ १११ ॥

इत्याद्या यतयस्सर्वे विनयानम्रमस्तकाः । संयोजितकराम्भोजा नतिं कुर्वन्ति सद्गुरौ ॥ ११२ ॥

तथाऽत्रस्था वरा साध्वी गुणलक्ष्म्याह्वया सदा । कर्मश्रीश्च तथा साध्वी तनोति प्रणतिं गुरौ ॥ ११३ ॥

तथा गम्भीरचन्द्राख्यः श्राद्धः सङ्घपतिर्वरः । पुञ्जराजस्तथा देश-मण्डलाधिपतिः पुनः ॥ ११४ ॥

छीतराख्यस्तथा पौरजनानामीशिता वरः । श्रावको राजचन्द्राख्यो जीवराजाभिधः पुनः ॥ ११५ ॥

श्राद्धः सहस्रमल्लाख्यो चत्सराजाभिधो धनी । तारणादासकः श्राद्धः संघमुख्यो महद्वनी ॥ ११६ ॥

स्तवनकथनदक्षः श्रावको मोहनाख्यो, जिनपतिततिपूजाकोविदः केसवाहः ।

निकटनिलयकस्थः श्रावको वर्धमानो, मुनिजनवरदाने दत्तसभ्यादरोऽसौ ॥ ११७ ॥

नारायणाभिधः श्राद्धः, प्रेमराजो बुधप्रियः । प्राग्वाटाः श्रावका एते, नमन्ति श्रीगुरुं मुदा ॥ ११८ ॥

मोहनश्चतुरश्राद्धः कर्मचन्द्रो दयाधनः । अमरसीमुखा वृद्धोत्केशज्ञातिन इभ्यकाः ॥ ११९ ॥

प्रधानो देवचन्द्राख्यो, जिनदासो महामतिः । मनजीप्रभृतिश्राद्धा, नमन्त्युत्केशमण्डनाः ॥ १२० ॥

मुख्या श्राद्धीवरा वारांनाम्नी धर्मानुगामिनी । हर्षांनाम्नी तथा श्राद्धी नमति श्रीगुरोः पदम् ॥ १२१ ॥

इत्याद्यत्रत्यसङ्घो यो वन्दते तस्य वन्दना । अवधार्या विशेषेण, गुरुभिर्गणनायकैः ॥ १२२ ॥

संपुटीकृतहस्ताब्जवृद्ध्यादिविजयस्य च । अवधार्या नतिर्नित्यं, विशेषाद् गुरुनायकैः ॥ १२३ ॥

मदहं चापि कार्यं वै, विस्तार्यं मयि सेवके । तथा कृपाप्रतानिन्यां, भाव्यं जीमूतवत् सदा ॥ १२४ ॥

वलमाना हिताशीश्च, प्रसाद्या गुरुपुङ्गवैः । अर्हदर्शनावसरे, स्मारणीयः शिशुस्तथा ॥ १२५ ॥

सालङ्कारा सदाकारा, सुभगा सुमनःप्रिया । वर्णनीया सकर्णानां, पत्रिका पुत्रिका मम ॥ १२६ ॥

कुर्यात् सूरिवरस्येयं, पाणिग्रहणमादरात् । जाता भाद्रवयोदश्यां, शुक्लायामिति मङ्गलम् ॥ १२७ ॥

॥ इति विज्ञप्तिलेखः ॥

तपोगच्छीयभट्टारकश्रीविजयदेवसूरिं प्रति उपाध्यायश्रीधनविजयगणिप्रेषिता

[१५] — विज्ञसिका —



स्वस्तिश्रीसुकनी स्वयंवरवरा चञ्चत्कलाशालिनी, तीर्थेशं श्रयति स्म यं सुरसरित् शम्भुं मुकुन्दं रमा ।
श्रीमद्वाशरथिं यथा जनकजा सर्वाचलं मेनिका, शीतांशुं किल रोहिणीव विलसत् पृथ्वीव पृथ्वीपतिम् ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रीः श्रयति स्म यं जिनपतिं निश्शेषशोभाभरं, वैकुण्ठं प्रसभं पुराणपुरुषं गोपाङ्गनासङ्गिनम् ।
दासाहं स्वपतिं जनार्दननरं प्रोत्सृज्य कृष्णद्युतिं, ज्ञात्वा वारिधिशायिनं च सहसा दामोदरं केशवम् ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीः कलहंसिकेव भजते यस्येशितुर्नित्यशः, पादाम्भोजयुगं स्वभावसुभगं संसारनीरातिगम् ।
सलक्ष्म्येकसुकेशरं गतमलं दुःकण्टकैर्वर्जितं, वन्द्यं विश्वनरामराधिपतिभिर्विघ्नौघनिर्नाशकम् ॥ ३ ॥
स्वस्तिश्रीः कमलाभिराममनघं यत्पादपद्माकरं, शिश्रायाभयदं सदा मुनिजनैः संस्तूयमानं स्तवैः ।
ज्ञात्वेति स्वकजं सकण्टकमहाभृङ्गारवैर्भीषणं, सीतकेशपदं जडैः परिचितं दुष्टैर्वकोटैर्हतम् ॥ ४ ॥

स्वस्तिश्रियः सर्वत एव सर्वा जिनोत्तमं प्राणपतिं प्रपन्नाः ।

यं प्राप्तदोषं जितरोषपोषं, विभाव्य चित्ते परयाऽतिभक्त्या ॥ ५ ॥

यस्याष्टकर्मक्षपणोद्यतस्य, नताङ्गिवृन्दारकपादपस्य ।

कथा स्मृताऽपीह पिपत्यभीष्टं, सतां नृणां कामगवीव वन्द्या ॥ ६ ॥

यो मूर्तिमान् जङ्गमकल्पवृक्षः, समग्रदः सर्वजनैरिहोच्यते ।

समञ्जसं तन्न विभासते यत्, भयप्रदो नैव जनेषु कर्हिचित् ॥ ७ ॥

यस्य क्रमाम्भोरुहि लाञ्छनस्थं, तुरङ्गमावीक्ष्य दधामि तर्कम् ।

तिर्यक्त्वमास्फोटयितुं स्वकं किं, सेवां तनोत्येष जिनाधिपस्य ॥ ८ ॥

तापाकुले तापनमण्डलेऽहं, रथस्य भारोद्धहनेऽप्यशक्तः ।

ततः क्व र्यामीति विचार्य लक्ष्मच्छलाद्धयो यत्पदमाश्रयत् किम् ॥ ९ ॥

संसारनीराकरतस्त्वयोद्धृताः, स्वामिन्नरौघा भवतोऽहिलीनाः ।

कृपां विधायोद्धर मामितीव, शङ्के हयः शंसति लाञ्छनस्थः ॥ १० ॥

यस्याहंतः स्वप्नगणार्चितस्य, मुक्तिं प्रति प्रस्थितिमा दधातुम् ।

संप्रेषितः किं विधिनाऽतिभक्त्या, हयः पदस्याङ्गमिषेण मन्ये ॥ ११ ॥

जातिस्तिरश्चामहमष्टमङ्गलः, स्वप्नेऽपि नादर्शि कथं जनन्या ।

इतीव विज्ञप्तिकृते यदंहिलक्ष्मच्छलाद् यत्पदमाश्रयत् किम् ॥ १२ ॥

येनार्हता स्वर्णरुचा स्वकान्त्या, स्थैर्याच्च किं निर्जित एव मेरुः ।

तत्साम्यमाप्तुं व्यजने तपोऽर्थं, जगाम यद् दृग्विषयोऽधुना न ॥ १३ ॥

यत्पृष्टिभामण्डलकैतवात् किं, निषेवतेऽहर्पतिरेव मन्ये ।

खरांशुतामत्र जनेऽतिनिन्दां, निषेधनार्थं सुमनाः स्वकीयाम् ॥ १४ ॥

गर्भे समागत्य जिनेन येन निर्धाटिता दोषततिर्जनानाम् ।
 सा तं समासादितमेव यत्तत्, तथ्याऽभवत् शम्भव इत्यभिव्या ॥ १५ ॥
 यदिष्टदानाम्बुदवर्षणेन, नृणां परिप्लावितदौःस्थ्यवृक्षाः ।
 न ते प्ररोहन्ति पुनर्यथा सरित्पूरेण सम्प्लावितपार्श्ववृक्षाः ॥ १६ ॥
 संवेष्टि कालत्रयमेव तत्त्वत्रयं च विश्वत्रयमित्यवैमि ।
 प्रज्ञापनार्थं शिरसि स्वकीये छत्रत्रयं योऽत्र जिनो बभार ॥ १७ ॥
 सद्वर्णंवा निरासीद्, यस्तीर्थराडित्यवधार्य येह ।
 यत्पार्श्वतो भक्तिभृतां न चैवं, ज्ञानादिरत्नस्य कुतोऽन्यथाऽऽप्तिः ॥ १८ ॥
 सेनासतीकुक्षिसरोमरालं, जितारिसर्वावनिनाथसूनुम् ।
 तं तीर्थनेतारमनन्तसारं, प्रेम्णा प्रणम्यामलशम्भवाख्यम् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीदेववर्णनम् ॥

पुरं स्फुरत् सूर्यपुराभिधानं, मनुष्यरत्नप्रवरं निधानम् ।
 कस्यास्ति नाह्लादकृते सुतेजश्चक्षुःपथस्थं हि यथा सुवर्णम् ॥ २० ॥
 वैदूर्यमुक्ताफलशङ्खशुक्तिप्रवालमुख्यैर्विविधैः पदार्यैः ।
 भृशं भृतायाः पुरतो हि यस्या, जलावशेषत्वमवाप वार्द्धिः ॥ २१ ॥
 श्रीमद्गुरुणां चरणारविन्दरजोम्भसा क्षालितभूतलायाः ।
 अनेकसत्पुण्यजनाश्रिताया, यस्याः पुरस्तादलकाऽलकाभा ॥ २२ ॥
 जाने दशोर्हृदकरञ्जनानां, पुरं सुधाकुण्डमवेत्य यत् किम् ।
 तद्रक्षणार्थं स्वयमेव मूर्तः, शेषोऽत्र वप्रच्छलतोऽभ्युपेतः ॥ २३ ॥
 पुराद् यतः श्रीनिलयादलक्ष्मीप्रवेशलेशप्रतिषेधनार्थम् ।
 मन्येऽहमेवं विहिता विधात्रा, किं खातिका वारिभृता समन्तात् ॥ २४ ॥
 यस्मिन् पुरासन्नवने निकामं, पिकाङ्गनानां मिषतस्समेताः ।
 किं नाकनार्यः सुरलोकतो द्राक्, सङ्कीर्तयन्त्यः सुगुरोर्यशोऽत्र ॥ २५ ॥
 अगण्यपुण्यप्रभवस्य लक्ष्मीं, निरीक्ष्य यस्यामरपत्तनं किम् ।
 स्वर्गे निवासं व्यरचत् वितर्कं, विषस्सचित्तं(?) घनलज्जयैव ॥ २६ ॥
 चन्द्रानना वारिजपत्रनेत्रा, यत्राङ्गना वीक्ष्य गवाक्षसंस्थाः ।
 ऊहं दधुर्ज्ञा इति पूर्णिमायामुदेति किं चन्द्रशतं रजन्याम् ॥ २७ ॥
 तेनुः सकर्णाः प्रविलोक्य तर्कं, यस्योपकण्ठे तपनात्मजां नदीम् ।
 समागताऽस्तीति विलोकितुं किं, पितुः स्वकीयस्य पुरं प्रवर्हम् ॥ २८ ॥
 सुश्रावकान् यत्र निरीक्ष्य मन्ये, जीवादिसत्तत्त्वविचारदक्षान् ।
 स्वात्मानमाधाय सहस्रधा किं, समागतः स्वर्गिगुरुर्गरीयान् ॥ २९ ॥
 सम्प्रेक्ष्य नारीर्ददतीः सुदानं, मध्यंदिने यत्र गता मुनीशाः ।
 कलौ युगे सन्ति न कल्पवह्नयश्चक्रुर्विचारं तदलीकमेव ॥ ३० ॥
 सुरालयात् स्वायतिसाधनाय, सुराङ्गना एव समागताः किम् ।
 श्राद्धाङ्गनानां मिषतोऽत्र मन्ये, दानं ददन्त्यो व्रतिनां हि यत्र ॥ ३१ ॥

यत्राब्जद्वयं रत्ननिवद्धभित्तौ, सङ्क्रान्तमालोक्य निजं स्वरूपम् ।
 निहन्ति पादेन रूपा सपत्नीबुद्धेति मन्ये दिवसावसाने ॥ ३२ ॥
 यत्रागताः पान्थजना विशेषं, विन्दन्ति नो घल्लनिशीथिनीनाम् ।
 रत्नप्रदीपैश्च गृहे प्रदीपैर्वियत्प्रदीपैर्दलितान्धकारे ॥ ३३ ॥
 यत्रार्हतश्चैत्यशिरःप्रदेशे, प्रोत्तम्भितं दण्डमवेक्ष्य मन्ये ।
 श्रीतीर्थनाथद्विषतां निहन्तुं, किं वेधसोद्ध्वीकृत एष दण्डः ॥ ३४ ॥
 यस्मिन् नराणां च जिनेश्वराणां, नरेश्वराणां वरमन्दिराणि ।
 स्वतोऽधिकान्येव विलोक्य जग्मुर्मन्ये सुरैर्कांसि विमानतां किम् ॥ ३५ ॥
 सद्गर्णवर्ण्यं वरशब्दयुक्तं, विभक्तिमन्मूर्खजनैरगम्यम् ।
 बह्वर्थमुल्लक्षणवच्च यत्पुरं, विशारदैः संश्रितमेव भाति ॥ ३६ ॥

प्रद्वेषो यत्र पापे दृषदि कठिनता निर्दयत्वं कृपाणे, रुद्रत्वं व्योमकेशे दिनकरकिरणे तापकर्तृत्वमस्ति ।
 जाड्यं न्यक्षे च वृक्षे कचवरनिचये बन्धनं वर्णिनीनां, दुष्टाचीर्णे विषादो बहुलमलिनता कज्जले नैव लोके ॥ ३७ ॥

श्रीमत्तपागच्छगुरोः पदाब्जन्यासेन संपावितभूप्रदेशे ।
 निरन्तरं साधुजनप्रवेशे, श्रियान्विते श्रीमति तत्र देशे ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीनगरवर्णनम् ॥

श्रीतातपादांहिपयोजसेवास्पृहालवः श्राद्धगणाः सुभक्ताः ।

वसन्ति यस्मिन् नगरे प्रकृष्टे, पुरात् ततो राजपुराभिधानात् ॥ ३९ ॥

संयोजितकरद्वन्द्वपद्मपेशलकुञ्जालः । विनयनतसर्वाङ्गो धनादिविजयः शिशुः ॥ ४० ॥

सानन्दं सप्रमोदं च बहुमानपुरस्सरम् । सौत्सुक्यं सादरं जाग्रद्भक्तिसम्भारपूर्वकम् ॥ ४१ ॥

विनयनयाञ्चितचेता हर्षात्संवर्धमानभक्तिरसः । सातिशयं सौवाशयनिवेदनाय प्रकटवचसा ॥ ४२ ॥

योगाभिमतपदार्थैर्गणितावर्तैः सदा समभिवन्द्य । प्रणयति विज्ञप्तिमिमां विधिवद् रोमाञ्चकञ्चुकितः ॥ ४३ ॥

कार्यं यथा चात्र सहस्ररश्मौ समागते पूर्वगिरीन्द्रशृङ्गे ।

सदिभ्यसभ्यैः परिपूरितायामानन्दतः संसदि सङ्गतायाम् ॥ ४४ ॥

श्रूयमाणं सुधायानमिव श्रोतृसुखावहम् । श्रीमतः पञ्चमाङ्गस्य व्याख्यानं दुरितावहम् ॥ ४५ ॥

सिद्धान्तन्यायशास्त्रादेः पाठनं पठनं मुदा । योगोपधानयोर्नित्यमुद्वाहनमनेकधा ॥ ४६ ॥

भविनां नन्दिकृन्नन्दिभवनं विधिसंयुतम् । द्वादशव्रततुर्यादिव्रतस्योच्चारणं शुभम् ॥ ४७ ॥

इत्यादिदिनकृत्यानि निर्विघ्नानि समाधितः । सिद्धिं प्राप्तानि सर्वाणि सञ्जायते स्म चाधुना ॥ ४८ ॥

क्रमागते श्रीमति सर्वपर्वगर्वान्धकारा(?) दिवसेश्वराभे ।

श्रीक...पर्वणि सर्वदेवैः, कृतोत्सवे धर्मभराभिरामे ॥ ४९ ॥

स्नात्रं श्रीजिनसदने पूजा जिनपस्य सप्तदशभेदैः । गीतनृत्यादि(?) युक्ता पुस्तकपूजाऽङ्गपूजा च ॥ ५० ॥

श्रोतृजनसेवकल्पितकल्पद्रुमकल्पकल्पसूत्रस्य । सक्षणनवक्षणैरपि व्याख्याऽखिलशास्त्रसारस्य ॥ ५१ ॥

षष्ठाष्टमवराष्टाहपक्षक्षणमुख्याकः(?) । तपोविधिरष्टकर्मक्षणप्रवर्णो... ॥ ५२ ॥

साधर्मिकजनपोषणमधसन्ततिशोषणं सुकृतकरणम् । बहुजिनगुरुगुणगायनमनुजानां द्रविणदानं च ॥ ५३ ॥

द्वादशदिनान्याव...भयदानघोषपटुपटहः । चैत्यपरिपाटिकायाः करणं सङ्घार्चनं चैव ॥ ५४ ॥

इत्यादिपर्वकर्माणि ससौख्यानि निरन्तरम् । निरपायतया सम्यक् प्रावर्तन्त महोदयम् ॥ ५५ ॥

श्रीतातनाममन्त्रस्मरणासाधारणैककारणतः । यद्वद्दिनकरकिरणैस्सहस्रपत्राणि विकसन्ति ॥ ५६ ॥

अपरं च—

यन्नाममन्त्रस्मरणं सुधातोऽधिकं परिप्रत्यवधारयामि । आद्यं चिदानन्दकरं जनानां पीता सती तुष्टिकरा यतः सा ॥ ५७ ॥

येनात्मरूपेण तृणीकृतः प्राक्, श्रीनन्दनः साधुजनोपगर्ह्यः ।

भवाम्बकोद्धूतहिरण्यरेतसा, नो चेत् कथं दह्यत एव शीघ्रम् ॥ ५८ ॥

यद्वक्तुं राकाशशिना समत्वं, सम्बिभ्रता चन्द्रमसा यदासम् ।

दुश्चिह्नमद्यापि घनाश्रयस्थस्त्वदर्शयत् पङ्कमिषात् किमिन्दुः ॥ ५९ ॥

कैलासशैलोदरगौरकान्तियशो यदीयं नितरां भ्रमत् किम् ।

कृत्वा त्रिलोकीं धवलामवैमि मरुत्पथे, क्रीडति चन्द्रदम्भात् ॥ ६० ॥

धर्मोपदेशावसरे यदीयमुखेन्दुसंसूतवचःसुधा यत् ।

निपीय केचित् सुमनःस्वभावं, केचित् व्रजन्त्यक्षरतां च धन्याः ॥ ६१ ॥

दृष्टेष्वनिष्टेषु च यस्य साम्यं, संवीक्ष्य दोषाः कृतरोषपोषाः ।

कुशिक्षशो(शै?)क्षा इव ते स्वदोषमज्ञायमाना हि परं प्रपन्नाः ॥ ६२ ॥

यस्योत्कटं ध्यानबलं विचार्य, दूरं गताः सप्त दरा भियेव ।

तेऽप्राप्यमाणा वसतिं जनेऽस्मिन्, यद्वैरिणां वासगृहं प्रविष्टाः ॥ ६३ ॥

येन स्वगत्या जिनराजहंसो, विलज्जितोऽगाद् वरमानसे किम् ।

यद्वक्त्रमित्रं कमलं निरीक्ष्य, वैरं स्मरन् चञ्चुपुटेन हन्ति ॥ ६४ ॥

निषेवतेऽयं जलधिस्समेत्य, पदोर्ध्वरेखाच्छलतः किमेषः ।

विज्ञप्तिकां कर्तुमितीश ! जह्यान्मे क्षारदोषं जगतामनिष्टम् ॥ ६५ ॥

योऽगाधसंसारपयोधिमध्ये, पतञ्जनानां करुणास्पदानाम् ।

स्ववाक्तरण्यामधिरोप्य पारं, नयत्यजस्रं वरनाविको यथा ॥ ६६ ॥

कर्पूरपूरोपमया यदीयकीर्त्या त्रिविश्वं भृतमेवमन्ये ।

चेन्नैवमेषा जगति प्रपूर्णे, कुतोऽन्यथा प्राज्ञजनैः प्रगीयते ॥ ६७ ॥

सद्विद्यया वज्रमुनीश्वरस्य, लब्ध्येन्द्रभूतेस्तपसोद्वलेन ।

श्रीमज्जगच्चन्द्रमुनीशितुः सद्धानेन च श्रीमुनिसुन्दरस्य ॥ ६८ ॥

श्रीसिद्धसेनस्य कवित्वशक्त्या, साम्येन च श्रीगुरुहीरसूरेः ।

षट्त्रिंशदाचार्यगुणैर्गरिष्ठो, यः साम्यमाविभ्रति सूरिराजाम् ॥ ६९ ॥

गुणैकसद्रत्नसुरोहणानां, कृपारसप्रीणितसञ्जनानाम् ।

स्वस्थैर्यतस्तर्जितमन्दराणां, गाम्भीर्यतो धिक्कृतसागराणाम् ॥ ७० ॥

श्रेयोवतां भाग्यवतां तपस्विनां, महात्मनां पुण्यवतां यशस्विनाम् ।

भक्त्योल्लसद्वासववन्दितानां, तेषां गुरुणां नयनन्दितानाम् ॥ ७१ ॥

स्वहस्तलिखितस्याशुलेखस्यागतिमुत्तमाम् । समीहते शिशुर्नित्यं मनःसन्तुष्टिपुष्टये ॥ ७२ ॥

तेन श्रीमद्गुरुभिर्गुणगुरुभिः प्रवरबुद्धिजितगुरुभिः । छन्दोऽलङ्कृतकर्मागमशास्त्रे निहितनिजमतिभिः ॥ ७३ ॥

सौवश्रीसारवपुःपरिकरनैरुज्यसूचनाचतुराः । लेखाः प्रसादनीयाः प्रसद्य सद्यः स्वकीयशिशौ ॥ ७४ ॥

प्रणतिरवधारणीयौपवैणवं शैशवी विशेषेण । श्रीतातैरान्तैर्निष्णातैर्विश्वविख्यातैः ॥ ७५ ॥

तत्रापि विगततन्द्राः श्रीमत्श्रीवाचका अमरचन्द्राः । श्रीतातचरणवारिजसेवारसरसिकमधुपेन्द्राः ॥ ७६ ॥

विबुधाः क्षिमादिविजया विबुधवरा रामविजयगणयश्च ।

प्राज्ञा विनीतविजया धृतहृदयाः परमगुरुकृत्ये ॥ ७७ ॥

सद्विद्या नयविजया विबुधा विबुधाश्च वीरविजयाहाः ।

मतिमन्तो मतिविजया विबुधवराः परमगुरुभक्ताः ॥ ७८ ॥

कृष्णविजयविबुधा अपि पण्डितमुख्याश्च शान्तिविजयाहाः ।

अमरविजयवरविबुधा [विबुध]वरा लीलचन्द्राश्च ॥ ७९ ॥

गणयोऽपि गङ्गविजया जसविजयगणिवराश्च गणयोऽपि ।

रामविजयनामानो गणयोऽपि च लालविजयाख्याः ॥ ८० ॥

जयविजयाभिधगणयो गणिनी चम्पा तथा सती प्रेमा ।

शीलवती च जयश्री-[सु?]मतिश्रीः सत्यशीलधरा ॥ ८१ ॥

इत्यादिसाधुसाध्वीवर्गाणां तातचरणभक्तानाम् । अनुनतिरपि प्रसाद्या सद्योबन्धैस्त्रिदशततिभिः ॥ ८२ ॥

अत्रत्या धीमन्तः प्रेमविजय-कुंअरविजयगणयश्च ।

सौभाग्य-सिद्धविजयाः, तेजविजयगणिवरा अपि च ॥ ८३ ॥

सहजश्री-जयतश्रीप्रमुखाः प्रणमन्ति तातगुणरक्ताः ।

सङ्घसकलोऽत्रत्यो विशेषतो भक्तितो नमति ॥ ८४ ॥

न्यक्षं विज्ञप्त्यनौचित्यं क्षन्तव्यं क्षन्तुमर्हितैः । हिताशिषः प्रसाद्याश्च विशेषोदन्तगर्भिताः ॥ ८५ ॥

नमतितरां वरभक्त्या विशेषतः सिद्धविजयशिशुरणुकः । बाहुलबहुले पक्षे पञ्चम्यां सशिवमिति भद्रम् ॥ ८६ ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ श्रीसूरतबन्दिरे । पूज्याराध्यसकलभट्टारकवृन्दवृन्दारकभट्टारकश्रीविजयदेवसूरीश्वर-
चरणेन्दीवराणां विज्ञप्तिरियम् । राजपुरात् ३० श्रीधनविजयगणिलेखः ॥ सम्बत् १७०४ ॥

तपागच्छपतिभट्टारकश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० श्रीउदयविजयगणिप्रेषिता

[१६] — विज्ञसिका —

स्वस्तिश्रीपार्श्वनाथस्य पादपद्मनखांशवः । विस्तारयन्ति तरणेः प्रकाशमिव भानवः ॥ १ ॥
त्रयी धर्मार्थकामानां यदुपास्ति लतासुमम् । तत्फलं पुनराख्यातं कैवल्याद्याः श्रियोऽखिलाः ॥ २ ॥
श्रद्धामात्रमपि प्रोचैर्यत्र सौख्यनिबन्धनम् । तदयुक्ताया उपास्तेस्तु फलं केन प्रमीयते ? ॥ ३ ॥
ज्ञानदर्शनचारित्र्यत्री यस्मिन्ननावृता । इन्दौ द्योतित्वसौम्यत्वाद्वाहकत्वत्रयी यथा ॥ ४ ॥
यस्मादाविरभूत् पापोपशामकगुणोऽद्भुतः । वार्दलानावृतस्यांशोरिव पङ्कप्रशोषिता ॥ ५ ॥
अनावरणरूपाय तस्मै भगवतेऽर्हते । श्रीमते पार्श्वनाथाय नमः शाश्वतसम्पदे ॥ ६ ॥
एनमेनस्तमःस्तोमनिराकरणभास्करम् । सर्वातिशयसम्पन्नं प्रणम्य परमाशयम् ॥ ७ ॥
धनं धान्यं हिरण्यं च मणिमाणिक्यजातयः । पयांसीव पयोराशौ यत्रासंख्याः पदे पदे ॥ ८ ॥
गृहे गृहे विराजन्ते यत्र रामा रमा इव । ईहमाना यथाभीष्टं पुरुषोत्तममुत्सुकाः ॥ ९ ॥
परिभूता अपि परैरुच्चाः स्युरूपकारिणः । ध्वजाहतोऽपि यच्चैत्यात् कुम्भाभापूरकोऽशुमान् ॥ १० ॥
चन्द्रकान्तगणाश्चन्द्रशालायां यत्र मण्डिताः । भृशं स्निग्धा इवाऽऽभान्ति राज्ञासित्तयः(?) किलामृतैः ॥ ११ ॥
गगने च पुरे चापि तारकैर्मणिभिर्भूते । सौम्यो नीत्या च कौमुद्या राजा चित्तदृशोः प्रियः ॥ १२ ॥
यत्र कर्पूरकस्तूर्यश्चूर्णिता अपि भोगिभिः । कुर्वते भृशमामोदं महतां रीतिरीदृशी ॥ १३ ॥
टङ्कच्छिन्नं कषारूढं तापितं च पुनः पुनः । यत्र स्वर्णं महामूल्यं सेयं सुजातरूपता ॥ १४ ॥
निशायामपि रत्नानि सुप्रकाशानि यद्गृहे । व्यालुप्यन्ते न तमसा नूनं सेयममूल्यता ॥ १५ ॥
श्रावक-श्राविका यत्र धर्मकर्मणि कर्मठाः । चकोरा वा चकोर्यो वा श्रीपूज्यशशिदर्शने ॥ १६ ॥
भरतैरवतप्रायाण्यन्यक्षेत्राणि मन्महे । श्रीपूज्यपावितं क्षेत्रं महाविदेहभूरिव ॥ १७ ॥
नित्यं धर्मार्थकामाढ्ये श्रीपूज्यपदपाविते । तस्मिन् श्रीजीर्णदुर्गाख्ये व्यावर्ण्ये पण्डितैरिति ॥ १८ ॥

*

अथ श्रीसिद्धपुरतः पुरतः सुखपूरकात् । अपूर्वचातुरीयुक्तश्राद्धलोकसमन्वितात् ॥ १९ ॥
अप्रेमयगुणापूर्णादसङ्ख्येयविधिश्रितात् । बृह...पूज्ययुगलीपवित्रीकृतभूतलात् ॥ २० ॥
श्रीपूज्यानामिदानीं च दर्शनोत्सुकमानवात् । श्रावक-श्राविकादत्तयथासमयसौख्यतः ॥ २१ ॥
प्रीतचेता विनीतात्मा श्रीपूज्यगुणरागवान् । प्रेमपाथोद्विष्टद्वेल औत्सुक्यतरुवारिदः ॥ २२ ॥
द्वादशावर्तविधिनाऽभिवन्द्य प्रणयाञ्चितः । प्रीत्या उदयविजयो विनीतात्मा तनोत्यमूम् ॥ २३ ॥
विज्ञप्तिं ज्ञप्तिधर्तव्यां(?) सुदक्षजनकामिताम् । विनयादिगुणश्रेणीमणीमञ्जूषिकामिव ॥ २४ ॥

यथावत् कृत्यं चात्र —

व्यतिक्रान्ते निशाध्वान्ते घातिकर्मणि दूरतः । केवले प्रकटीभूते सूर्यालोके जगन्मुनेः ॥ २५ ॥
वनाद्नान्तरं यान्तः पक्षिणस्त्रिदश इव । सूर्याशुकेवलोत्पत्तिं ख्यापयन्तीव सोद्यमाः ॥ २६ ॥
प्रातस्त्यैर्नूतनोद्बोधैर्हर्षकोलाहलोपमैः । शङ्कतैर्मधुपानां तु वीणादीनामिवारवैः ॥ २७ ॥ — शुग्मम् ।
इति व्यावर्णनौचित्यमादधाने समन्ततः । प्रत्युषसमये जाते दिक्कन्यानवयौवने ॥ २८ ॥

श्रियमुच्चपदाभिलाषिणीमधिगम्य प्रियमेलकः प्रभुः । इह तामभियोज्य जिष्णुना प्रणतेन स्वयमास कामदः ॥ १ ॥
 कलिकालकरालकज्जलैर्विदधुर्ये नयनाञ्जनं जनाः । खलु भावदशां निमीलनं, समवापुस्तत एव तेजसा ॥ २ ॥
 तदमुष्य विशिष्य भेषजं प्रणतिः श्रीप्रभुपादपद्मयोः । अलमस्त्युपचारकर्मणेऽत्रामुत्रापि च नित्यशर्मणे ॥ ३ ॥ — युग्मम् ।
 कमनीयतया कनीयसीमपि चक्रुः प्रभुपर्युपासनम् । प्रभवेद् भविनां भवे भवे यदमीषां शिवसम्पदे हि सा ॥ ४ ॥
 न रविर्न शशी न मङ्गलो न बुधो नापि गुरुर्न चोशनाः । न शनिर्न तमः पराभवं कुरुते यस्य सखोरगध्वजः ॥ ५ ॥
 बहुधा विविधावलेपनैः किमु धावन्ति मुधा सुधाशयाः । विबुधा अबुधा अपीक्ष्यते यदियं निर्भरनेत्रयोः प्रभोः ॥ ६ ॥
 कुशली किल सैष लभ्यतेऽतः प्रणयात् परिरम्यते भृशम् । वपुषा वचसा च चेतसा पदपद्मस्तव चिन्तनं प्रभोः ॥ ७ ॥
 सुरलघटादयो घटामुपटीकन्त इतः परां परे । अधरीकृतदेवपादपा विजयन्ते पदरेणवः प्रभोः ॥ ८ ॥

॥ इत्यष्टकम् ॥

एवं जीरापल्लीपार्श्वजिनं वृजिनकन्दकुलपार्श्वम् । श्रितधरणाधिपपार्श्वं प्रणयनरात्(?) प्रणिपनीपत्य ॥ २५ ॥

अथ नगरवर्णनम् —

यत्राभ्रंलिहरत्नसौधशिखरे नक्षत्रतारोत्करः, खिन्नः खिन्न इव व्रजन् प्रविरलीभूतः स्वतः संस्थितः ।
 अत्रे वम्भ्रमणक्लमव्यपगमं निर्मातुकान्तिप्रियः, [सत्यं] सत्पदवीमवाप्य सुखितो देदीप्यते वा न कः ॥ २६ ॥
 यत्रोर्ध्वं मणिकुट्टिमे मृगदृशः क्रीडन्ति हर्म्ये मिथो, मुग्धाः स्वप्रतिबिम्बतोऽपरधिया द्रुहन्ति मुह्यन्त्यपि ।
 जानन्त्यो विनिवारयन्ति चतुराः सख्यः समेता हि ता, अन्योऽन्यार्पितहस्ततालमितैरहस्यन्त उत्प्रेक्षकैः ॥ २७ ॥
 कापि प्रोषितभर्तुका चटुलदृक् स्वं रूपमालोकयत्यादर्शयितरत्नभित्तिवले प्राप्ता मणीमन्दिरम् ।
 किं रूपं किमु यौवनं विरमणं ध्यायन्त्यगान्मूर्च्छनां, हा हा हे ! ति वचो मिलत्सखिजनैरुन्मृज्य सम्बाध्यते ॥ २८ ॥
 यत्र स्वर्णगिर्बहन्मणिमया वासाश्रयानुग्रहा, वाणिज्याब्धिपथप्रवासजनितायासं विनापीश्वराः ।
 अन्येषां कृतविस्मयाः समभवन्निःसङ्ख्यलक्ष्मीजुषः, सानन्दा अपरेन्दिराऽर्जनकृते मन्दादरा नागराः ॥ २९ ॥
 यत्र स्फाटिकरत्नकोटिघटितप्रासाददम्भादगात्राके शङ्करसङ्करोत्तरशिराः(?) कैलाशशैलः किमु ।
 ईशानं परमेश्वरं शिवमिह श्रीकण्ठमुत्कण्ठया, विज्ञायोपगतं महाव्रतिपतिं श्रीवामदेवं गुरुम् ॥ ३० ॥
 यत्रोत्तुङ्गमहेन्द्रनीलभवनश्रेणीवलभ्यां स्थितः, फुल्लत्फुल्लदलावलीकवलनाच्चन्द्राङ्कशायी मृगः ।
 प्राप्तस्तुन्दिलतां ततः स्थगयति कापि क्षणे कौमुदीकान्तं तेन सितेतरः किमभवत् पक्षो वलक्षोऽपरः ? ॥ ३१ ॥
 कुत्राप्युद्वलचन्द्रकान्तरचितप्रासादपङ्केः क्षरत्-पीयूषप्रसरत्प्रवाहनिवहे स्नानं वितेनुर्जनाः ।
 आयासेन विनापि चत्वरपथे नैदाघदाघार्दिता, नक्तं पूर्णकुमुद्वतीवरयितुः स्फीतोदये कौतुकात् ॥ ३२ ॥ — युग्मम् ।
 यत्राकौपलकोटिहस्तनिलयव्यूहः सहस्रद्युतौ, मध्याह्ने परितः स्फुरत्यभिनमः पास्फाति यद्युदधनः ।
 हालार्जिहजटालपिण्ड इव तद् दृष्ट्वेति भर्तुर्भुवो, मूर्त्तः किं प्रबलः प्रतापनिवहः सम्भाव्यतेऽभ्यागतैः ॥ ३३ ॥

॥ इति नगरवर्णने सौधाष्टकम् ॥

जिनभवनवितानोत्तुङ्गशृङ्गावनद्धा, कनकमणिमयोद्यत्किङ्किणीक्वाणरम्या ।
 श्रियमिव दशदिग्भ्यस्तूर्णमाकारयन्ती, नवनवपवमानप्रेरिता वैजयन्ती ॥ ३४ ॥
 त्वमसि परिणतैकश्रीदमस्मि प्रभूतोपचितधनदयुक्तं चैकसद्देवराजम् ।
 अहमिह बहलेन्द्रं चैककैरावताढ्यं, बहुभिरिभवरेन्द्रैर्भासमानं तथाहम् ॥ ३५ ॥
 त्वमसि मम पुरः किं लेखकोल्लेख्यहर्षं, सुरपुरमिति तर्जन्येव यत् सन्ततर्जं ।
 जिननिलयसमीपरेणेतस्ततः सत्, प्रसरणगुणवल्गाद्वैजयन्त्या मिषेण ॥ ३६ ॥ — युग्मम् ।

गुरुपदपरिचर्याकारिणां कीर्तिकन्या, वियति विचरयिष्यत्याशशङ्कस्य बिम्बम् ।
 जिनभवनपताका प्रेरिता वातपूरैस्तत इयमिदमीयं मार्गमादौ प्रमार्ष्टि ॥ ३७ ॥
 त्रिभुवनगुरुसद्गुणस्फायमानोत्तमाङ्गे, किल धवलदुकूलाङ्गायती वैजयन्ती ।
 त्रिदिवसरिदिवाभान्मूर्ध्निभर्तुर्भवान्याः, किरणनिकरनीरस्फाररङ्गत्तरङ्गा ॥ ३८ ॥
 परमियमसुमन्तं दूरतः प्रेक्षिताऽपि, प्रसभदुरितहर्त्री द्राक् पवित्रीकरोति ।
 सलिलसवनकर्तुः सा तु बाह्याङ्गमेवाशुचितनुमलकेशाकीर्णमध्या पुनाति ॥ ३९ ॥
 तरुणजिनविहारोत्तंसपौखोत्तमस्य, प्रवरतरवराङ्गस्येव चूलापताका ।
 ललितमरकतोस्रैर्मेचकीभूतवर्णा, विनतविवृतमध्यप्रान्तमूला प्रलम्बा ॥ ४० ॥
 जिनपतिगृहशीर्षस्थाणुसौवर्णकुम्भाऽऽकृतिरिह किमु पूषा तिष्ठति स्मोपरोधात् ।
 रविरथहयराज्या वैजयन्त्या लता या, निभृतमसितुलिष्णा निश्चलाया अनन्ते ॥ ४१ ॥

॥ इति नगरवर्णने जिनसद्गुणसङ्क्षिपताकावर्णनाष्टकम् ॥ २ ॥

स्पृहयन्ति न के न केलये प्रवरं तत्पुरमीप्सितासये । विपणौ बत यत्र लभ्यते पतिता मौक्तिकरत्नसन्ततिः ॥ ४२ ॥

कथमिति चेदुच्यते-

क्वचिदिभ्यकुमारिकाजनो मणिमुक्ताफलभूषणोद्भूतः । रमते प्रतिचत्वरं मिथो हृठहलीसकबालकेलिभिः ॥ ४३ ॥
 रभसात् झुटिता पतेदपि श्लथबन्धा मणिमौक्तिकावलिः । निपुणा अपि नो गवेषयन्त्यपरास्ताः पृथुपृ...पूरिताः ॥ ४४ ॥
 समये समवाप्यते न कैः पथि गच्छद्विरथापणान्तरा । किरणैस्तारुणारुणस्य सा द्युतिदीप्ता प्रकटीकृताऽभितः ॥ ४५ ॥
 रमणायतनं पितुर्गृहात् कृतभूषा क्वचिदिभ्यवलम्बा । विपणेः पथि तामपातयत् किल यान्ती सहसा स्मरातुरा ॥ ४६ ॥
 अथवा कुतुकावलोकने रसिका काऽपि पणाङ्गना । क्वचिद् बहुमण्डनमण्डिता स्थिता विपणैर्वर्त्मनि लोकसङ्कुले ॥ ४७ ॥

हृदयं हृदयेन दल्यते बहुसम्मर्दवशाच्चतुःपथे ।

मणिमौक्तिककञ्चुकाञ्च्युतां तामन्तःक्षिति साऽभ्यपातयत् ॥ ४८ ॥ - यमलम् ।

यदि वा व्यवहारिणां कराद् व्यवसाये मणिमौक्तिकार्पणे । मनसोऽनुपयोगतश्च्युता पतिता सा सहसा निशामुखे ॥ ४९ ॥

॥ इति नगरवर्णने विपणिपथवर्णनाष्टकम् ॥ ३ ॥

पुरे यत्र चित्रापणश्रेणिशोभां निभाल्याध्वगा दूरदेशादुपेताः ।

विकल्पैरल्पैः प्रजल्पन्ति कल्पा मिथोऽन्योऽन्यहस्तापितोत्तालतालम् ॥ ५० ॥

क्वचिद्यत्र कर्णरूपोपरिष्ठाद् द्विरेफोत्करोऽङ्गारभूयं विभर्ति ।

निलीनं स्फुरत्सौरभास्वादलुब्धो भ्रमन् रौति नामेति कर्तुं वृथैव ॥ ५१ ॥

क्वचित् कृष्णकस्तूरिकाराशिसंस्थं, निलीनं न जानन्ति कालालिचक्रम् ।

अपि ग्राहका दायकास्तुल्यमूल्यं, तदप्यश्रुते किं नवा साधुसङ्गात् ॥ ५२ ॥

क्वचित् कान्तकाश्मीरजप्राज्यपुञ्जं, विलोकयात्र लोकाः प्रजल्पन्त्यमीषाम् ।

अजर्यं हि काश्मीरदेशाधिपेन, प्रभूतं दरीदृश्यते नागराणाम् ॥ ५३ ॥

क्वचिज्जात्यसच्चन्दनैः पूर्यमाणापणश्रेणिमालोक्य मन्दादराः स्युः ।

नरा नन्दने चन्दनद्रौ तदद्रौ यतो निष्ठितार्था भवन्ति स्म ते तैः ॥ ५४ ॥

क्वचित्तरहारोत्करो मौक्तिकानां, भ्रमं वासुकेः प्रेक्षकाणां प्रदत्ते ।

समेतस्य भोगावतीगर्भसर्गकषं यत्पुरं विक्षितुं स्वीयदृष्ट्या ॥ ५५ ॥

कुलाद्रौ वितीर्य क्षमाभारमब्धौ शयाने हरौ जातु निश्चिन्तचेताः ।
 अथात्रैव तन्नागरीनेत्रलीलाकटाक्षैर्ध्रुवं यन्नितात्मेव तस्थौ ॥ ५६ ॥ — यमलम् ।
 कचिच्चीनपीनांशुकैर्लीनदेशः स्फुरद्भामहेम्नाम्भरैः स्वर्णशैलाः ।
 विशुद्धौषधीभिः समाकृष्टमिष्टः सपादोत्तरो लक्ष्यनामा गिरिः किम् ॥ ५७ ॥
 ॥ इति नगरवर्णने हृदयस्तुविशेषवर्णनाष्टकम् ॥ ४ ॥

एवं सर्वाङ्गीणप्रसमरपरभागपूरिते तत्र । श्रीमति पत्तननगरे गुरुपदकमलस्फुरत्कमले ॥ ५८ ॥
 साम्प्रतसमयसमुत्थितनैसर्गिकभोगिभुक्तभूभागात् । श्रीस्तम्भतीर्थनगरोत्तरवन्दिरतो गुणाश्रयतः ॥ ५९ ॥
 स्निग्धानन्दसुधाम्भोधिसवनसावनीभवन् । औत्सुक्यदिव्यवासोभिः संवीतस्फीतसञ्चरः ॥ ६० ॥
 गुरुभक्तिरसस्फारवारहारविराजितः । श्रीमद्गुरुगुणग्रामपुष्पदामसमन्वितः ॥ ६१ ॥
 हृल्लेखघुसृणोल्लेख्यविशेषकविशेषितः । अप्रमेयप्रमेयोक्तिरसताम्बूलपेशलः ॥ ६२ ॥
 पाणिसंयोजनास्वर्णमुद्रामण्डनमण्डितः । व्यवहारसदाचारव्यवहारीभवनमनाः ॥ ६३ ॥
 विनेयोन्नेयविज्ञेयविनयश्रीफलोद्बलः । गुर्बर्चिःप्रमितावर्तवन्दनार्होत्तरीयकः ॥ ६४ ॥
 संश्रयस्मयसंस्कारपरीहारकृतादरः । यौगाभिप्रेतजीमूतप्रसूनैकगुणाश्रयः ॥ ६५ ॥
 महीतलमिलन्मौलिललाटघटिताञ्जलिः । प्रपञ्चयति विज्ञप्तिं कमलाद्विजयाह्वयः ॥ ६६ ॥
 यथानिमित्ताधीनात्मलाभमभ्युदगते रवौ । पठत्सु वेदगर्भेषु वेदोद्गारमहर्मुखे ॥ ६७ ॥
 उत्तालोत्कलिकाकोलाहलं कुर्वत्सु सर्वतः । कचित्तुलायकूलेभ्यः प्रचलत्सु शकुन्तिषु ॥ ६८ ॥
 विकस्वरेभ्यः कोशेभ्यः सरस्सु सरसीरुहाम् । मधुव्रतेषु निर्यत्सु झङ्कारमुखरोन्मुखम् ॥ ६९ ॥
 अन्योऽन्याजल्पाक.....पानीयाहारिकास्वपि । पेयपानीयमानेतुं प्रयान्तीषु सरः प्रति ॥ ७० ॥
 कचित्सुरतसम्मर्द्धान्मुक्ताहारपरिच्युताः । मुक्ताफलानां सारिकाः शयनीयनिकेतने ॥ ७१ ॥
 बाढं गवेषयन्तीषु कान्तासु निभृतेक्षणम् । तद्वासीषु भ्रमन्तीषु वीक्षितुं ता इतस्ततः ॥ ७२ ॥ — यमलम् ।
 कचिन् मङ्गलतूर्येषु नन्दत्सु नृपमन्दिरे । झलरीस्फारझात्कारे प्रसर्पति गृहेऽर्हताम् ॥ ७३ ॥
 एवं नवनवानेकप्रातस्त्यार्हप्रयोजने । सञ्जायमाने पार्षधहृद्यायां प्रौढपर्वदि ॥ ७४ ॥
 वाचनं पञ्चमाङ्गस्याचाराङ्गस्याप्यनुक्रमात् । अध्यापनं मुमुक्षूणामियत्येवार्हकर्मणि ॥ ७५ ॥
 वर्तमाने क्रमायातं पर्वं पर्युषणाभिधम् । सर्वपर्वार्खर्वगर्वसर्वकषमतिश्रुतम् ॥ ७६ ॥
 कियद्दिनोदितामारीपटहस्फुटघोषणैः । कियत् कुर्मव्यापारनिवर्त्तननिवर्त्तनैः ॥ ७७ ॥
 षष्ठाष्टमादिदुस्तप्यतपोव्रतैरनावृत्तैः । साधर्मिकजनश्रेणितोषणैः पुण्यपोषणैः ॥ ७८ ॥
 अर्हद्भुवनभूयिष्ठस्नानपूजाप्रवर्त्तनैः । मार्गिताधिकदानेन मार्गणश्रेणितोषणैः ॥ ७९ ॥
 कल्पद्रुकल्पश्रीकल्पसूत्रनवनवक्षणैः । प्रभावनाभिः श्रीखण्डापूर्गीश्रीफलनाणकैः ॥ ८० ॥
 इत्यादिपर्वप्रायोग्यकृतैः सज्जितविक्रमम् । महामहसहायेन निर्व्यूढं निरपायतः ॥ ८१ ॥
 प्रमापणपथारूढप्रत्यूहव्यूहसम्भवात् । श्रीमत्पूज्यपदाम्भोजप्रभावोदयतोऽपरम् ॥ ८२ ॥

अथ गुरुवर्णनम् —

सहृदयाः सदयं हृदयं विदुः सुविहितेन्द्रतपागणधारिणम् । अवितथं कथमित्यवसीयते यदुदयाददयत्वमितीक्ष्यते ८३
 असममोहमहेन्द्रमहाबलोद्भटभटाग्रिममन्मथपार्थिवम् । प्रमथनाथ इव ज्वलितः क्रुधा यदुदभूजयनातिथितां नयन् ॥ ८४ ॥
 सुरपतेरपि सत्त्वमपातयन्नरपतेरपि मानमखण्डयन् । जिनपतेरपि हन्त कियद्दिनीमभिमतः प्रथिताक्षतविक्रमः ॥ ८५ ॥
 तमजितौजसमाः शिशुतावधेः प्रसभमत्तकरीन्द्र इव द्रुमम् । समुदमूलयदात्मबलेन यो रतिपतिं सदयत्वमदः कथम् ॥ ८६ ॥

अपृथगात्मकमाजननावधेर्जनितदार्ढ्यमरङ्गमभङ्गुरम् । प्रणयमेकहृदां सुहृदां मिथः प्रलयमेकलयं नयति स्म यः ॥८७॥
नरकनिम्नगतेः प्रतिभूरभूद् बहुतरासुमतां सुमतान्तिकः । तमपि कोपमलोपममारयद्रयत एव कथं सदयः सकः ॥८८॥

अहह ! बाहुबलिर्बहलीपतिर्भरतभूमिपतिं भरतेश्वरम् ।

युधि विजित्य बभूव जितेन्द्रियस्तमपि यः स्म विडम्बयति स्वतः ॥ ८९ ॥

तमपि मानममानभुजौजसा द्रुतमगालयदम्भ इवोत्वणम् ।

लवणखण्डमखण्डमहाबलः प्रभुरसौ सदयः सदयः कथम् ॥ ९० ॥

वितनुते सहनं वशवर्त्तिनं विदलयत्यपि दुर्जयविद्विषम् । किमपि धूर्तजनं जनयत्यसौ स्वरसिकं समकं प्रियवादिनम् ॥९१॥
परिणता वनितात्मकमेकका प्रकुस्ते कुस्तेतरवाचिका । प्रवरपौखवतंसमसंशयं बलवतीव विधेरतिशायिनी ॥ ९२ ॥

अविरमां परमां चिरमात्रिको निकृतिमन्तयति स्म कृतान्तवत् ।

न गणिता गुणवत्यबलेत्यपि स्वयमयं कथमास दयाशयः ॥ ९३ ॥

यदुदयेन जना वधवन्धनाद्यभिभवेन भवेऽत्र कदर्थनम् । बहुविधं विबुधा अपि लेभिरे स्वजनसज्जनवैरनिबन्धनम् ॥९४॥
सकलदूषणमूलनिकेतनं निजवशीकृतविश्वसचेतनम् । बहुभवभ्रमणाय पुरातनं ननु निमित्तमनन्तममेधसाम् ॥ ९५ ॥
घनघरद्व इव प्रगुणीभवन् कणगणं क्षणतस्तु पिपेयः यः । तमपि लोभमदम्भमनःप्रभुः कथमथो हृदये सदयोद्वलः ॥९६॥
सकलकर्मकुटुम्बकनायकं कुसुमसायकपावकभावुकम् । तमपि मोहमहाबलमादराहल्यितुं यतमानमनारतम् ॥९७॥
सुविहिताग्रिमसूरिशिरोमणिं नयनयोः पदवीमदवीयसीम् । समवतार्य विचारविदः कथं सदयता दयिता दयितं विदुः ९८ ॥

॥ इति निन्दास्तुत्या हृदयनिर्दयत्वप्रकाशकं षोडशकम् ॥ १ ॥

हृदयं सदयं मुनीशितुः समयज्ञैर्यदभाणि नान्यथा । हृदयालुदयालुलक्षणं स्फुटमेवात्मनि लक्ष्यते हि तत् ॥९९॥
अपरानुपतापिता स्मृता समयज्ञैर्विबुधैर्दयाज्ञया । इयमङ्गवती विजृम्भते गणभृच्चेतसि वै निसर्गात्मनि ॥ १०० ॥
यत आर्हतसम्मतागमे किल जीवा द्विविधाः प्ररूपिताः । अपराश्च चरा अनेकधाऽप्युभये बादर-बादरेतराः ॥१०१॥
इह बादरता ह्यपेक्षया प्रथिता नन्वणुभावभेदवत् । ध्रुवमेषु मुमुक्षुतावधेयतनाधिक्यमये यतीशितुः ॥ १०२ ॥
पृथिवीजलवह्निमास्तास्तरवोऽमी स्थिरजीवराशयः । विकलाः सकलास्त्रसाः पुनः षट् सङ्ख्या इति जन्तवः समे ॥१०३॥
परमेषु परेऽपि साधवः प्रयतन्ते प्रतिपालनादिषु । यदनुग्रहतो विशेषतः कथमेते प्रभवादयोः ताः ॥ १०४ ॥
अपराऽपि कृपालुता प्रभोः खलु तां पश्यत पश्यतेति भोः । अपकारिषु योपकारिता न हि सा स्याद् हृदये दयां विना १०५
परमागमतत्त्वचिन्तनप्रभवध्यानबलेन दुर्जयम् । अपि मोहममुं वशंवदं प्रविधाय प्रथमानविक्रमः ॥ १०६ ॥
अपराधविरोधकृत्यलं क्रुधि माने निकृतौ परिग्रहे । मृतमारणमित्युपेक्षणं कृतवान् यो भगवान्निकृन्तने ॥ १०७ ॥
लययोगरसानुयोगतः स्वयमेव प्रलयं ययुश्च ते । क गतेति विभोर्दयालुता तत एतान् न कदापि निघ्नतः ॥१०८॥
परमारणमन्तरा कुतो भणिता निर्घृणता विचक्षणैः । हृदये सदये यतीशितुर्न भवेत् कार्यमकारणं क्वचित् ॥ १०९ ॥
अबले स्वबलं महौजसो न च कुर्युः कचनेति नीतिवत् । समशान्तरसामृतः पुतः स कथं नाम विनिर्दयः प्रभुः ॥११०॥
यदयं पुनरेकमन्तकं त्रिजगल्लोकविडम्बकस्मरम् । अपि मोहरिपोरनीकिनीभटकोटिघटमानडम्बरम् ॥ १११ ॥
अधिगत्य निहत्य कृत्यविच्छुशुभे शान्तमनाविलः । नयवन्निजराजलक्षणं क्षणमेकं फलवच्चकार तत् ॥११२॥
अशठप्रतिपालनं शठाग्रिमदमनं श्रितपूर्वपोषणम् । इति राजकचिद्दी(ह?) माचरन् मुनिराजः सुतरां कृपापरः ॥११३॥

प्रभवो हि भवन्ति भीमतानिभृताः किञ्चनकान्ततावृताः ।

अयमप्यधिभूतस्तपस्विनां न तथा किन्तु तपागणाधिपः ॥ ११४ ॥

॥ इति श्रीगुरुवर्णने हृदयसदयत्ववर्णने षोडशकं द्वितीयम् ॥ २ ॥ द्वाभ्यां संयोगे निर्दयत्व-सदयत्वद्वात्रिंशिका ॥

इत्यनेकप्रकारैस्तैः तैर्व्यावर्णितैर्विधैः । अभङ्गभाग्यसौभाग्यवैराग्यगुणगुम्फितैः ॥ ११५ ॥
 औदार्यधैर्यगाम्भीर्यशौर्यस्थैर्यार्जवोर्जितैः । तैः श्रीसूरिवरैः सौववपुःपाटवसूचकः ॥ ११६ ॥
 लेखोल्लेख इवोल्लेख्यहल्लेखः सुखपोषकः । प्रेष्यः प्रेष्याणवे पूर्णहृदयानन्दसम्पदे ॥ ११७ ॥
 यथा प्रयाविशेषाय समवायतदागमः । भवेदभिभवे नारिवर्गेभ्यस्त्यज्यते जनः ॥ ११८ ॥
 सौख्यं सौहित्यमहाय हृदयास्थानिकामलम् । अलङ्करोति तल्लेखलेखागमनतः खलु ॥ ११९ ॥
 अवधार्या हृदाधार्यैः श्रीआचार्यैर्नतिर्मम । त्रिसायं मयि कार्या च कृपामृतभृता सुदृक् ॥ १२० ॥
 तथा तत्रत्यसत्याह्वराजसुन्दरधीमताम् । येषां श्रीगुरुसेवायां साम्प्रतं निभृतं मनः ॥ १२१ ॥
 श्रीगुरुक्रमसेवायां रेवायामिव हस्तिनाम् । श्रीहस्तिविजयाख्यानां सत्सौख्यानां मनीषिणाम् ॥ १२२ ॥
 विदुषां ऋद्धिसोमानां परकार्यविधायिनाम् । श्रीमद्गुरुपदाम्भोजभ्रमरायितचेतसाम् ॥ १२३ ॥
 ऋजुस्वभावसज्जुषां सत्याद्विजयधीमताम् । दर्शनाद्विजयाह्वानां सुधियां स्वच्छचेतसाम् ॥ १२४ ॥
 न्यायन्याय्यकविव्यक्तशक्तिसंस्तुतसंविदाम् । उदयाद्विजयाभिख्यसङ्ख्यावद्भ्या(?)तवज्जिणाम् ॥ १२५ ॥
 श्रीमुक्तिविजयव्यक्तवत्संज्ञानां यशस्विनाम् । हर्षाद्विजयसंज्ञानां पण्डितानां सुमेधसाम् ॥ १२६ ॥
 रवेर्विजयसंज्ञानां प्राज्ञानां पीनमेधसाम् । सिद्ध्यादिविजयाख्यानां गणीनां गुणशालिनाम् ॥ १२७ ॥
 सद्रङ्गगङ्गाविजयमुनीनामधिकौजसाम् । वीराद्विजयनाम्नां च धाम्नां सद्गुणसम्पदाम् ॥ १२८ ॥
 कुशलाद्विजयाह्वानां प्रह्वानां गुरुसेवने । कमलाद्विजयानां च देवाद्विजयसंज्ञिनाम् ॥ १२९ ॥
 विजयात्सोमनाम्नां च व्रतभार्जा महात्मनाम् । कर्पूरविजय-प्रेमविजयाख्यव्रतस्पृशाम् ॥ १३० ॥
 साधोर्विजयसाधूनां पुण्याद्विजयसंज्ञिनाम् । देवादिविजयानां च मतेर्विजयसंज्ञिनाम् ॥ १३१ ॥
 इत्यादिसर्वसाधूनां साध्वीनां च यथाक्रमम् । प्रसाद्याऽनुनतिस्तत्र भवद्भिर्नतवत्सलैः ॥ १३२ ॥
 तथा चात्र स्थिता विद्वद्बन्ध्यादिविजयाह्वयाः । गणयो हर्षविजयाः कर्णाद्विजयनामकाः ॥ १३३ ॥
 भोजादिविजयाह्वाना दयादिविजयाभिधाः । गणयश्च तथा देवात् जयाद्विजयसंज्ञकाः ॥ १३४ ॥
 जिनात्सत्यान्मतेर्नाम्नो विजयाद्या मुमुक्षवः । तथा वीरर्षि-डाहर्षि-साध्वीप्रभृतयोऽपि च ॥ १३५ ॥
 पण्डितशुभादिविजयाः तच्छिष्याश्चन्द्रविजयगणयोऽत्र । वार्द्धक्यवयोप्युग्रतपश्चरणगुणसज्जुषः ॥ १३६ ॥
 नमन्ति नित्यं भूलग्रभाला बाला इव ध्रुवम् । श्रीमत्प्रभुपदाम्भोजमम्भोजमिव षट्पदाः ॥ १३७ ॥
 अत्रत्योऽपि पवित्रात्मा सङ्क्षोऽप्यनघभक्तितः । ननमीति प्रभोः पादपद्ममन्वहमादरात् ॥ १३८ ॥
 यथा कोक इवालोके भावनीयं समीहते । तथा प्रभुमुखांभोजदर्शनं दूरगोऽप्यहम् ॥ १३९ ॥
 कुर्वे गुरुगुणोद्घोषमन्तःसभमदम्भहृत् । मोदन्ते स्म तदा सभ्यास्तद्वक्तुं वाक्पतिः प्रभुः ॥ १४० ॥
 तथा तथा प्रथाकर्तुर्गुणोत्कर्षः प्रवर्द्धते । प्रासादकारकस्येवोन्नतकार्यविधायिनः ॥ १४१ ॥
 बलमानं कृपापत्रं प्रसाद्यं हितवत्सलैः । अर्हद्वन्दनवेलायां स्मारणीयोऽहमन्वहम् ॥ १४२ ॥
 कियानुदन्तः प्रज्ञानां विज्ञेयः पत्रवाचनात् । अश्वयुक्पूर्णपूर्णायां पूर्णा पत्रीति मङ्गलम् ॥ १४३ ॥

॥ इति भद्रम् । शुभं भवतु ॥

॥ स्तम्भतीर्थात् उ० श्रीकमलविजयग० पं० रविविजयलिखितम् ॥

॥ ब्रह्माण्डाखण्डमण्डलशुक्तिसम्पुटस्फुटविमलमुक्ताफलायमानआचार्यवर्य-
 विजयसिंहसूरिपदपङ्कजानां विज्ञप्तिलेखः ॥

तपागच्छाधीशश्रीविजयसिंहसूरिं प्रति पं० लावण्यविजयगणिप्रेषिता

[१८] — विज्ञसिका —

॥ ऐं नमः ॥

स्वस्तिश्रीः श्रयणीयमंहिकमलं श्रान्तेव यस्याश्रयात्, त्रैलोक्ये किमितस्ततो भ्रमणतो जङ्घालितां विभ्रती ।
चाञ्चल्यं परिचीयमानमनिशं सन्त्यज्य सुखैर्यतः, स श्रीपार्श्वजिनस्तनोतु सुतरां श्रेयांसि भूयांसि वः ॥ १ ॥

स्वस्तीन्दिरा संश्रयति स्म यस्य प्रभोः पदद्वन्द्वममर्त्यपूज्यम् ।

त्यक्त्वा नितान्तं मधुपैः प्रकृत्या मलीमसैश्वम्बितमम्बुजन्म ॥ २ ॥

स्वस्तिश्रियो यत्पदपुण्डरीकं भेजुर्यथा सिन्धुपतिं श्रवन्त्यः ।

स स्तादभीष्टाय विशिष्टमूर्तिर्भूयिष्ठकीर्तिः परमेष्ठिनाथः ॥ ३ ॥

स्वस्तिश्रिया संश्रितपादपद्मः पद्मां स पार्श्वः सततं वितीर्यात् ।

राजेव यो राजति नव्यभव्यचकोरचक्रप्रमदप्रदाता ॥ ४ ॥

स्वस्तिश्रियाश्रितपदाम्बुरुहं यदीयं नेदीयसीं शिवरमां समुपासितं सत् ।

विश्वत्रयी तनुभृतां वितनोति सद्यः, सोऽस्तु श्रिये जिनपतिस्त्रिजगत्प्रतीक्ष्यः ॥ ५ ॥

सन्नम्रसङ्कन्दनकोटिकोटीकिरीटसंटङ्किमणिप्रभाभिः । मितदुभयं (?) लहरीभिरेव, लेभे यदंहिद्वयमद्वितीयम् ॥ ६ ॥

यद्गुघने पूर्णघने विनीले, हरेर्धनुर्भूयमियत्तिं भूयः । किमीरितं नैकविधेन्द्रमौलिमणिप्रभाभिः पदपद्मयुग्मम् ॥ ७ ॥

यदंहिपद्मद्वितयं चकास्ति, प्रवालबालारूपाटलश्रि । नमत्सुपूर्वाधिपसुन्दरीणां, किं सङ्गमात् कुङ्कुमरागकान्ते ॥ ८ ॥

यस्य प्रभोः पादतलप्रभायाः, सिन्दूरपूरद्युतिपाटलायाः । व्याजाद् ध्रुवं सद्गुणः, प्रवालवलीव तटान्तलम्बा ॥ ९ ॥

स्वकीयगत्या विजितैः प्रसह्य, स्तम्बेरमैर्दौकनिकी कृतेव ।

सिन्दूरलक्ष्मीः किमु सन्निहेतोर्विभ्राजते शोणरुचिर्यदंहयोः ॥ १० ॥

सुव्यक्तभक्तिप्रणमत्समग्र-सुपूर्व-सौवर्णकिरीटकोटौ ।

माणिक्यलीलां विभरां बभूवुर्नखा यदङ्गयोः स्फुटरागयुक्ताः ॥ ११ ॥

नभोमणिर्यस्य विभोः सपर्या, चरीकरीति प्रमुदा नितान्तम् ।

विधृत्य शङ्के दशमूर्तिभावं, नखच्छलेन प्रकटप्रभावम् ॥ १२ ॥

तं श्रीमन्तमनन्तसद्गुणमणिप्राग्भारत्नाकरम्, दृप्यदर्पकभूरिदर्पदमनप्रोन्मत्तगङ्गाधरम् ।

कल्याणद्रुमसिञ्चने जलधरं कारुण्यपुण्याकरम्, श्रीमत्पार्श्वजिनं प्रणामपदवीमानीय विश्वेश्वरम् ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीदेववर्णनं सम्पूर्णम् ॥

भूभामिनीकण्ठतटे वितेने, स्वयम्भुवा गर्ज्जरतारहारः । तत्रेदमत्यद्भुतनायकस्य, विभर्ति तौल्यं नगरं गरीयः ॥ १४ ॥

स्वर्लोक-भूलोकगतानि नूनं, भवन्तु भूयांसि पुरोत्तमानि ।

शश्वद् यदस्योपमितिं विभर्ति, श्रुतं न तत् कापि निरीक्षितं च ॥ १५ ॥

विश्वम्भराप्रौढवधूविशालभालस्थलीशायिललामतुल्यम् । निःशेषविश्वानुतक्रद्विरम्यं, विराजते यन्नगरं नितान्तम् ॥ १६ ॥

आकस्मिकं विस्मयमादधानां, श्रियं समुदीक्ष्य पुरस्य यस्य ।
 मन्ये समुत्पन्नमनःप्रभूतातङ्का पयोधौ विशति स्म लङ्का ॥ १७ ॥
 दिने दिने यत् सुषमां समीक्षितुं, व्याजं विधृत्यारुणसारथेश्वरम् ।
 पुरी हरेर्विस्मयदर्शनोत्सुका, विभर्त्ति किं दर्पणमद्भुतद्युतिम् ॥ १८ ॥

भोगावतीभुवनभूषणमद्भुतश्रि, विभ्रत् पुरन्दरपुरीरुचिरोपमत्वम् ।
 संवीक्ष्य राजनगरं परमर्द्धिपूर्णं, तूर्णं पलाय्य बलिसन्न विवेश मन्ये ॥ १९ ॥

यस्मिन् विभाति त्रिजगत्प्रभूणां, प्रासादपङ्क्तिर्विमला विशाला ।
 भास्वत्सुधादीप्तिभराभिरामा, जगज्जनानन्दविचित्रचित्रा ॥ २० ॥
 चतुष्पथे यत्र विचित्रचित्रैः, किमीरिता राजति हृदपङ्क्तिः ।
 अगण्यपण्यैः परिपूर्णमध्या, गवाक्षलक्षैः किल वीक्षणीया ॥ २१ ॥
 सम्यक्त्वमूलार्कमितव्रतानि, सम्यग् दधानाः श्रुतसावधानाः ।
 जीवादितत्त्वैकविचारदक्षाः, सुश्रावका यत्र वसन्त्यनेके ॥ २२ ॥
 श्राद्धी ततः कल्पलतेव यत्र, भाति प्रसर्पच्छुभशीलमूला ।
 दानोल्लसत्स्फारफलाभियुक्ता, सौभाग्यसद्भासनवासिताङ्गा ॥ २३ ॥

१५ विमानमभ्युन्नतमभ्युपेतमुपाश्रयस्य व्यपदेशतः किम् । श्रीमद्भुसुं वन्दितुमीप्सितार्थसार्थप्रदानप्रवणाभ्युपायम् ॥ २४ ॥

उपाश्रये यत्र विभाति शश्वद् वितानमाला वरवर्ण्यवर्ण्या ।
 छिद्रैर्विमुक्ता चतुरन्तयुक्ता, काव्यावली किं कविभिर्निबद्धा ॥ २५ ॥
 जलार्थमायातनितम्बिनीनामुन्निद्रवक्त्राम्बुजराजमाने ।
 कूलङ्कषास्वच्छजले यथेच्छं, यस्योपकण्ठे करिणां शतानि ॥ २६ ॥
 कुर्वन्ति केलिं कलशैर्वृतानि, समुन्नताम्भोधरसन्निभानि ।
 उच्चैस्तराणीव समागतानि, किमञ्जनाद्रेः शिखराणि साक्षात् ? ॥ २७ ॥

श्रीमज्जैनविहारहारिवसुधाऽऽदर्शं निवेशे श्रियां, श्रीमत्तातपदारविन्दरजसा पावित्र्यमाविभ्रति ।
 नम्रानेकविवेकिलोकविहितश्रीजैनधर्मोत्सवे, विख्याते भुवि तत्र राजनगरे राजन्वति श्रीमति ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीनगरवर्णनम् ॥

त्रैलोक्यलक्ष्मीललनाविलासनिवासभूताद् धनधान्यपूर्णात् ।
 प्रभावकश्रावकराजमानात्, पुरोत्तमाद् योधपुराभिधानात् ॥ २९ ॥

सानन्दं सोल्लासं सोत्कण्ठमकुण्ठभक्तिसंयुक्तम् । सप्रणयं रणरणकप्रपूर्णमुद्युक्तिसुव्यक्तम् ॥ ३० ॥
 हृषोत्कर्षविशेषो । विनयावनतशिरस्कं प्रमोदमेदुरितचेतस्कम् ॥ ३१ ॥
 भालस्थलसंस्थापितयोजितकरकमलयमलकुञ्जलकः । श्रीतातपादचरणाम्भोरुहमधुपायितस्वान्तः ॥ ३२ ॥
 पङ्कजपाणिप्रमितावतैरभिवन्द्य विधिवदादरतः । विज्ञप्तिपत्रमुपदीकुस्ते लावण्यविजयशिशुः ॥ ३३ ॥
 यथाकृत्यमिह प्राचीपुरन्ध्रीतिलकायिते । भास्करे तत्करोत्फुल्लकमले कमलाकरे ॥ ३४ ॥
 प्रध्वंसप्रतियोगित्वं प्राप्तेऽशेषतमोभरे । परस्वहरणादिभ्यो विनिवृत्तनिशाचरे ॥ ३५ ॥
 बालार्कतपकाले यच्छटासिक्तचराचरे । वियोगविगमात्यन्ततुष्टे द्वन्द्वचरे वरे ॥ ३६ ॥
 मागधोदीतमाङ्गल्यगीतनिर्दिनगरे । प्रभातावसरे श्रीमत्सभ्यशोभितसंसदि ॥ ३७ ॥

श्रीश्रावकप्रतिक्रान्तिसूत्रसङ्घट्टित्वाचनम् । प्रश्रुताध्यापनं योगोपधानादिकवाहनम् ॥ ३८ ॥
नन्दिमण्डनमानन्दिपाक्षिकापारणानि च । इत्यादि सौकृतं कृत्यं निष्प्रत्यहं प्रवर्तते ॥ ३९ ॥
तथा क्रमागते सर्वपर्वगर्वापहारिणि । श्रीमत्पर्युषणापर्वण्यतुच्छोत्सवहारिणि ॥ ४० ॥
श्रीमदहर्तुसप्तदशभेदपूजाप्रवर्तनम् । सक्षणैः क्षणनवकैः कल्पसूत्रानुवाचनम् ॥ ४१ ॥
साधर्मिकजनाकं [उ]पोषणं पुण्यजोषणम् । भूरिवित्तप्रदानेनानेकयाचकतोषणम् ॥ ४२ ॥
इत्यादिधर्मकर्माणि सशर्माणि महामहः । निरपायमजायन्त सञ्जायन्तेऽधुनापि च ॥ ४३ ॥
सर्वार्थसाधनव्यग्रभाग्यातिशयशालिनाम् । श्रीमतां तातपादानां प्रसादोदयतोऽपरम् ॥ ४४ ॥

अथ श्रीगुरुराजवर्णनम्—

श्रीवर्द्धमानेशपदप्रतिष्ठः, सद्दैर्यगाम्भीर्यगुणैर्गरिष्ठः । जीयाच्चिरं देवकृतांहिसेवः, सूरेश्वरः श्रीविजयादिदेवः ॥ ४५ ॥
शरत्सुधादीधितिजिष्णुशङ्खजिष्णुद्युतिर्विष्णुपदीमिषेण ।
क्षीरान्धिवीचीचयचारुरोचिः, कीर्त्तिस्त्रिलोक्यां स्फुरति त्वदीया ॥ ४६ ॥
दिशो दशापि प्रसरद्यशोभिः, श्रीमद्भुसुर्द्राग् विशदीप्रकुर्वन् ।
श्यामत्व-शुभ्रत्वभवं जनानां, विभेद मेदस्वितरां विरोधम् ॥ ४७ ॥
भवद्यशःकल्पमहीसहस्र, प्रशस्यमूलं भुजगाधिराजः ।
स्कन्धश्च गौरीगुरुरेष शैलः, शाखाः समग्राः खलु दिग्गजेन्द्राः ॥ ४८ ॥
तेषां च दन्तावलयः प्रशाखाः, सुगन्धिफुल्लकुसुमान्युद्भूनि ।
फलं विधोर्मण्डलमद्भुतश्रि, स्वचेतसीति प्रकटं प्रतीमः ॥ ४९ ॥ — युग्मम् ।
क्षीरान्धिरङ्गत्तरलातितुङ्गतरङ्गमालाविलसदुकूला । सम्पूर्णशीतद्युतिसप्तसप्तीभाजिष्णुताडङ्कयुगं वहन्ती ॥ ५० ॥
विशुद्धकैलासतुषारशैलप्रोत्तुङ्गपीनस्तनरम्यरोचिः ।
कीर्त्तिर्नरीनर्त्तिं गुरो ! त्वदीया, सन्नर्तकीवाम्बरमण्डपेऽस्मिन् ॥ ५१ ॥ — युग्मम् ।
जगत्रयीं गन्तुमनास्त्वदीयकीर्त्तिस्त्रिधा मूर्त्तिरभूत् किमेषा । सुधाशनानेकपशैवशैलशेषोरगेन्द्रच्छलतो मुनीश ! ॥ ५२ ॥
त्वत्कीर्त्तिकान्ता किल भूरि वद्धादराऽपि वृद्धा भुवनप्रसिद्धा ।
विशिष्य सवान् विषयान्नितान्तं, सम्बोभुजीति स्फुटमद्भुतं तत् ॥ ५३ ॥
ऐरावतः स्पष्टमनर्ह एव, मातङ्गभावं न जहाति जातु ।
दुग्धोदधेः सन्निधिरेव नार्हः, कुसङ्गरङ्गं स विभर्त्ति यस्मात् ॥ ५४ ॥
न तुष्टिपुष्टिं शशभृद् विधत्ते, कुरङ्गसङ्गः किल येन दध्रे ।
इत्यादयो दोषविशेषभाजः, कथं लभेयुस्तव कीर्त्तिसाम्यम् ॥ ५५ ॥ — युग्मम् ।
स नैव पीयूषमयूखबिम्बे, न कुन्दवृन्देऽपि न पुण्डरीके ।
कर्पूरपूरेऽपि च नैव नैव, स्निग्धेषु दुग्धेषु न दुग्धसिन्धौ ॥ ५६ ॥
पद्मेशयस्याधि न पाञ्चजन्ये, नोच्चैःश्रवःश्वेतगजेश्वरेषु । हिमाद्रिकन्याहरशैलहंसे, डिण्डीरपिण्डे द्युनदीषु नैव ॥ ५७ ॥
श्रीखण्डखण्डे न च चारुहारे, मन्दारतारास्वपि जातु नैव ।
अदभ्रशुभ्रेऽपि न शारदाध्रे, या शुभ्रिमा त्वद्यशसः समूहे ॥ ५८ ॥ — त्रिमिर्विशेषकम् ।
यत्कीर्त्तिः शशिमौलिमौलिविगलद्गङ्गातरङ्गोज्ज्वल-प्रालेयाचलकन्यकोत्कुचतटीसण्टङ्किहाराकृतिः ।
प्रोद्यत्पार्ष्णशारदेन्दुविशदा विश्वत्रयं व्यानशे, शेषाहिस्फुटिकाचलाभ्रमुपतिव्याजेन जानीमहे ॥ ५९ ॥

भीतः शीतरुचिर्विवेश सहसा छायाच्छलात् पार्वणः, पाथोदुर्गमिवेक्ष्य दुर्ग्रहतरं यस्य स्वजैत्रं यशः ।
 प्रालेयाचलनिर्गलत्सुरसरित्कलोलमालाहुत-क्रीडद्राजमरालमूर्तिरुचिरच्छायातिरस्कारकृत् ॥ ६० ॥
 भूयस्तारकतारहारविकसन्मन्दारजिष्णुद्युता, स्पर्द्धिष्णुस्तव सूरिसिंह ! यशसा वर्द्धिष्णुशोभागता ।
 नन्ये कैरविणीप्रियः समजनि प्रोद्धूतदाघज्वरः, स्वच्छायाव्यपदेशतोऽम्भसि कथं तेनान्यथा स्थीयते ॥ ६१ ॥
 -इति यशःषोडशकम् ।

यस्मानन्योपमेयं स्फुटमहिमचयं विश्वभास्वत्प्रभावं, सदैर्यं वीक्ष्य लज्जाभरनिचितमनाः स्वर्गिशैलः प्रकामम् ।
 चैनन्द्याभावमेव स्वरितमुपगतश्चेतसीति व्यतर्कि, स श्रीमान् सूरिराजः प्रभवतु भविनामीप्सितार्थैकसिद्धौ ॥ ६२ ॥
 आस्त्राद्याभिनवं वचोऽमृतरसं माधुर्यवर्यं मुदा, विश्वे विश्वजना बभूवुरमृते त्यक्तादराः सन्ततम् ।
 ज्ञात्वेनीव नवस्वकीयमनसा पीयूषकुण्डानि किं, जग्मुर्दानवमन्दिरं प्रतिदिनं सोऽस्तु श्रिये श्रीगुरुः ॥ ६३ ॥
 विश्वाशेषमर्माहितार्थकरणप्रध्वंशमीक्ष्येव किं, यस्यौदार्यमनन्यतुल्यमसकृत्सज्जातभूरित्रपाः ।
 जग्मुः नृगिर्महोरुहा अपि समे स्थानं दृशोऽगोचरं, स श्रीसूरिशिरोमणिर्विजयताद् विश्वत्रयीवत्सलः ॥ ६४ ॥

निरीक्षितेऽस्मिन् गणनातिरेकप्रोद्धूतसद्गतगुणाम्बुराशौ ।

सदोदयान् दृष्टिपथं प्रपन्नान्, मन्यामहे सम्प्रति पूर्वसूरीन् ॥ ६५ ॥

यस्य प्रभोः फणिपतिः शरदिन्दुधाम, विभ्राजितं गुणगणं गणनातिरेकम् ।

त्रिहासहस्रमपि विभ्रदभून्न शक्तो, वक्तुं द्विजिह्व इति विश्रुतिमाप तस्मात् ॥ ६६ ॥

दत्तमनकसर्कणैः संवर्णितवर्णवर्णवादानाम् । ऊकेशवंशवारिधिवृद्धिविधौ शीतपादानाम् ॥ ६७ ॥

सच्चक्रचक्रैतःप्रहादननवसहस्रपादानाम् । निरुपमवृद्धिविनिर्जितदुर्द्धरतरवादिवादानाम् ॥ ६८ ॥

गतसकलविपादानां स्वसेवकप्रत्तसुप्रसादानाम् । सजलाम्बुदनादानां श्रीमत्श्रीतातपादानाम् ॥ ६९ ॥

कोऽपि प्रसादवरलेखनवाम्बुदोऽथ, सम्प्रीणयिष्यति मदीयमनोमयूरम् ।

तेनाथ स स्वकशरीरपरिच्छदोद्यन्नीरोगतादिसदुदन्तजलाभिरामः ॥ ७० ॥

सद्यः प्रसद्य निजशिष्यमनोमयूरप्रौढप्रमोदविधये सततं प्रसाद्यः ।

किञ्चोपवैणवमथ प्रणतिर्मदीया, श्रीयुक्तातातचरणैरवधारणीया ॥ ७१ ॥

गाम्भीर्यादर्थवैर्याद्यनघगुणमणीरोहणक्षमाधरेन्द्रान्, प्रेङ्खत्पीयूषयूपातुकरणनिपुणप्रौढवाणीविलासान् ।

प्रादुर्भूतप्रभूतप्रवरतरपदुप्रोलसद्भिः.....युक्त्वा, वन्दे विश्वप्रतीक्ष्यान् भुवनजनहितान् श्रीमदाचार्यसिंहान् ॥ ७२ ॥

निश्शेषवाङ्मयार्णवपारङ्गमिनः प्रशस्तमतिविभवाः । श्रीमद्धन[दि]विजया वाचककुलमौलिसन्मणयः ॥ ७३ ॥

जैनप्रमाणमद्युक्तिर्वितानेकवादिनः । श्रीऋद्धि विजयाहानाः प्राज्ञाः सद्बुद्धिऋद्धयः ॥ ७४ ॥

उदयश्रीपरिस्मरणनिपुणाः श्रीउदयविजयवरविज्ञाः । शमरसभावितचित्ता विबुधाः श्रीशान्तिविजयाश्च ॥ ७५ ॥

कर्पूरविजयविबुधाः सुयशःकर्पूरवासितदिगन्ताः । वैराग्यरञ्जितान्तःकरणा रामादिविजयबुधाः ॥ ७६ ॥

वाचस्पतिसममतयो मत्यादिमविजयनामवरविबुधाः । नयविजयनामधेया विपश्चितः परमनयनिपुणाः ॥ ७७ ॥

यच्चिजनपोषणदक्षाः कृष्णाद्विजयाभिधानवरविज्ञाः । सुविनीतशिरोमणयो विनीतविजयाश्च विद्वांसः ॥ ७८ ॥

श्रीपूज्यचरणसेवारसिका अमरादिविजयवरसुधियः । यतिजनशिक्षादक्षा विचक्षणा वीरविजयाश्च ॥ ७९ ॥

इत्यादिसाधुसाध्वीप्रमुखाणां तातचरणभक्तानाम् । नत्यनुनती प्रसाधे श्रीमत्तातैः प्रसादपरैः ॥ ८० ॥

किञ्चात्रत्या अपि च प्राज्ञाः कनकादिविजयनामानः । गणयश्च ऋद्धिविजया गणयो मेर्वादिविजयाश्च ॥ ८१ ॥

लब्धिविजयाश्चगणयो दयादिविजयश्च मुक्तिविजयगणिः ।
भक्तिविजयगणिनामा नयादिविजय-हर्षविजयगणी ॥ ८२ ॥
मुनयश्च धीरविजया मुनी तथा सत्यविजय-सुखविजयौ ।
क्षेमविजयमुनिनामा तेजविजयोदयविजयमुनी ॥ ८३ ॥
सौभाग्यश्रीः साध्वी, साध्वीवृद्धा तथा च राजश्रीः ।
सुमतिश्रीरिति साध्वी, कनकश्रीनाम साध्वी च ॥ ८४ ॥

इत्येवं यति-यतिनीसमुदायोऽत्रत्यसकलसङ्घश्च । श्रीतातचरणचरणाम्बुजरुहयुगं ननमीति मुदा ॥ ८५ ॥
किञ्च शिशूचितकृत्यं प्रसादनीयं प्रसादमाधाय । पार्वणशशधरसुन्दरवदनैः श्रीतातचरणवरैः ॥ ८६ ॥
श्रीतातचरणनाम्नाऽत्रत्याः श्रीजिनवराः प्रणम्यन्ते । तन्नतिसमये तातैः शिशुलेशश्चेतसि विधेयः ॥ ८७ ॥
लेखं लिखता मयका यदि क्षुण्णं लिपीकृतं भवति । तत् सर्वं क्षन्तव्यं श्रीमत्तातैः प्रसादपरैः ॥ ८८ ॥
कोशीकृतकरकमलो भूमितलन्यस्तमस्तकः सततम् । शिष्याणुमेरुविजयो विशेषतो नमति सद्भक्त्या ॥ ८९ ॥

विज्ञप्तिपत्री विलसत्कनीयं श्रीतातपाणिग्रहणाभिलाषा ।

विशुद्धवर्णादियुताऽस्ति तस्मात् फलान्विता स्याच्च तथाऽवधार्यम् ॥ ९० ॥

मार्गशीर्षसिते पक्षे पूर्णिमायां लसत्तिथौ । मया सद्भक्तियुक्तेन लेखोऽलेखीति मङ्गलम् ॥ ९१ ॥

॥ योधपुरनगरात् पं० लावण्यविजयगणिप्रेषितो विज्ञप्तिलेखः ॥

तपागच्छाधिनायकभट्टारकश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० श्रीआगमसुन्दरगणिलिखिता

[१९] — विज्ञसिका —



स्वस्तिश्रीपदपङ्कजामलयुगं भेजे यदीयं मुदा, प्रोज्झ्य स्वं भवनं कुक्कुटकयुतं तन्मञ्जिमानं दधत् ।
शश्वत्स्मेरतमश्रिया भवति भृङ्गुत्पत्तमामन्वहं, विभ्राणां भवतां लतां स तमसां स्फातिं स्फुरन्मूर्त्तिभः ॥ १ ॥

चन्द्रो यदंहियुगलं समुपैति किं स्म, विज्ञीप्सयेति जगदीशितरं कदम्भात् ।
मदृषणं व्यपनय स्वजगत्प्रसिद्धं, जेघ्नीयतां स भवतां रजसां वितानम् ॥ २ ॥
के स्युर्न यत्क्रमपयोजपरिष्ठितोऽत्र, विश्वे कलङ्ककलुषाधिकलङ्कायाः ।
लक्ष्मच्छलात् किमु विधुर्वरिवस्यतीति, यत्पादद्वन्द्वमनिशं स शिवाय वोऽस्तु ॥ ३ ॥

केषां न युग्ममभवत् क्रमयोर्यदीयं, तत्पक्षताशरणमत्र कलङ्कजातम् ।
मत्वेत्यदो विधुरशिश्नियदङ्कदम्भाद्, भूयात्तमां स भवतां विभुताविभूयै ॥ ४ ॥
व्यालग्नं यत्क्रमयुगं तपनोऽवतस्थे, लक्ष्मोपधेर्मनसि कृत्य कृतीति मन्ये ।
लब्धिः कुतोऽस्य पुनरत्ररजोभिरुच्चैर्भद्राय मेऽपि विकलङ्कयतः स वः स्तात् ॥ ५ ॥
लोके विभूय सकलङ्क इति द्विजेशोऽवज्ञातिमेष किमु लाञ्छनदम्भतोऽत्र ।
यत्पादपद्ममनिशं परिवाभजीति, श्रेयस्ततिं स भवतामवतन्तनीतु ॥ ६ ॥

पादद्वये विकचवारिजमञ्जिमानं, मोमूषतीह कलहंसितमिन्दुतोच्चैः ।
यस्याङ्कदम्भत उदित्वरकान्तिकान्ते, संजर्हरीतु भवतां वृजिनानि सोऽर्हन् ॥ ७ ॥
यत्पादचारुनखकान्तरुचेह चन्द्रो, निर्माति भक्तिमनिशं व्ययमूषितश्रीः ।
तल्लिप्सयेव वरलाञ्छनदम्भतोऽयं, मालां स वो महयतान्महसां महस्त्री ॥ ८ ॥
विभ्राणमैहिकसुखांहतिवित्तां तां, स्वर्द्धं विहाय भजतो भविकान् यदंहयोः ।
वीक्ष्य द्वयं तदुभयप्रदमाश्लिषद् ग्लौर्लक्ष्मोपधेः किमु स वः सुषमां वितीर्यात् ॥ ९ ॥
लक्ष्मच्छलाद् विधुरवाप्य न किं यदङ्गयोः, स्पर्शं युगस्य भपतित्वमदादधीन्न ।
विश्वेऽत्र मुत्तिलसत्तममूर्त्तिकान्तिः, संशोशुषीतु भवतां स कुपङ्कपङ्कम् ॥ १० ॥

लक्ष्मच्छलाद्यदतुलांहिपयोजयुग्म-संस्पर्शभूतसुकृतव्रजपूतगात्रः ।
ईशेन किं द्विजपतिर्विभ्रां बभूवे, मौलौ निजे स भवतां शिवतातिरस्तु ॥ ११ ॥

यत्पादपद्ममभयप्रदमेव चन्द्रो, भीतोऽङ्कदम्भत इतः शरणीचकार ।
स्वर्माणुतो विधुणकालकरालकायात्, किं नो ददातु विभयः स मनीषितं वः ॥ १२ ॥
आश्लिष्यदेव विधुरङ्गमिषाद् यदंहि-पद्मं सदा स्मितसरोभवकान्तकान्तिम् ।
दृश्यां दिदृक्षुरिव जात्वनवेक्षितां तां, नीयत्तमां स भवतां क्षयतामजन्यम् ॥ १३ ॥
लक्ष्मच्छलाद् विधुरदीधरदेव किं नो, यत्पदयुगोपरि सुसूनकलापकान्तिम् ।
प्रश्यत्तमाम्बकमुदं सततं नयन्तीमर्हन् स लम्भयतु तानवमेन उद्यम् ॥ १४ ॥

लक्ष्मोपधेयदतिसुन्दरपादसङ्गं, लब्ध्वाऽपि वीक्ष्य भुवनत्रयकुक्षिगानाम् ।
 पुञ्जैर्दशां कुमुदितं विधुमाशु पश्यैः, सौभाग्यभाग्यचणमीहितदः स वः स्तात् ॥ १५ ॥
 दम्भं विधाय न विधुः किमु लाञ्छनस्य, सेवां व्यधत्त भुवि जेतुमनाः स्वशत्रुम् ।
 यत्पादपङ्कजयुगस्य विधुंतुदन्तं, हन्यात्तमां स तमसां वितमावितानम् ॥ १६ ॥
 संसारजीवननिधौ वरपोतदंहियुग्मं विधाय किमु लाञ्छनदम्भमिन्दुः ।
 भेजे यदीयमिह तत्परपारलिप्सुः, श्रेयांसि वः प्रदिशतात् स सदा जिनेन्द्रः ॥ १७ ॥
 सा सौम्यता न किमधारितमां यदङ्गसङ्गेन्दुना समजनान्बकमोदिनीयम् ।
 पादावुपास्य जगतीह सदङ्गदम्भाज्जीमूततात् स भवतां भविकव्रतत्याम् ॥ १८ ॥
 लक्ष्मच्छलादियदयोगिवधूविधातसञ्जातपातकभरैर्मलिनप्रतीकः ।
 नो तज्जिहासुरिह किं यदगांहियुग्ममङ्गीकरोति शयितोऽस्तु स वोऽथ हन्ता ॥ १९ ॥
 भक्त्या नमन्निदशदैत्यनराधिपानां, मौलौ यदंहिजलजन्मरजःकणौघः ।
 रम्ये परागतितमां तदुपास्तिमाप्य, लक्ष्मच्छलात् प्रतिदिनैककलाविवृद्धेः ॥ २० ॥
 किं नाधरद्विजपतिः स्वविमानमुच्चैः, प्रोल्लासद्गुचिरकान्तिकलापलीढः ।
 श्रेयोजुषो रुचिमुपस्तपनस्य धन्यं-मन्योऽस्तु वो जिनपतिः सततं शिवाय ॥ २१ ॥
 यत्पादपङ्कजयुगस्य सुसङ्गमाप्य, नाभूदुडुप्रमुखसंहतिभिः सदा किम् ।
 सेव्योऽङ्गदम्भत इहेन्दुरतुच्छकान्तिर्नेनेतु केतुवितर्ति क्षयति स वोऽर्हन् ॥ २२ ॥
 सुस्मेरनीरजननाङ्गतत्रिरेखाशोभां विधुर्जरिहरीति यदंहियुग्मे ।
 लिं लक्ष्मगः स्म नमदिन्द्रकमौलिचुम्बी, हीरांशुलीढ इह वोऽसुखहानये स्तात् ॥ २३ ॥
 यत्पादसङ्गममवाप्य किमङ्गदम्भान्नो श्रीयते स्म विधुनाऽपि सुधाकरत्वम् ? ।
 अन्यानवाप्यममलं सुजगत्प्रतीतं, कन्दर्पदर्पभिदयं भवतात् स वोऽर्हन् ॥ २४ ॥
 जर्गदिं लाञ्छनमिषाद् विधुरंहियुग्मं, यस्सेत्येत्य जगतीत उदारमन्यत् ।
 श्रेयःपदं स्म न मनोरमभाः स नाथं, नाथः स वः सकलमाधिमपाक्रियात्तम् ॥ २५ ॥
 कृतं ब्रह्मभूपालपुत्रं पवित्रं, प्रणं नेमिनाथं सनाथं प्रभाभिः ।
 सदा तं यदंहिद्वयं देवदेवो, मुदा बाभजत्युलसन्मानसाब्जः ॥ २६ ॥
 यत्पादपाथोजरजःकणान्मुदा, मूर्ध्नि स्वकीये कृतिनः कृतादराः ।
 शेषामिवेन्द्राः सुरदैत्यभूस्पृशां, स श्रेयसे वो मुनिसुव्रतो जिनः ॥ २७ ॥
 एतान् जिनान् प्रणतिमञ्जुलपङ्कजाङ्गे, राजत्तमोऽद्वलसितच्छदकान्तकान्तिम् ।
 संविभ्रतो लसदनन्तमुदा विधाय, नम्रीभवज्जनमनीषितदानदक्षान् ॥ २८ ॥

अथ नगरवर्णनम् -

श्रीमति श्रीमते भ्राजते धोरणी, तत्र सार्वौकसां जीर्णदुर्गं भृशम् ।
 मुष्णती मञ्जुलव्योमयानश्रियं, व्योमचुम्ब्युच्चचूलाश्रिया शालिनी ॥ २९ ॥
 श्रीजीर्णदुर्गनगरं नकरं पुरोगं, देदीप्यते भृशमनेकधनीश्वराढ्यम् ।
 श्रीपूज्यपूज्यचरणामलसद्विकाशि, पाथोजरेणुसुरभीकृतभूमिभागम् ॥ ३० ॥
 श्रीमत्तीर्थकृतां सुखोत्करकृतां भास्वत्तराभाभृतां, यत्र श्रीमति भास्वति प्रियसुधाश्वेतीकृते विश्रुते ।
 प्रासादद्वयमञ्जुलोच्चशिखरे शश्वज्जगच्छेखरे, राजद्रैकलशायते दिनपतिर्दीप्यत्प्रतापोद्यतः ॥ ३१ ॥

श्रद्धाजुषः श्राद्धगणा विभान्ति, यत्रोच्चकैर्भासुरदेहभासः ।
 ऋद्ध्या स्वया तं धनदं तृणामं, जानन्त आनन्दमयैकचित्ताः ॥ ३२ ॥
 यदङ्गनारूपमवेक्ष्य कामं, त्रपाजुषोऽगुह्यिदशाङ्गनायाः ।
 भूमे दिवन्ता अधुनाऽपि भूमिस्पर्शं न पद्भ्यां दधतीत शोभाः ॥ ३३ ॥

श्रीमन्मालपुरद्रङ्गाच्छिष्यभुजिष्यतां दधत् । आगमसुन्दरः पञ्चप्रतीकालिङ्गितोर्वरः ॥ ३४ ॥
 विज्ञप्तिं प्रणमत्युच्चैः पुरतः प्रध्वमानसः । भालस्थलविशालाब्जकोशतमशयद्वयः ॥ ३५ ॥
 प्रातरत्र महेभ्यानां सभ्यानां संसदि ध्रुवम् । स्थानाङ्गसूत्रवृत्त्योस्तत्सातस्वाध्यायादिमे क्षणे ॥ ३६ ॥
 जायमाने क्रमोपेतं महामहविराजितम् । सर्वपर्वशिरोरत्नं पर्वं पर्युषणाभिधम् ॥ ३७ ॥
 कल्पद्रुकल्प-श्रीकल्पसूत्र-वृत्तिनवक्षणम् । चारुश्रीफलपूरयादि-भूतभूरिप्रभावनम् ॥ ३८ ॥
 सप्तदशभिदासार्वसपर्याडम्बरान्वितम् । निरशेषपारणाभोज्यमञ्जुलामोदमोदकम् ॥ ३९ ॥
 पक्षक्षपणषष्ठादि-तपोलीननरव्रजम् । मनीषितातिरिक्तासिप्रमोदितवनीपकम् ॥ ४० ॥
 प्रत्यूहव्यूहराहित्यं सातसन्ततिसञ्चितम् । श्रीपूज्यवंशसद्गुत्तगानैकतानमानवम् ॥ ४१ ॥
 जज्ञनीति स्म जज्ञन्ति धर्मकृत्यं च साम्प्रतम् । श्रीमत्तत्रभवन्नाममब्रध्यानानुभावतः ॥ ४२ ॥

अथ गुरुवर्णनम्-

नम्राखण्डलमण्डलीसुकतटीकोटीरकोटिस्फुरत्, नानारत्नमनोरमांशुलहरीप्रक्षालितांह्रिद्वयम् ।
 चन्द्राङ्गाभयदं मुदा नतिपथं नीत्वा सनाथं श्रिया, स्तोष्ये श्रीविजयप्रभं गणधरं नाथं तपश्शालिनाम् ॥ ४३ ॥
 नीलोत्पलीयन्ति दृशो न लोकं, लोकं भृशं ते मुखचारुचन्द्रम् ।
 केषां गुरो ! तं तमसां कलापं, प्रोज्जासयन्तं स्फुरदंशुजालैः ॥ ४४ ॥
 श्रीमद्गुरो ! विकचवक्रसरोभवे ते, भृङ्गन्ति लोचनयुगानि सदेह येषाम् ।
 सम्बोभुवत्यमलमञ्जुलसम्पदां ते, धामोलसत्तमधियां सुनिधेर्द्धरायाम् ॥ ४५ ॥
 प्रोल्लाससीति वदनं तव लम्भयित्वा, मार्गं दृशोरवनिनायकमण्डलीं द्राक् ।
 बिम्बं चकोरपटलीवसुधागमस्तोः, प्रोदित्वरोज्ज्वलविशालविभासनाथम् ॥ ४६ ॥
 नीत्वा दृशोरयनमास्यमभीश्रुसङ्घं, बिभ्राणमाशु तमसां पटलैर्विहीनाः ।
 प्रातर्भवन्त्यसुमतां निकराः खरांशोर्विम्बं यथा तव मुनीश ! महोभिरिद्धम् ॥ ४७ ॥
 मन्येऽहं किल विश्वविश्वजनतानन्दप्रणेतुस्तव, शश्वदीसतराननप्रियतरद्युत्या जितः श्रीगुरो ! ।
 लज्जावान्न कलङ्कतां किमु गतश्रीको हिमांशुः सदा, मालिन्यं दधते जगज्जनपते ! भास्वत्प्रतापाकर ! ॥ ४८ ॥
 विमलविकसत्सत्पाथोभूदलायतलोचन, भविकमनुजाह्लादव्रातप्रणेतुमुखश्रिया ।
 तव मुनिपते ! मन्येऽद्यापि व्रतैर्जित एव खे, तुहिनकिरणो न स्थेमानं कदापि सृजत्ययम् ॥ ४९ ॥
 अहमवैमि तव व्रतिनां प्रभो !, मधुरदीप्ततराननशोभया ।
 कुमुदबान्धव एव तिरस्कृतः, परिकृशत्वमियत्तिं तथाऽन्तिशम् ॥ ५० ॥
 मुनिगणेन्द्र ! गजेन्द्रसदृग्गते !, तव विकाशिमुखस्य सदोदितेः ।
 उपमतामभियातुमवैम्यहं, सुरनरासुरनेत्रसुनन्दिनः ॥ ५१ ॥
 परमयोगनिलीनहृदीश्वर !, रुचिरशीर्षसुपर्वसरित्ते ।
 स्थित इति प्रकरोति तपः स्वयं, कृशतनुस्तुहिनांशुरहर्निशम् ॥ ५२ ॥ - युग्मम् ।

सकललोकमनोहरणोद्यत ! मदनमानविमर्दनशङ्कर ! । तव मुनीश ! तपस्तपनोज्ज्वलप्रियमहामहसो रुचिरद्युतेः ॥५३॥
वदनपूर्णनिशाकरशोभया, विजितमम्बुरुहं विविधं तपः । समभिसृत्य सृजत्पद एव हि, ससुरसंसरसंसरसंसरः ॥५४॥

साधुसाधुजनतागणनाथ !, वीक्ष्य वीक्ष्य भवतो भवतोऽलम् ।

कान्तकान्तिसदनं वदनं सद्भव्यभव्यशरणस्य शरण्यम् ॥ ५५ ॥

प्रीतिपुञ्जमनिशं जनवीराः, प्राप्नुवन्ति धृतधर्मसुभाराः । मण्डलं वरनभश्चमसस्य, सचकोरनिकरा इव वीक्ष्य ॥ ५६ ॥

दर्श-दर्श तावकीनं तदास्यं, चेतांस्युच्चैरुलसन्ति दधन्ते ।

विस्मेरत्वं भव्यजन्तुव्रजानां, भासां नाथं पङ्कजानीव नूनम् ॥ ५७ ॥

श्रावं-श्रावं कीर्त्तिमुच्चैर्मुनीनां, पत्युर्दधुः के मुदं नो गरिष्ठा ।

किं मूषन्तीं विभ्रमं क्षीरनीरपारावारोल्लोलकल्लोलभासाम् ॥ ५८ ॥

कीर्त्तेः सुयोगं समवाप्य विष्टपे, गङ्गाऽपि चङ्गीभवदङ्गका जनान् ।

नापूतयत् सा भुवनत्रयोदरं, किं व्यासवत्यास्तव चन्द्रविद्विषः ॥ ५९ ॥

मीमांस्यते तर्कचणैर्मुहुर्दुर्लभः, कार्यं निदानानुगुणं तथेति तत् ।

यल्लोकमापत्सममात्मसम्भवा, कीर्त्तिस्तवेन्दुद्विजराजसोदरा ॥ ६० ॥

केषां न विश्वोदरवर्तिनामलभचर्करीन्मानसपद्ममञ्जसा ।

कीर्त्तिस्तव श्रीव महो ! हरिप्रिया मदाम्बरज्योतिरधीश्वरस्वसा ॥ ६१ ॥

कीर्त्तिस्तवाधिप ! समाधिजुषां न केषां, पैङ्गुषजाहशुभभूषणभावमायात् ।

लो...जगत्सु सुरमन्दरमध्यमानक्षीरोदसिन्धुभवदुच्चतरङ्गभासाम् ॥ ६२ ॥

सर्वत्र कीर्त्तिरगमत् किमु कान्तकान्तं, न स्वैरिणीव समवाप्य निरर्गला सा ।

त्वां क्षान्तिमन्तममला विकलोद्यतेन्दुं, चन्द्रातपस्य सततं द्विषती मुनीन्दो ! ॥ ६३ ॥

सङ्ख्यायुषीन्द्र ! तव कीर्त्तिपयःसमूहे, विश्वोदरं यमभृतां कमलावलीनाम् ।

लक्ष्मीं दधुः किमु न तारकराजयोऽमूः, शश्वत्प्रबुद्धसुखमाधिकपीडितीनाम् ॥ ६४ ॥

अत्यद्भुतं मुनिपते ! तव कीर्त्तिकान्ता, विश्वत्रये निखिलसङ्गमवत्यपीयम् ।

ख्यातिं सतीति दधते स्म तथातिरम्या, चेतो जगद्विपुलतल्पजुषां हरन्ती ॥ ६५ ॥

द्वे योगिनामधिपते ! सदृशी यमश्री-कीर्त्ती भवान् युगपदेव सुरूपकन्ये ।

ज्येष्ठे न विश्वसुदृशां किमिहोदवाक्षीत्, तत्रादिमा प्रियतरेति जगत्प्रतीता ॥ ६६ ॥

तल्लीनचित्तमवगत्य भवन्तमेषा, नो बम्भ्रमीति नितरामितरा त्रिलोक्याम् ।

ईर्ष्याकुला सहजचञ्चलदृक् प्रकृत्या, सर्वोच्चला निसुमुदं सततं नयन्ती ॥ ६७ ॥

गिरो रसं ते व्रतिनामधीश्वर ! विकस्वरीभूयमभूयतोच्चकैः ।

निपीय नो कैः सुमनोव्रजैरिव, नवाम्बुदस्येह कदम्बभूरुहाम् ॥ ६८ ॥

निपीय बाणीं भवतो महीयसीं, न के सुधां नो गणयन्ति तां भृशम् ।

सदैहिकामुष्मिकशर्मदानतः, श्रियं खकर्षूलहरेर्विमुष्णतीम् ॥ ६९ ॥

इत्थं श्रीविजयप्रभो गणधरो नीतः स्तुतेर्योऽयनं, राजद्राजविरोकभासुरयशाः सौभाग्यभाग्यैकभूः ।

सृज्यान्मे सततं मनोरथलतां स्फातिं दधानां पराम्, नम्राशेषसुरासुरेन्द्रकलसन्माल्यत्तमांहिद्वयः ॥ ७० ॥

तत्र श्रिया सकलपाठकराजमानाः, श्रीमद्विनीतविजयाः सुयशोवितानाः ।

श्रीमद्गुरोः प्रतिभया समतां दधानाः, पादाब्जरेणुभिरिलां सकलां पुनानाः ॥ ७१ ॥

त्रैलोक्यव्याप्तसहोकाः श्रीजसविजयाह्वयाः । श्रीमत्तत्रभवत्पारुशिष्टिप्रवर्त्तनोचलाः ॥ ७२ ॥

मास्वत्तमप्रतिभाभाः श्रीरविचर्दनाह्वयाः । श्रीपूज्यपादपाथोजसेवाहेवाकमानसाः ॥ ७३ ॥

तत्त्वातत्त्वविमर्शज्ञाः श्रीतन्त्रविजयाभिधाः । श्रीतातपादपादाब्जमकरन्दसितच्छदाः ॥ ७४ ॥

अन्ये येऽज्ञातनामानः श्रीपूज्यचरणान्तिके । ननंमि चानुननंमि यथायथं विपश्चितः ॥ ७५ ॥

सौवाङ्गवर्हातिनिरामयत्वतत्काम्यप्रमेयाम्बुभरैः सुमांसलम् ।

लेखाम्बुदं मच्छयशैलशेखरं, संभूषयन्तं तमवेक्ष्य सादरम् ॥ ७६ ॥

मत्स्वान्तमञ्जिष्ठमयूर एषः, बंहिष्ठमामोदभरं प्रदध्यात् ।

तं तं यथा श्रीवरपूज्यपादैः, सद्यः प्रसद्याशु तथा प्रणयेम् ॥ ७७ ॥

अत्रत्याः साधवः सर्वे पुण्यसुन्दरसंज्ञकाः । ज्ञानसुन्दरनामानो महिमासुन्दराभिधाः ॥ ७८ ॥

जयसुन्दरनामानस्तिलकसुन्दराह्वयाः । गङ्गसुन्दरनामानः सौभाग्यसुन्दराह्वयाः ॥ ७९ ॥

श्रीमत्तत्रभवत्पादपाथोजयामलं सदा ।

त्रिसायं ननमत्युच्चैः प्रोलसन्मानसाम्बुजाः ॥ ८० ॥

श्रीमत्कौमुदमासस्य लेखोऽलेखितमां मया ।

वलक्षेतरसप्तम्यामिति स्तान्मञ्जुमङ्गलम् ॥ ८१ ॥

*

॥ पूज्याराध्यध्येयतमसकलसकलभट्टारकमौलिपेशलशतदलमालयतमक्रम-

कमलयमलभट्टारकश्रीश्री १०५ श्रीविजयप्रभसूरीश्वरचरणसरसि-

जानामयं विज्ञप्तिलेखः । श्रीमज्जीर्णदुर्गे ॥

तपागच्छपतिभट्टारकश्रीविजयप्रभसूरिं प्रति पं० लावण्यविजयगणिप्रेषिता

[२०] — विज्ञसिका । —



स्वस्तिश्रीः कमनीयमंहिकमलं कल्याणकारस्करोत्कन्दोत्कन्दलनैकनव्यदकमुकप्रख्यप्रभावाङ्कितम् ।
देवेन्द्रा दिविषद्गणैः परिवृताः सर्वेऽपि सेवां व्यधुर्यस्य श्रीत्रिजगत्प्रभोस्स दिशतात् श्रेयो युगादीश्वरः ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रीः प्रथमप्रभोः पदपयोजनमद्वयीमद्वया,त्मचलस्वभावमतुलं संत्यज्य सुस्थैर्यतः ।
भव्याम्भोजवनप्रबोधतरणेः श्रीनाभिपृथ्वीपतिप्रोद्दामान्वयवाहिनीपतिपयःपूरत्रियामापतेः ॥ २ ॥
स्वस्तिश्रीर्ब्रततीव पादपवरं गौरीव भूतेश्वरं, दाशार्हं कमलेव सत्कुलवधूः स्वप्राणनाथं यथा ।
नीतिन्यायधुरंधरं वसुमतीनाथं यथा संश्रयेत्, भर्तुर्यस्य पदाम्बुजं श्रितवती हर्षप्रकर्षात् तथा ॥ ३ ॥
स्वस्ति क्षीरनिधेः सुतां तनुमतां स श्रीयुगादीश्वरः, कल्याणद्रुमवारिदो वितनुतां विश्वत्रयीवत्सलः ।
यस्य प्रौढपदाम्बुजन्मयुगलं त्रैलोक्यलक्ष्मीगृहं, सेवन्ते स्वककल्मषक्षयकृते सन्तः समग्रा अपि ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रीः सकलत्रिलोकतिलकं श्रीनाभिभूपोद्भवं, अव्यालीपरिचिन्तिते हितविधौ सत्कामकुम्भप्रभम् ।
संसारार्णवनीरपूरनिपतज्जन्तुव्रजोत्तारकं, सद्यो गीन्द्रमनःसरोजविलसद्भृङ्गं सदैवाभजत् ॥ ५ ॥

स्वस्तिश्रियं कलयतात् कलितो गुणौघैः, श्रीनाभिभूपतिभवो भवभीतिहर्ता ।

सद्भावनाकमलिनीविपिनावबोधोद्गच्छत्सहस्रकिरणः प्रथमप्रभुर्वः ॥ ६ ॥

स्वस्तिश्रियामद्भुतवासगेहं, संतप्तसुखर्णसवर्णदेहम् । श्रीमद्गुरीणध्वजतीर्थनाथं, ध्यायामि सन्नप्रसुराधिनाथम् ॥ ७ ॥
स्वस्तीन्दिरा यत्पदपुण्डरीकं, भेजे मुदैवाभ्युदयैकगेहम् । मन्ये किमु स्वीयपतिं पुराणमन्वसूचि जगदर्चनीयम् (?) ॥ ८ ॥
स्वस्तिश्रियामाश्रयमंहियुग्मं, यस्य प्रभोर्लक्ष्ममिषान्महोक्षः । संसेवयामास पशुस्वभावप्रस्फोटनायेव किमु प्रकामम् ॥ ९ ॥
स्वस्तीन्दिरामन्दिरमंहिपद्मं, संकल्पकल्पद्रुममाश्रयामः । आनम्रवास्तोष्पतिमौलिरत्नप्राञ्चत्प्रभाक्षीरभराभिधौतम् ॥ १० ॥
स्वस्तिश्रियामावसथं यदीयक्रमाब्जमङ्गच्छलतो महोक्षः । किमु प्रधानत्वमवासुकामः समाश्रयामास पशुव्रजेषु ॥ ११ ॥
यदास्यसंपूर्णसुधामयूखं निरन्तरं द्योतकरं निरीक्ष्य । स्वतोऽधिकं क्षुण्ण इव स्वचित्ते निशापतिर्व्योमपथं जगाम ॥ १२ ॥
यदीयवक्त्राभिनवेन्दुनेव पराभिभूतः सततोदयेन । विभावरीशः सततं कलङ्की किमष्टमूर्तेः शरणं चकार ॥ १३ ॥

इक्ष्वाकुवंशमकराकरपूर्णचन्द्रो दद्यादनल्पकमलामृषभो जिनो वः ।

पद्मेशयक्रमकुशेशयुग्मनिर्यद्गङ्गाङ्गुपावितसुपर्णसवर्णवर्णः ॥ १४ ॥

यद्रूपमालोक्य 'पयोधिपुत्रीपुत्रः पवित्रं त्रिजगत्प्रकृष्टम् । भव्यावलीनेत्रसुधाञ्जनाभममूर्तिमत्त्वं किमवाप नूनम् ॥ १५ ॥
प्रथमतीर्थकरः करुणाकरः कलयतात् कमलाममलामलम् । मदनवारण-वारण-केशरी सकलकल्पितकल्पतरूपमम् ॥ १६ ॥
श्रीमन्तमेनं सकलश्रियाढ्यं नाभेयतीर्थेश्वरसप्तसप्तिम् । निर्माय निर्मायप्रणामोदयत्कृत्मात् (?) च्छिखराधिरूढम् ॥ १७ ॥

॥ इति देववर्णनम् ॥

सर्वाङ्गलक्ष्मीललनाविलासं स्थानं जगन्नेत्रसुधासमानम् । मनोरमं पत्तननामधेयं विभ्राजते सर्वपुरप्रधानम् ॥ १८ ॥

यस्मिन् विभाति त्रिजगत्प्रभूणां प्रासादपङ्क्तिर्विमला विशाला ।

भास्वत्सुधादीप्तिभराभिरामा लोकाम्बकानन्दिविचित्रचित्रा ॥ १९ ॥

प्रासादराजी विरराज ज्योतिर्भरैः.....विश्वविश्वा ।
 यस्मिन् पुरे तीर्थकृतां नितान्तसन्तसचामीकरचारुकुम्भा ॥ २० ॥
 यद्रष्टुकामः किमयं हिमाचलः प्रासादमालाच्छलतः समागतः ।
 निर्माय रूपं बहुधाऽऽत्मनीनं सम्भावयामीति हृदि स्वकीये ॥ २१ ॥
 सदैजयन्त्यो जिनसन्नसंस्थाः कम्पायमानाः किमतीव यत्र ।
 वदन्ति लोकानवधूय यूयं प्रमादमेनं जिनपं भजध्वम् ॥ २२ ॥
 यच्चैत्यसंस्थातपनीयकुम्भश्रेणिं विलोक्येति वितर्कयन्ति ।
 लोकाः स्वरूपं विविधं विधाय सेवार्थमागात् किमयं सुमेरुः ? ॥ २३ ॥

उच्चैस्तरो राजति यस्य वप्रः कैलाशशैलश्रियमादधानः । क्षीराम्बुधिक्षीरतुषारोचिर्दिण्डीरपिण्डैकसवर्णवर्णः ॥ २४ ॥
 कूलङ्कपा यन्नगरोपकण्ठे नित्यावहा निर्मलनीरपूरा । स्तम्भेरमस्तोममनोज्ञलीला विभ्राजमाना बहते निकामम् ॥ २५ ॥
 संसारनीरेश्वरमग्नजन्तुश्रेणीसमुद्धारकृतिप्रवीणः । उपाश्रयः पोत इव प्रकामं चकास्ति यस्मिन्नगरे विशालः ॥ २६ ॥
 धनीश्वरा यत्र वसन्ति श्राद्धाः पुरंदरश्रीगृहिकोपमानाः । रूपश्रिया न्यत्कृतमाररूपाः सर्वाङ्गसद्गुणभूषिताङ्गाः ॥ २७ ॥
 औदार्य-संतर्जित-देववृक्षाः सुश्रावकौघा विलसन्ति यत्र । जीवादिसत्तत्त्वविदः समग्रा लक्ष्मीभृता देवगुरुप्रमत्ताः ॥ २८ ॥
 वनानि यत्र प्रथयन्ति विश्वत्रयीमनस्तोषमनन्यतुल्यम् । सच्चम्पकाशोकरसालसालाद्यनेकसदृक्षसुशोभितानि ॥ २९ ॥
 अत्यच्छसञ्जीरभरैः प्रपूर्णा यस्मिन् पुरे भान्ति सुपुष्करिण्यः । सद्रत्ननीलोत्पलपुण्डरीकसंपूरिताः सर्वजनप्रियाश्च ॥ ३० ॥

यत्पूःसमीपस्थितवाहिनीतटे, नानाविधा वल्गुविलासलीलाः ।
 कुर्वन्त्यनेका अपि सत्पुन्यः, संपूर्णपीयूषमयूखवक्त्राः ॥ ३१ ॥
 यत्र स्त्रियः सन्ति सुराङ्गनावत्, प्रोत्तुङ्गपीनस्तनशस्तविग्रहाः ।
 माधुर्यसौन्दर्यसुरूपलक्ष्मीलावण्यसत्त्वादिगुणाभिरामाः ॥ ३२ ॥
 श्राद्धीततिः कल्पलतेव यत्राभाति प्रसर्पच्छुभशीलमूलाः ।
 दानोलसत्स्फारफलाभियुक्ताः, सौभाग्यसद्वासनवासिताङ्गाः ॥ ३३ ॥
 श्रीयुक्तातचरणक्रमपङ्कजन्मयुगन्यासरेणुघनसारभराभिरामे ।
 श्रीपत्तनाभिधपुरे प्रथिते पृथिव्यां, सर्वाङ्गसुन्दरतरे सकलातिरम्ये ॥ ३४ ॥

श्रीमत्तातपदन्यासरजःकर्पूरपाविते । श्रीपत्तनाभिधपुरे तत्र श्रीमति सुन्दरे ॥ ३५ ॥

॥ इति नगरवर्णनम् ॥

श्रीमत्तातपदाम्भोजसक्तश्रावकशोभितात् । श्रीमद्वर्गवटीनामपुरात् कृषिषु सादरात् ॥ ३६ ॥
 अमन्दामन्दसन्दोहमेदुरीकृतमानसः । प्रभूतप्रणयप्रादुर्भावसत्पुलकाङ्कितः ॥ ३७ ॥
 सुव्यक्तभक्तिसंयुक्तः सोलासहृदयाम्बुजः । सरणद्रणकोऽकुण्ठोत्कण्ठोद्रेकसमाकुलः ॥ ३८ ॥
 विनयावनमत्काययष्टिर्भूयस्तमस्तकः । भालस्थलसंयोजितकरयुग्मकुशेशयः ॥ ३९ ॥
 प्रमेयप्रमितावर्त्तवदनेनाभिवन्द्य च । लावण्यविजयः शिष्यो विज्ञप्तिं तनुतेतमाम् ॥ ४० ॥
 यथाप्रयोजनं चात्र प्रोत्तुङ्गोदयभूभृतः । शिरःकोटीरतिप्रोद्यत्पद्मिनीप्राणवल्लभे ॥ ४१ ॥
 ध्वस्तान्धतमसव्यूहे विस्तृतातपकुङ्कुमे । कोकाद्यनेकजीवानां हर्षोत्कर्षप्रदायके ॥ ४२ ॥
 प्रवृत्तगीतगानादिमाङ्गल्यध्वनिसुन्दरे । पाथोरुहवनव्रातविबोधनकरे वरे ॥ ४३ ॥
 प्रातःकाले च संजाते प्रभाशुभ्रितभूतले । महेश्वरसम्पसन्दोहशोभितायां सुपर्षदि ॥ ४४ ॥
 श्रीश्रावकप्रतिक्रान्तिसूत्रवृत्तेः प्रवाचनम् । प्रस्तुतशास्त्राध्ययनाध्यापने च विशेषतः ॥ ४५ ॥

उपधानवाहनादि श्रीयोगोद्वाहनादि च । सानन्दनन्दिमानन्दि पाक्षिकापारणानि च ॥ ४६ ॥
 इत्यादिसौकृतकृत्यं निष्प्रत्यूहं प्रवर्तते । तथा परंपरायाते सर्वपर्वशिरोमणौ ॥ ४७ ॥
 श्रीमत्पर्यूषणापर्वण्यतुच्छोत्सवहारिणि । सप्तदशभेदपूजास्त्रादीनां प्रवर्तनम् ॥ ४८ ॥
 सक्षणैः क्षणनवकैः कल्पसूत्रानुवाचनम् । पूजाप्रभावनापूर्वदुष्टदुष्कृतयाचनम् ॥ ४९ ॥
 साधर्मिकजनाकण्ठपोषणं पुण्यजोषणम् । भूरिवित्तप्रदानेनानेकयाचकतोषणम् ॥ ५० ॥
 पक्षक्षपणकानेकदुस्तपस्तपसां पुनः । तपनं श्रीजिनगृहोत्सवखेलकनर्तनम् ॥ ५१ ॥
 हस्त्यश्वमनुजयानाद्याऽऽडम्बरपुरस्सरम् । अनेकातोद्यनिर्घोषैश्चैत्ययात्राविधापनम् ॥ ५२ ॥
 इत्येवं धर्मकर्माणि सशर्माणि महामहः । निरन्तरमजायन्त संजायन्तेऽधुनापि च ॥ ५३ ॥
 नमन्त्रेकमहीपालाभ्यर्चितांहिसरोरुहाम् । श्रीमतां तत्तत्पादानां प्रसादोदयतोऽपरम् ॥ ५४ ॥

यस्योल्लसद्भालविशालपट्टं, सदष्टमीकैरवबन्धुरेषः ।

मन्येऽभजद् विष्णुपदं किमीक्ष्य, श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ५५ ॥

यदीयनेत्रोपमतामवाप्तुं नीलोत्पलानीव किमाचरन्ति । तपांसि गत्वा सरसीवरेषु श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ५६ ॥

यदीयवक्त्राभिनवेन्दुमिन्दुः, स्वतोऽधिकज्योतिरितीव चित्ते ।

विचिन्त्य किं क्षीणतनुर्बभूव, श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ५७ ॥

यदीयवक्त्राम्बुजमम्बुजाली निरन्तरस्मेरमिवावधार्य । त्रपाभरात् किं विजने जगाम श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ५८ ॥

यस्याधरस्पर्द्धनयेव नूनं नवप्रवालं किमचेतनत्वम् । बभाज विश्वाद्भुतकृच्चरित्रः श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ५९ ॥

संपूर्णशीतांशुकलाकलापविराजमानानपि मौक्तिकव्रजान् ।

यद्वन्तपङ्क्तिर्नितरां जिगाय श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६० ॥

आहार्यमाधुर्यभरातिहृद्यं वचोमृतं यस्य निपीय भव्याः । सौहित्यमापुर्वचनातिरेकं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६१ ॥

पीत्वा कणेहृत्य यदीयवाणीसुधारसं कर्णपुटैः सकर्णाः । सुधा मुधैवेति वितर्कयन्ति श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६२ ॥

सितोपला काचघटी निवेशमिषादिवातङ्कभरान्ननाश । यदीयवाणीमधुरत्वतर्जिता श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६३ ॥

यदीयकण्ठेन जितः किमेषो नेष्ट्रेव शङ्खं शरणं चकार । करारविन्दं मधुसूदनस्य श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६४ ॥

यन्नासिका दीपशिखोपमाना शस्ता तिरस्कारमकारि नूनम् ।

अपि स्फुरच्चक्षुपटं सुकीरं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६५ ॥

समग्रसत्त्वानुनयावबोधपरागपूर्णं हृदयारविन्दम् । विराजते यस्य वरेण्यवर्णं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६६ ॥

अनन्यसामान्यबलं च यस्योद्दण्डं भुजादण्डमिवावलोक्य ।

अहीश्वरोऽधस्तलमाविवेश श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६७ ॥

यस्याद्भुतश्रीकमवेक्ष्य देहं ममेह किं कृत्यमितीव मत्वा । स्वर्णं पपात ज्वलदग्निकुण्डे श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६८ ॥

नितान्तमासेचनकं निरीक्ष्य यद्दर्शनं नेत्रतर्जितानाम् ।

विभर्ति विश्वे कमपि प्रमोदं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ६९ ॥

सन्नप्रभूशक्रशतोत्तमाङ्गकोटीररत्नद्युतिनीरधौतम् । यत्पादपद्मं प्रयति स्म लक्ष्मीः श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७० ॥

विधाय रूपत्रितयं यदीया बभ्राम कीर्त्तिः सुरसिन्धुदम्भात् ।

मन्ये किमन्वेष्टुमिव त्रिविश्वं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७१ ॥

यद्वैर्यगाम्भीर्यगुणेन तर्जितो रत्नाकरोऽप्यम्बुनिधी रसातलम् ।

जगाम किं भीतिभरादिवायं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७२ ॥

- यद्वीर्यतस्त्रस्त इव स्वचित्ते रत्नाचलः किं विजहार दूरम् ।
 स्थानं सुगुप्तं मनुजैरदृश्यं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७३ ॥
 उदारतां यस्य निरीक्ष्य वीक्ष्यापन्ना इवानन्दिनिभावमन्याम् ।
 ययुर्दशापि त्रिदिवं सुरद्रुमाः श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७४ ॥
 ५ यद्बुद्धिसंभारपराभिभूतः पलायितः सर्वसुपर्वसूरिः । शून्येऽन्तरिक्षे भ्रमतीव बाढं श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७५ ॥
 निर्धौतकैलाशसधर्मधामा प्रकाशते यस्य यशःशशाङ्कः ।
 विश्वेऽत्र विध्वस्ततमोवितानः श्रीमत्तपागच्छपतिः स जीयात् ॥ ७६ ॥
 एवमनेकविवेकिभिरनिशं संस्तूयमानपादानाम् । भुवनत्रितयप्रसन्ननिर्मलतरवर्णवादानाम् ॥ ७७ ॥
 सजलाम्बुदनादानां विनिर्जितानेकवादिवादानाम् । निरतिचारचरित्राचरणध्वस्तप्रसादानाम् ॥ ७८ ॥
 १० गतसकलविषादानां सर्वत्र प्राप्तविजयवादानाम् । जितमारोन्मादानां श्रीमत्श्रीतातपादानाम् ॥ ७९ ॥
 कोऽपि प्रसादलेशः सौववपुः पाटवादिवाचालः । आनन्दयिष्यति शिशुः स्वान्तमधो भानुरिव कमलम् ॥ ८० ॥
 तेन प्रसद्य सद्यः प्रसादनीयः प्रसन्नवदनैः सः । प्रतिसार्थं शिशुमानप्रमोदसंपत्तयेऽभ्यधिकम् ॥ ८१ ॥
 किंच शिशोरुपवैणवमवधार्या वन्दना जगद्वन्द्यैः । श्रीमद्वीरजिनेश्वरपट्टोदयभूधरादित्यैः ॥ ८२ ॥
 स्वप्रतिभासन्तर्जितधिषणाः श्रीलालकुशलगणिविबुधाः । श्रीतातचरणसेवारसिकाः श्रीहस्तिविजयाख्याः ॥ ८३ ॥
 १५ अनुपमबुद्धिनिधाना गणयः श्रीऋद्धिसोमनामानः । गजविजयाभिधगणयो गणयः पुनरुदयविजयाश्च ॥ ८४ ॥
 मुक्तिविजयगणयो गणिगुणविजयश्चापि जीतविजयगणिः ।
 सिद्धिविजयगणिनामा सत्यविजयनामगणयश्च ॥ ८५ ॥
 इत्यादिसाधुसाध्वीप्रमुखाणां तातचरणभक्तानाम् । नलनुनती प्रसाद्ये श्रीमत्तातैः प्रसादपरैः ॥ ८६ ॥
 किंचात्रत्या अपि च गणयः कनकादिविजयनामानः ।
 २० कमलादिविजयगणयो जयविजय.....गणयश्च ॥ ८७ ॥
 भाविगणिर्जसविजयो मुनी तथाणंदविजय-गुणविजयौ ।
 ज्ञानविजयगणिनामा लक्ष्मीविजयस्तथा च मुनिः ॥ ८८ ॥
 श्रीविजय-धीरविजयौ मुनी तथा ऋद्धिविजय-मेरुविजयौ च ।
 मानविजय-मतिविजयौ रविविजय-दयाविजयगणी ॥ ८९ ॥
 २५ लब्धिविजयगणिनामा सुवृद्धि-नय-मुक्ति-भक्तिविजयाश्च ।
 रङ्गविजय-नेमिविजयाऽऽणन्दविजय-कुशलविजयाद्याः ॥ ९० ॥
 महिमाश्रीवरगणिनी सौभाग्यश्रीस्तथा च वरसाध्वी ।
 राजश्रीलभिधाना सुमतिश्रीर्नाम साध्वी च ॥ ९१ ॥
 इत्येवं यति-यतिनीसमुदायोऽत्रत्यसकलसंघश्च । श्रीतातचरणचरणाम्बुरुहयुगं ननमीतितमाम् ॥ ९२ ॥
 ३० श्रीतातपादनाम्ना श्रीजिनपतयः सदा प्रणम्यन्ते । शिशुरपि तन्नतिसमये श्रीतातैश्चेतसि विधेयः ॥ ९३ ॥
 अकृशकृपारसकोशैः श्रीतातैः सर्वदा गतविषादैः । हितशिक्षणादि सर्वं कृत्यभरं च प्रसाद्यं मे ॥ ९४ ॥
 यत्किंचिदिह क्षूणं लिखितं रभसेन भवति तत्सर्वम् । क्षन्तव्यं श्रीयुक्तैस्तातपदैः शमरसाम्बुधिभिः ॥ ९५ ॥
 कोशीकृतकरकमलो भूमितलन्यस्तमस्तकः सततम् । शिष्याणुकनकविजयो विशेषतो नमति सद्भक्त्या ॥ ९६ ॥
 आश्विनस्य सिते पक्षे पूर्णिमास्यां लसत्तिथौ । मया सद्भक्तचित्तेन लेखोऽलेखीति मङ्गलम् ॥ ९७ ॥

तपागच्छीयाचार्यश्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं० रविवर्द्धनगणिप्रेषिता

[२१] — विज्ञसिका —

॥ श्रीशंखेश्वरपार्श्वपरमेश्वराय नमः । ऐं नमः ॥

स्वस्तिश्रियामभयदं समुपास्महे तमेकाश्रयं जिनपतिर्जनपूजनीयः ।

आनन्दयत्यमृतसूरिव यः शिवस्थो दोषाकरः कुबलयं सकलं नितान्तम् ॥ १ ॥

स्वस्तिश्रियः समभजन्त जिनेशितारं, रत्नाकरं जलधिगा इव यं प्रमोदात् ।

भूयिष्ठकष्टदमुनो वरवारिवाहः, सोऽस्तु श्रिये त्रिजगतीपुरुषप्रतीक्ष्यः ॥ २ ॥

स्वस्तिश्रीर्मलिनैर्भृङ्गैस्त्यक्त्वा चुम्बितमम्बुजम् । यदंहिमसभाजन्तमर्हन्तं प्रत्यहं स्तुमः ॥ ३ ॥

इत्थं जिनाधीश्वरपद्मनाभं, प्रणामगोवर्द्धनशैलशृङ्गम् । आरोप्य नम्रेन्द्रकिरीटकोटीमणिप्रभाजीवनधौतपादम् ॥ ४ ॥

श्रीगूर्जरो निखिलदेशशिरःकिरीटो, देशोऽद्वितीयमतुलं किल तत्र रत्नम् ।

नाम्नेति राजनगरं नगरं गरीयस्तद्धाम अह्मदपुरं परमं यदस्ति ॥ १ ॥

अहम्मदावादवेण्यहारं न्यधत्त धाता क्षितिभीरुकण्ठे । नानापुरीशुक्तिजमेतदस्मिन् धत्ते पुरं नायकरत्नसाम्यम् ॥ २ ॥

भवन्तु भूयांसि निवेशनानि महीतलस्योपरि संस्थितानि । समानतां यत्पुरमस्य धत्ते श्रुतं न कुत्रापि निरीक्षितं तत् ॥ ३ ॥

पारावाराम्बराजो(यो)षाविशालभालमण्डनम् । विशेषकं विशेषेण भासते किल यत्पुरम् ॥ ४ ॥

गर्जद्गूर्जरदेशराजनगरोत्सङ्गेऽस्ति दीप्तिं दधद्, यः श्रीमद्गुप्तादपद्मविमलीभूतान्तरालः पुरः ।

जाने राजगृहस्य पाटकवरो नालन्द इत्याख्यया, शोभी वीरजिनेन राष्ट्रमगधालङ्कारभूतस्य किम् ? ॥ ५ ॥

रम्यरामारमाकीर्णं भूभूषणमदूषणम् । यत्पुरं वीक्ष्य लङ्काब्धौ रोषपोषाद् विवेश किम् ? ॥ ६ ॥

पुरीं वरीयसीं वीक्ष्य यां जनैरिति तर्क्यते । श्रीगुरुं नन्तुमायाता संक्रान्तेवामरावती ॥ ७ ॥

यस्याः पुरः पुरः सर्वा नगर्यास्तुच्छसंपदः । यतोऽलीकाऽलका जाता भोगावती तु भोगिनी ॥ ८ ॥

यत्रार्हतामालयचक्रवालो नेत्रप्रमोदप्रददो जनानाम् । विराजते शुद्धसुधाभिरामः शशीव भूदेवपतिप्रतीक्ष्यः ॥ ९ ॥

विचित्रचित्राणि जिनेश्वराणां गृहाणि नानोपलनिर्मितानि ।

विभान्ति यत्रोच्चतराणि पुर्या लसद् ध्वजानीव विमानकानि ॥ १० ॥

यत्र श्रीजिनराजस्य प्रासादो राजतेतराम् । वैजयन्तश्रियं मुष्णन्नप्रङ्गमहाध्वजः ॥ ११ ॥

यत्राद्भुतो भाति विहारहारो मुक्ताश्रितः सद्गुणराजमानः । अत्युग्रतेजो बहुभक्तिमध्यसन्नायको दर्शनदर्शनीयः ॥ १२ ॥

संदिद्यते यत्र मुमुक्षुगेहं संसेव्यमानं सुमनःसमूहैः । विचित्रितं चित्रविचित्रचित्रैर्यथा विमानं विहितप्रमोदम् ॥ १३ ॥

यस्मिन् पुरे मुक्तिपुरीं प्रतीष्टं चकास्ति साध्वालययानपात्रम् ।

भव्याङ्गिसायात्रिकमुत्तमर्षिनियामकं सद्गतिकर्णधारम् ॥ १४ ॥

यत्रोत्तमा राजति धर्मशाला श्रीसूरितत्सेवकसङ्घयुक्ताः । विचित्ररत्नैर्घटिता सुधर्मासमेव सत्तन्त्रयुतेन्द्रदीप्रा ॥ १५ ॥

यत्रार्हताः श्रीगुरुपादसेवाहेवाकिनो निर्मलमूर्त्यस्तु । श्रद्धान्विता धर्मपरा वसन्ति दिवोऽवतीर्णा इव कामरूपाः ॥ १६ ॥

श्रावका यत्र राजन्ते स्थूललक्षा महर्द्धयः । चित्तोदारा इवानेके जङ्गमाऽस्वप्नादपाः ॥ १७ ॥

अद्भुतलो यस्य गुणानुरक्ता जीवादितत्त्वैकविचारदक्षाः ।

श्रीपञ्चमाङ्गे पुरि तुङ्गिकायाः श्राद्धा इव प्रोक्तगुणा विभान्ति ॥ १८ ॥

मुखाविका यत्र पवित्रपात्रे दानं ददत्यः शिवसौख्यदातृ । लता इवास्वप्नतरोर्दधत्यः सुशीलमाभान्ति वरं पुरन्ध्रयः ॥ १९ ॥

यत्रोन्नतानीश्वरमन्दिराणि राजन्ति नानामणिनिर्मितानि ।

दिव्यानि वातायनमण्डलानि कामं गृहाणीव सुधाशनानाम् ॥ २० ॥

यत्र गेहा एकभूमा द्विभूमाः सप्तभूमिकाः । भासन्ते व्यायता वृत्ताश्चतुरस्ताः सहस्रशः ॥ २१ ॥

चतुष्पथं यत्र विचित्रदृष्टश्रेणीभिरानन्दितसार्थवाहम् । विक्तायकक्रायकवस्तुवृन्दं चकास्ति साक्षादिव कामकुम्भः ॥ २२ ॥

सौवर्णो यत्र वप्रोऽस्तीन्द्रनीलकपिशिर्षकः । सखातिकः क्षितिस्त्रीणां मन्ये किं कर्णकुण्डलः ॥ २३ ॥

यत्र श्लोका महालोका मानवा मानवागमाः । नागरा नागराः सन्ति प्रमदाः प्रमदान्विताः ॥ २४ ॥

उद्यानं वर्तते यत्र नानावृक्षसमन्वितम् । सर्वर्तुफलसूनानि ददत् किं नन्दनं वनम् ॥ २५ ॥

श्रवन्तः करयो दानवारि गर्जन्त उन्नताः । शतशो यत्र भासन्ते कृष्णा जलधरा इव ॥ २६ ॥

कीनाशा राक्षसद्वीपे सरोगास्तु विहङ्गमाः । केशाः सुबन्धना दण्डसहिताश्चैत्यपङ्क्तयः ॥ २७ ॥

सन्निद्रा धनिनां मुक्ता नारायणा जनार्दनाः । कूटयुक्तास्त्रानभेदा यत्र लोका न केचन ॥ २८ ॥

मूका यत्रान्यदोषोक्तौ परस्त्रीवीक्षणोऽन्धकाः । पङ्क्त्योऽन्यधनचौर्ये निर्दयाः पापमर्दने ॥ २९ ॥

स्पृष्टोपेता धर्मकृत्ये दाने व्यसनिनो जनाः । गुणैकभाजनं भान्ति जैनधर्मपरायणाः ॥ ३० ॥

श्रीपूज्यपादराजीवरजःपुष्पपवित्रिते । तत्र श्रीमति विख्याते अहम्मदपुरे वरे ॥ ३१ ॥

जिनालयद्वयं भाति सुन्दराकृति यत्र किम् । मन्ये मुक्तिपुरीक्षायै भविनां नेत्रयामलम् ॥ ३२ ॥

वसन्ति यत्र धर्मिष्ठा गुरुभक्ता महेश्वराः । विबुधा बहवो लोका देवलोकसुरोपमाः ॥ ३३ ॥

वाग्मिप्रवशावापीवैद्यवर्णविभूषितात् । धीणोजस्थानतस्तस्मान्महि(ही)स्त्रीतिलकोपमात् ॥ ३४ ॥

सविनयं सहरिषं सायलकं सभक्तिकम् । श्लोकासं प्रेमसंयुक्तं ससन्तोषं ससंस्थिति ॥ ३५ ॥

हर्षोत्कण्ठोत्सरोमाश्रितस्त्रीयशरीरकम् । मोदमेदुरितस्वान्तं विनयानतमस्तकम् ॥ ३६ ॥

भालस्थलतलन्यस्तकरसंपुटकुञ्जलः । पञ्चाङ्गस्पृष्टभूमागस्तातपादरजस्कणः ॥ ३७ ॥

देवजेकमितावर्तवन्दनैरभिवन्द्य सत् । बालको वरविज्ञसिं तनुते रविचर्द्धनः ॥ ३८ ॥

यथाऽप्रातुदिनं कृत्यमुदिते भास्करे सति । पद्मकाननसंपुले तमोभरे क्षयङ्गते ॥ ३९ ॥

प्रभातसमये पारिषद्यालङ्कृतपर्वदि । नन्दिस्वाध्यायकरणं नेमिचरित्रवाचनम् ॥ ४० ॥

शास्त्राणां सादरं साधोः पाठनं पठनं स्वयम् । इत्यादिधर्मकृत्यानि प्रवर्तन्ते ससंमदम् ॥ ४१ ॥

आनुपूर्व्या समयाते श्रीमद्वार्षिकपर्वणि । सर्वपर्वशिरोरत्ने विविधोत्सवहारिणि ॥ ४२ ॥

जिनेन्द्रभवने सप्तदशप्रभेदपूजया । अर्हतां पूजनं स्नात्रविधानं समहोत्सवम् ॥ ४३ ॥

व्याख्यानैर्नवभिः कल्पसूत्र-तद्वृत्तिवाचनम् । नवप्रभावनायुक्तैर्वित्तं दानार्थितोषणम् ॥ ४४ ॥

साधमिकवात्सल्यकरणं पुण्यकारणम् । इत्यादिपर्वसम्बन्धिधर्मकर्मण्यनेकशः ॥ ४५ ॥

निर्विघ्नं समजायन्त महामहः पुरस्सरम् । श्रीतातपादसन्नाममहामन्त्रप्रभावतः ॥ ४६ ॥

अपरं श्रीपरमगुरूणां वर्णनम् -

श्रीचन्द्रगुप्तशतपत्रविराजि राजाजीश्रोतुकुलताकरणवासरमणिप्रकाशम् ।

सोप्ये मुदा विजयदेवगुरुं त्रिलोकीविस्तारिनिर्मलतपोमहता प्रकाशम् ॥ १ ॥

सूर्यचोऽमृतसं सरसं निपीय विश्वे समस्तमनुजा अभवन्नितान्तम् ।
 त्यक्तादराः सदमृते मनसेति मत्वा कुण्डानि तस्य नव किं बलिवेशम जग्मुः ॥ १ ॥
 माधुर्यताजितसितां सितकान्तिशुभ्रां सुरे ! गिरं तव सुतृप्तिभृतो निपीय ।
 मेधाविनः श्रुतिपुटैर्गणयन्ति नित्यं पेयूषमात्मनि निजे तृणतुल्यमेव ॥ २ ॥
 सूर्यश ! भूरिभवसञ्चितपापपूरदुर्भेद्यसंतमसराशिविनाशकर्त्री ।
 संसारिसत्त्वहृदयाम्बुजबोधदात्री भानुप्रभेव भवदीयसरस्वतीयम् ॥ ३ ॥
 निःशेषभव्यजनगूढपथस्थितोद्यदज्ञानदुष्टगरलं सहसाऽपहर्तुम् ।
 वाणीमिषेण विधिना निहिता सुधेयं सूर्यशितवर्दनचन्द्रमसि त्वदीये ॥ ४ ॥

नानारसस्फारपयःप्रपूर्णा संसेविता कोविदराजहंसैः । मलाग्रहर्त्री जनचित्तपद्माश्रयेव गङ्गा जयताद् गुरोर्गीः ॥ ५ ॥

वाण्याऽभिभूता भवदीययेयं लज्जाभरात् सारसुधा सुसाधोः ।
 प्रभो ! सुधादीधितिसाधुबिम्बमशिश्रियद् व्योम्नि विशुद्धभासा ॥ ६ ॥
 सुरे ! गिरां स्वादुतयाभिभूता स्फुटं हिया तेऽद्भुतया प्रणश्य ।
 आदाय वंशस्य मुखे शलाकां सितोपला काचघटीं विवेश ॥ ७ ॥
 वाणीविलासांस्तव देशनायां गुरोः समाकर्ण्य समस्तभव्याः ।
 यन्ति प्रमोदानिव नीलकण्ठा वसुन्धरायां घनगर्जिताश्च ॥ ८ ॥ - गिरामष्टकम् ।

सद्भस्तिमल्लोऽवलचन्द्रशङ्खक्षीराब्धिनागाधिपतिच्छलेन । लोकत्रये श्रीगुरुराजकीर्तिः प्रोज्जृम्भते श्वेतरुचिस्त्वदीया ॥ १ ॥
 जगन्नयं निर्मलकान्ति सुरे ! यशस्त्वदीयं विदधद्वलक्षम् । चित्रं जनानामसितादिवर्णभेदं भिनत्ति स्म वरिष्ठशक्ति ॥ २ ॥

स्कन्धो भवानीगुरुं हिनाम शेषः शिखा दिक्करिणः प्रशाखाः ।
 तद्वन्तपङ्क्तिः कुसुमानि भानि सस्यं विधोर्मण्डलमात्मचित्ते ।
 इति प्रतीमः प्रकटं प्रसारिभवद्यशःकल्पतरोर्मुनीश ! ॥ ३ ॥
 क्षीरार्णवोल्लोलसद्गुल्ला सुपुष्पदन्तोभयताडपत्रम् ।
 स्पष्टं वहन्ती रजतोदगद्रिस्तनद्वयी पुष्करमण्डपेऽस्मिन् ।
 सुरे ! त्वदीया नरिर्नर्त्ति कीर्तिसन्नर्त्तकी सुन्दररूपसम्पत् ॥ ४ ॥

कीर्त्तिस्त्रिमूर्त्तिर्भवतां त्रिलोकीं गन्तुं गरिष्ठा युगपद् बभूव । सुरे ! किमेषा भुजगाधिराजकैलाशशैलैन्द्रगजच्छलेन ॥ ५ ॥
 मातङ्गमुख्यो यत इन्द्रहस्ती क्षीरोदधिश्चारुसङ्गरङ्गः । कुरङ्गसङ्गः शशभृलभेत कथं गुरो ! त्वद्वरकीर्त्तिसाम्यम् ॥ ६ ॥

दुर्वर्णके नैव न चन्द्रबिम्बे दुग्धे न हारे न सरिद्रायाम् ।
 नो कुन्दपुष्पे न स सूरिसिंह ! त्वत्कीर्त्तिकान्तौ किल शुभ्रिमा यः ॥ ७ ॥
 सुरे ! त्वदीयं सुयशः स्वजैत्रमालोक्य दुर्जेयतरं ह्यकस्मात् ।
 भीतो विवेशोदकदुर्गमध्यं छायाच्छलात् पार्वण इन्दुरेषः ॥ ८ ॥ - यशोऽष्टकम् ।

॥ श्रीपूज्यलेखे १०० जातमस्ति ॥

तपागच्छाधिपतिश्रीविजयदेवसूरिं प्रति पं० विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता

[२२] — विज्ञसिका —

स्वस्तिश्रियो यान्ति सदाऽतिपुष्टिं यदीयविश्वाद्भुतनामजापात् ।
जीमूतराशेरिव वल्लिमाला सोऽस्तु श्रिये श्रीजिनशान्तिनाथः ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रियो यं जिनसार्वभौममशिश्रियन् विश्वविभूतिगेहम् ।
शान्ताशिवः सज्जनशान्तये स्तात् स शान्तिकर्त्ता जिनशान्तिनाथः ॥ २ ॥
आजिष्णुशोभाभरभासमानं मोहान्धकारोत्करभानुकल्पम् ।
पादाम्बुजं यस्य विराजतेऽलं श्रीशान्तिनाथः शिवशर्मणे सः ॥ ३ ॥
पार्श्वः पार्श्वमहापार्श्वो विश्वविश्वेश्वरो जिनः । कर्मवल्लीछिदा पार्श्वः पायात् संसारतो जनान् ॥ ४ ॥
शीर्षे सप्त स्फटा यस्य छत्राणि भान्ति सप्त किम् । श्रेयसे भूयसे भूयात् सप्तभयजयाजिनः ॥ ५ ॥
वामेयकेवलादर्शसंक्रान्तविष्टप ! प्रभो ! । अमेयगुणरत्नानां रत्नाकर ! चिरं जय ॥ ६ ॥
शीर्षसर्पमणिज्योतिर्नीलरत्नसमप्रभः । विद्युद्विद्युत्सपानीयधाराधर इवोन्नतः ॥ ७ ॥ — युग्मम् ।
स्वस्तिश्रीवर्द्धमानोऽस्तु वर्द्धमानो जिनेश्वरः । यशोवृद्ध्यै वर्द्धमानो न वर्द्धमानराजितः ॥ ८ ॥
स्वस्तिश्रीसंश्रितो देयात् सौख्यसौभाग्यसंपदम् । महावीरो महावीरो दुष्टदौर्भाग्यपर्वते ॥ ९ ॥
महावीरजिनाधीशो महावीरपराक्रमः । कुलाम्बरमहावीरो महावीरवरस्वरः ॥ १० ॥
ज्ञातनन्दन ! सर्वत्रप्रज्ञातनन्दनश्चिरम् । विज्ञातनन्दनाथेन सुज्ञातनन्दनः प्रभो ! ॥ ११ ॥ — युग्मम् ।
त्रैलोक्यो जिनो जीयादनल्पकल्पितार्थदः । बाल्येऽप्यकम्पयन्मेरुं लीलया यो बलान्वितः ॥ १२ ॥
तान् प्रणम्य जिनाधीशान् सुरासुरनतक्रमान् । चन्द्रोज्ज्वलयशोभातान् सर्वसंपत्तिकारकान् ॥ १३ ॥

अथ पुरवर्णनम् —

विराजते यत्र जिनाश्रयाली संसारसिन्धाविव पोतपङ्क्तिः ।
निर्वाणसौधाश्रयणाय जाने प्रोत्तुङ्गनिःश्रेणिरकारि भव्यैः ॥ १४ ॥
प्रासादा जिनराजस्य द्योतन्ते यत्र भूतले । दातारः कल्पितार्थस्य मन्दारा इव नन्दने ॥ १५ ॥
जिनालयाः स्फाटिकसाश्मबद्धा भूमण्डले यत्र विभान्ति रम्याः ।
राजिस्थिताः सज्जनवर्णनीयाः सुवृत्तताशालिन उच्चतुङ्गाः ॥ १६ ॥
समानि श्रीजिनेशस्य विमानानीव नाकिनाम् । आजन्ते यत्र वादित्रनिर्घोषैः कलितान्यलम् ॥ १७ ॥
श्रीमज्जिनवरेन्द्रस्य प्रासादाः सादभेदिनः । यशःस्तम्भा इवाभान्ति कारकाणां महानृणाम् ॥ १८ ॥
विराजते या नगरी विशाला विचित्रवर्णा लसदर्थयुक्ता । निषेविता साधुजनैः प्रकामं विशुद्धसिद्धान्तपदावलीव ॥ १९ ॥
यत्रोन्नता साधुसभा विभाति द्रव्यव्ययेनास्तिकनिर्मिता हि । पापल्यमानागमशब्दपूर्णा सद्राजधानीव सुधर्मराज्ञः ॥ २० ॥
यत्रार्हतास्तत्त्वविदो वदान्या उदारचित्ता निवसन्ति सन्तः ।
सम्या महेभ्या बहुदत्तचित्ताः किमून्नता जङ्गमकल्पवृक्षाः ॥ २१ ॥
स्पृष्टा जनानां तु मिथोऽस्ति यत्र शक्तोऽहमित्युन्नतधर्मकृत्ये ।
भूयिष्ठसङ्गणभूषितानां लक्ष्मीश्रितानां पुरुषोत्तमानाम् ॥ २२ ॥

अकास्ति यत्राद्भुतयौवनेन तद् यौवनं विश्वमनोहरं यत् । समीक्ष्य देवप्रमदा मदेन त्वद्यापि नायाति मनुष्यलोके ॥२३॥
 प्रत्यर्थिपृथ्वीदयितान्धकारसंघातविध्वंसनचित्रभानुः । प्रीणाति यस्यां वसुधाधिनाथः प्रजां स्वकीयात्मजवज्रितारिः ॥२४॥
 यत्र चौर्यविनिर्मुक्ते लोललोचनविभ्रमैः । मनांसि केवलं यूनां हरन्ति हरिणीदृशः ॥ २५ ॥
 लक्ष्मीवन्तो निरता मर्यादायां गभीरतायुक्ताः । शुद्धहृदयाः सुवृत्ता नदीशवन्नागरा यत्र ॥ २६ ॥
 मन्दा अकार्यकरणे परस्त्रीदर्शनेऽन्धकाः । मूकाश्च परदोषोक्तावसन्तुष्टा गुणग्रहे ॥ २७ ॥
 पापेभ्यो भीरुका यत्र लोका लुब्धा यशोऽर्जने । निःशूकाः पङ्कसंहारे दानव्यसनिनस्तथा ॥ २८ ॥
 मुक्ताफलेषु हि च्छिद्रं वीवाहे करपीडनम् । मारिः शारिषु न(नो) लोके कुसुमेषु च बन्धनम् ॥ २९ ॥
 दण्डश्छत्रे तथा चैत्ये खड्गे निश्चिंशता सृता । मुरुजेषु चपेटादि जडत्वं यत्र पुष्करे ॥ ३० ॥
 कैरवानन्ददायी कः का प्रिया स्मरभूपतेः । का पुरी पावनीभूता श्रीगुरुपादपङ्कजैः ॥ ३१ ॥

‘सूरतिः’ – व्यस्तसमस्तजातिः ।

महेभ्यसभ्यद्रविणादिपूर्णे विराजमाने नृपसौख्यवृन्दैः । श्रीतातपादोदकजन्मरेणुपुण्यीकृते श्रीमति तत्र वर्ये ॥ ३२ ॥
 उल्लसन्ति सदा यत्र प्रासादाः श्रीजिनेशितुः । शोभमानसदाकारा नानाचित्रविराजिताः ॥ ३३ ॥
 यत्र सिद्धालयश्रेणिर्निश्रेणिः सिद्धिसङ्घनः । भाति सिद्धिरिवानन्ददायिनी भव्यदेहिनाम् ॥ ३४ ॥
 यस्मिन् पुरे भाति विहारपङ्क्तिर्व्योमान्तसंलग्नसदण्डशृङ्गा । किं दर्शयन् दण्डमिषाज्जनानां गीर्वाणगेहं करशाखयेव ॥३५॥
 श्रीसङ्को राजते यत्र लसद्गुणमणीखनिः । जिनेन्द्रार्चाप्रतिक्रान्तिगुरुभक्तिरतः सदा ॥ ३६ ॥
 यत्र सर्वोऽपि वास्तव्यलोकः परमधार्मिकः । दृढप्रतिज्ञो निपुणो भद्रकप्रकृतिस्तथा ॥ ३७ ॥
 श्रीवीतरागस्मरणप्रवीणसद्भार्मिकस्तोमविभूषिताङ्गात् ।
 भूभामिनीभालविचित्रभूतात्तस्मान्मुदा विन्धिपुराद् विशिष्टात् ॥ ३८ ॥
 सोत्कण्ठितान्तःकरणाभिरामः सन्नीतिरीत्यावनतोत्तमाङ्गः ।
 संयोजिताञ्चत्करकुङ्कुमलो हि भूरेणुसच्चित्रितभालपट्टः ॥ ३९ ॥

भक्तिव्यक्त्या कृतोत्साहः शिष्यो विनयवर्द्धनः । पतङ्गप्रमितावर्त्तवन्दनेनाभिवन्द्य च ॥ ४० ॥
 विज्ञप्तिकां वितनुते कामदां कामधेनुवत् । यथा सुकृतसत्कृत्यमिहापि प्रतिवासरम् ॥ ४१ ॥
 प्राचीनाचलचूलायामागच्छत्यंशुमालिनि । मण्डितायां महासभ्यैर्महेभ्यैः प्रौढपर्वदि ॥ ४२ ॥
 श्रीमद्भगवतीसूत्रदेशना क्लेशनाशिनी । पठनं पाठनं साधोरासोक्तियोगवाहनम् ॥ ४३ ॥
 इत्यादिकं शोभनधर्मकृत्यं जातं मुदा संप्रति जायते च । श्रीतातपादस्मरणप्रभावप्रोद्भूतपुण्योदयतस्तथा च ॥ ४४ ॥²⁵
 परिपाठ्या समायाते हर्षिताशेषमानवे । सर्वपर्वशिरोरत्ने श्रीमदाब्दिकपर्वणि ॥ ४५ ॥
 अमारिपटहोद्घोषः कृपापोषश्च सर्वतः । तोषणं सर्वलोकानां पौषधिकस्य पोषणम् ॥ ४६ ॥
 अष्टाहिकापक्षचतुर्थमासाष्टमादिकोत्कृष्टतपोविधानम् । सप्ताधिकैः स्नात्रविधेर्विधानं जिनेन्द्रगेहे दशभिः प्रकारैः ॥४७॥
 संकल्पितानल्पविकल्पपूरसंपूरणे कल्पतरूपमस्य । श्रीकरूपसूत्रस्य नवक्षणैः सन्नव्यक्षणैर्वाचनमद्भुतस्य ॥ ४८ ॥
 विशेषतः सद्गुरुदेवभक्तिर्भवाजितांहोहरणे प्रसक्तिः । वाञ्छाधिकं मार्गणमण्डलीनां द्रव्यप्रदानं निजशुद्धभावात् ॥४९॥³⁰
 इत्यादिसत्पर्वनिबद्धधर्मकृत्यं समग्रं समभूत् सशर्म ।संसक्तसद्भ्यानकृतिप्रभावात् ॥ ५० ॥

अथ गुरुवर्णनम् –

श्रीमत्तपागणमहार्णवपूर्णचन्द्रं, सूरेश्वरं विजय० ॥ ५१ ॥ श्रीसूरिनायक ! तव प्रतिभोपमानं० ॥ ५२ ॥

– यावत् – पद्मा० ॥ ५८ ॥ गच्छेशो० – यावत् ॥ ६२ ॥

का मान्या नरनाथसंसदि भवेत् ? कः प्राणिनां धर्मतः ? किं तिष्ठेत् स्थिरमङ्गिनां ? दिवि सदा के सन्ति ? किं भूधरान् ? ॥³⁵

दीर्घान् हन्ति ? बलात् प्रमोदकरणे कः पङ्कजानां स्मृतः ? कुम्भो मङ्गलमातनोति पथिकप्रस्थानके कीदृशः ? ॥ ६३ ॥

प्रश्नाद्यक्षरसंग्रहाद् भवति यो वाचंयमाधीश्वरः,
उद्यत्स्त्रीयकुलाम्बराम्बरमणिं श्रीगौतमस्वामिनम् ।

लब्ध्या श्रीविजयादिसेनगणभृत्यद्वाब्धिरात्रीश्वरं,

तं श्रीपूर्वकमादरेण { भविनां सौभाग्यदं संस्तुवे ॥
भविका भावाद्भजध्वं जनाः ! ॥ ६४ ॥

कीदृशः पुद्गला जैने ? का शम्भोः प्राणवल्लभा ? । को वैरी पञ्चबाणस्य प्रश्नाद्यक्षरसंग्रहात् ॥

श्रीविजयदेवसूरेः सा माता या भवेदहो ॥ ६५ ॥ 'रूपाई' - षट्पदी ।

महाव्रती भवेत् कस्तु ? कोऽप्सराप्राणवल्लभः । कीदृग् मेरुश्च को निष्ठः प्रश्नाद्यक्षरसंग्रहात् ॥

श्रीविजयदेवसूरेः स पिता यो भवेदहो ॥ ६६ ॥ 'साहसिरो' - षट्पदी ।

प्रशस्ता साधुधर्मे का ? सार्कुभौमश्रियां नव । के सन्ति भुवि कीदृक्षा विजयदेवसूरयः ॥ ६७ ॥

'कृपानिधयः' - व्यस्तसमस्तजातिः ।

किं श्रवणप्रियं ? मार्गे का दुष्टा ? का प्रिया हरेः ? । कृपणास्येऽक्षरं किं ? का नराणां वल्लभाः कलौ ? ॥

श्रीमन्तः कीदृशाः सन्ति ? विजयदेवसूरयः ॥ ६८ ॥ - 'गम्भीरमानसाः' ।

दिनो यशसा सारनमाया जनता विभो ! । भो वितानजयामानरसासा शयतो दिवि ॥ ६९ ॥ - 'क्याराबन्धः' ।

लोकेन विद्या विभवेन पूर्वं भाग्येन ये सुरिगणा अभूवन् । सूरेश्वरश्रीविजयादिदेवदृष्टे त्वयि प्रष्टुगुणेन दृष्टाः ॥ ७० ॥

विजय देवताधीश ! विजय देवसंस्तुत ! । विजय देवसूरीन्द्र ! विजय 'देवपाठक ! ॥ ७१ ॥

अगण्यपुण्यपुण्याढ्यो भाग्यसौभाग्यभासुरः । श्रीसुरिभूरिसूरीशः प्रसन्नीभवताच्छिशौ ॥ ७२ ॥

तन्मातृपादैर्विगतप्रमादैः प्रगल्भपाथोजसहस्रपादैः । सवारिजीमूतसदृक्षनादैः स्वकीयशिष्योपरि सुप्रसादैः ॥ ७३ ॥

श्रीपूज्यपादैर्निजकीयकायपरिच्छदारोग्यनिवेदिनी मे । प्रसादपत्री स्वशिषोः प्रसद्य प्रसादनीया प्रभुभिः प्रकृष्टैः ॥ ७४ ॥

अथावधार्या प्रणतिस्त्रिसन्ध्यं कृताञ्जलेर्मे नतमस्तकस्य । तथा परेषां मुनिसत्तमानां प्रसादनीया सततं प्रसन्नैः ॥ ७५ ॥

॥ इति विज्ञप्तिका ॥

तपागच्छाचार्यश्रीविजयसिंहसूरिं प्रति विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता

[२३] — विज्ञसिका —

स्वस्तिश्रियं श्रीजिनराट् सिषेवे शान्तीशिता पञ्चमसार्वभौमः ।
षट्खण्डभोक्ता पुरुषोत्तमो हि सौख्यं विधत्तां स शिवङ्करोऽयम् ॥ १ ॥
यदंहिपद्मं भजति स्म पशुत्वतो रक्ष विभो ! मृगो माम् ।
इत्यात्मना विज्ञपयन्नितान्तं जीयाज्जिनः सर्वजनीन एषः ॥ २ ॥
मिथोऽन्यसत्त्वोद्भवभीतिनश्यच्छरीरिमात्राभयदं यदंहिम् ।
विचार्य भीतो हरिणो हरेः किमगादयं लक्ष्ममिषाच्छ्रिये स्तात् ॥ ३ ॥
यद्वक्त्रकान्त्या विजितो मृगाङ्कः परास्यतौल्यासिकृते कुरङ्गम् ।
प्रैषीद् यदंहिद्वितयेऽङ्गतः किं जगन्नयेशोऽस्तु विभूतये सः ॥ ४ ॥
स्वस्तिश्रियालीढमनूतनाकिसंस्तूयमानं दितविश्वमानम् ।
श्रीपार्श्वनाथं क्षितिनाथपूज्यं सन्तः ! श्रयध्वं गुणराशिगेहम् ॥ ५ ॥
वामेयदेवेह तवात्मकान्त्या किमिन्द्रनीलो विजितः स्वसाम्यात् ।
पाषाणभावं भजति स्म तीव्रं चिकीर्षया कामितदन्तपो हि ॥ ६ ॥

सुपार्श्वपार्श्वं स्मरताष्टकर्मलितोऽग्रपार्श्वं हृदि पार्श्वनाथम् । यत्पादपद्मं फणभृद्गुणज्ञः पूर्वोपकारस्मरणादसेवीत् ॥ ७ ॥ "

स्वस्तिश्रिये स्ताज्जिनवर्द्धमानः श्रीवर्द्धमानो दलितापमानः ।
सिद्धार्थवन्मङ्गलमालिकां यः सिद्धार्थपुत्रः कुरुते स्मृतः सन् ॥ ८ ॥
श्रीत्रैशलेयस्त्रिजगज्जनानामभ्यर्चनीयो जयताज्जिनेन्द्रः ।
बाल्येऽपि योऽकम्पयदुग्रतेजाः स्वर्णाचलं तत्क्षणमेव लीलया ॥ ९ ॥
आप्तत्रयीं चेतसि तां निधाय रत्नत्रयीं किं जगतस्त्रयीं किम् ।
ब्रह्मत्रयीं किं त्रिपदीं किमिष्टदृष्टित्रीं किं जगदर्चनीयाम् ॥ १० ॥
स्वस्तिश्रियां वृद्धिरशेषसिद्धिरनुत्तरर्द्धिर्विपुला च बुद्धिः ।
यदीयसत्पादसरोजसेवनात्(?) सोऽस्तु श्रिये श्रीजिनवर्द्धमानः ॥ ११ ॥

अथ नगरवर्णनम्—

यत्रार्हतां संप्रति मन्दिराणि ग्राञ्चत्सुधाभिर्धवलीकृतानि । अग्रं कषोच्चैश्शिखराणि भान्ति कैलाशकूटानि विभासुराणि ॥ १२ ॥
यत्रासगेहं जिनमूर्तियुक्तं ध्वजाञ्चलेनाह्वयतीति भव्यान् । मोक्षाग्रमार्गं जयति प्रतीतं भजध्वमेनं मरुताचलेन ॥ १३ ॥
यत्रोच्चसर्वज्ञमनोज्ञवेश्मशृङ्गे समालोक्य सुवर्णकुम्भम् । वदन्त्यहो ! सर्वजनाः परस्परमसौ स्थिरीभूतरविः किमत्र ॥ १४ ॥
सद्मानि श्रीजिनेशस्य विमानानीव नाकिनाम् । भ्राजन्ते यत्र वादित्रनिर्घोषैः कलितान्यलम् ॥ १५ ॥
यत्रोन्नता साधुसभा विभाति द्रव्यव्ययेनास्ति कनिर्मिता हि । पापल्यमानागमशब्दपूर्णा सद्राजधानीव सुधर्मराज्ञः ॥ १६ ॥

श्रीप्राज्यरत्नालिनिर्मितानि विचित्रचित्रैरतिसुन्दराणि ।

कामं गृहाणीव सुधाशनानां विभान्ति यस्यां जिनमन्दिराणि ॥ १७ ॥

यत्रार्हतास्तत्त्वविदो वदान्या उदारचित्ता निवसन्ति सन्तः ।

सभ्या महेभ्या बहुदत्तचित्ताः किमून्नता जङ्गमकल्पवृक्षाः ॥ १८ ॥

यत्रास्तिकानां समवेक्ष्य दानं वृन्दारकानोकहपङ्क्तिरेव । स्वर्गे निवासं किमु तत्र चक्रे यत्रापमानं हि सतां न वासः ॥ १९ ॥

विराजते या नगरी गरीयसी विशिष्टधर्मिष्ठजनैरलङ्कृता । सुतातपादप्रबलप्रभावतोऽसुखेति दोषादिभयादवीयसी ॥ २० ॥

स्पन्द्या जनानां तु मिथोऽस्ति यत्र शक्तोऽहमित्युन्नतधर्मकृत्ये ।

भूयिष्ठसङ्घषणभूषितानां लक्ष्मीश्रितानां पुरुषोत्तमानाम् ॥ २१ ॥

चकास्ति यत्राद्भुतयौवनेन तद् यौवनं विश्वमनोहरं यत् । समीक्ष्य देवप्रमदा मदेन न्वद्यापि नायाति मनुष्यलोके ॥ २२ ॥

यद्दर्शयत्युच्यते प्रतिरूपितानि मृगेक्षणानां वदनोत्पलानि । सौरभ्यलोभाद्बहुचञ्चरीका विलोक्य सन्नोपरि संभ्रमन्ति ॥ २३ ॥

यत्र चौर्यविनिर्मुक्ते लौललोचनविभ्रमैः । मनांसि केवलं यूनां हरन्ति हरिणीदृशः ॥ २४ ॥

लक्ष्मीवन्तो निरता मर्यादायां गभीरतायुक्ताः । शुद्धहृदयाः सुवृत्ता नदीशवन्नागरा यत्र ॥ २५ ॥

यत्र प्रजापालनतत्परोऽस्ति क्षितीशिता क्षत्रियवंशदीपः । सन्ध्यायमार्गागतवित्तकोशो विपक्षभेदी किल रामचन्द्रः ॥ २६ ॥

मन्दा अकार्यकरणे परस्त्रीदर्शनेऽन्धकाः । मूकाश्च परदोषोक्तावसन्तुष्टा गुणग्रहे ॥ २७ ॥

पापेभ्यो भीरुका यत्र लोका लुब्धा यशोऽर्जने । निःशुकाः पङ्कसंहारे दाने व्यसनिनस्तथा ॥ २८ ॥ — यमलम् ।

मुक्ताफलेषु हि च्छिद्रं वीवाहे करपीडनम् । मारिः शारिषु न(नो?) लोके कुसुमेषु च बन्धनम् ॥ २९ ॥

दण्डश्छत्रे तथा चैत्ये खड्गे निखिंशता सृता । मुरुजेषु चपेटादि जडत्वं यत्र पुष्करे ॥ ३० ॥ — यमलम् ।

धनदा धनदा यत्र मानवा मानवा अपि । स्त्रियोऽपि हि सदा गौर्यः पुरुषाः पुरुषोत्तमाः ॥ ३१ ॥

ईश्वरा ईश्वरा एव शक्तिमन्तो यशोऽर्जने । कवयः कवयः कामं दृश्यन्ते बहवो नराः ॥ ३२ ॥

सदने सदने सन्ति कमलाः कमलास्तथा । विशिष्यते कथं तत्र पुरं स्वर्गिपुरादिह ॥ ३३ ॥

सौवर्णवप्रो रचनावलीढो रत्नावलीनां कपिशिर्षशोभी । यन्नास्ति कर्णाभरणं किमेष पृथ्वीवशाया जगदुत्तमायाः ॥ ३४ ॥

मध्ये क्षितिप्रष्टपुरावतंसे कृष्णादिकोद्वारुयपुरे प्रतीते । श्रीतातपादोदकजन्मरेणुपुण्यीकृते श्रीमति तत्र वर्त्ये ॥ ३५ ॥

सश्रद्धश्राद्धसंदोहात् भूरिभूरिविभूषितात् । श्रीगुरुनाममन्त्रेण सौख्यसौभाग्यसंयुतात् ॥ ३६ ॥

वापीवप्रविहारादिपदार्थसार्थराजितात् । अपूर्वस्वर्गसादृश्यात् तिरवाडापुरात् ततः ॥ ३७ ॥

अथ समाचारः—

श्रीगुरुचरणद्वन्द्वपुण्डरीकरजस्कणः । हर्षोत्कर्षभराद् भूरि रोमोद्गमशरीरभाक् ॥ ३८ ॥

संयोजितकरकमलः सूर्यमितावर्त्तवन्दनेनैवम् । वन्दित्वा सप्रणयं सोत्कण्ठं सरणरणकं च ॥ ३९ ॥

धात्रीतलमिलन्मौलिर्नताङ्गो भक्तिभासुरः । विज्ञप्तिकां वितनुते शिष्यो विनयवर्द्धनः ॥ ४० ॥

विरोचने दिग्गमणीयरामावक्राण्यथो मण्डयतीव रक्ते । मुदा करैः स्वस्य च कुङ्कुमाभैरारूढपूर्वाचलशृङ्गभागे ॥ ४१ ॥

ग्रहण्यमाने रविणा निशायास्तमोभरे दीधितिभिर्धनाभे । श्यामाधिनाथं हसता वशायाः सङ्गात्फलं प्राप्तमिदं त्वयेति ॥ ४२ ॥

यथाऽत्र कृत्यं प्रतिवासरं तु विराजितायां बहुसभ्यमर्त्यैः । विधीयते श्रीपरिशिष्टपर्वसुवाचनं सच्चतुरैः सभायाम् ॥ ४३ ॥

सिद्धान्तादिकशास्त्राणां पठनं पाठनं तथा । योगोद्बहनमित्यादि धर्मकर्म मुदाऽभवत् ॥ ४४ ॥

संप्रति जायते चान्यत् तातपादप्रसादतः । पर्वापि वार्षिकं सर्वपर्वगर्वापहारकम् ॥ ४५ ॥

तत्रोपतस्थे सर्वत्र पौषधिकस्य पोषणम् । अमारिपटहोद्घोषपापसन्तापवारणम् ॥ ४६ ॥

मासार्द्धमासक्षपणाष्टमोददष्टाहिकाषष्ठतपोऽभितप्तम् । उपासकैः सप्तदशप्रभेदैर्जिनेन्द्रसुस्त्रावविधेर्विधानम् ॥ ४७ ॥

अर्थिसार्थः कृतार्थस्त्वमवाप प्रार्थितासितः । इभ्येभ्यः श्राद्धवर्गेभ्यः श्राद्धीभ्योऽपि तथा धनम् ॥ ४८ ॥

कल्पितानल्पसंकल्पपूरणे कल्पशास्त्रिनः । वाचना कल्पसूत्रस्य नवक्षणनवक्षणैः ॥ ४९ ॥

नवप्रभावना खण्डपुटपूरीफलादिकैः । साधर्मिकाणां वात्सल्यं पक्वान्नैर्विविधैः सह ॥ ५० ॥
इत्यादिसत्पर्वनिबद्धधर्मकृत्यं समग्रं समभूत् सशर्म । श्रीतातपादांहिसरोजयुग्मसंसक्तसद्भ्यानकृतिप्रभावात् ॥ ५१ ॥

अथ श्रीविराजमानतपागच्छाधिराजश्रीविजयसिंहसूरीश्वरवर्णनम् -

श्रीविजयदेवसूरिपट्टाम्भोधिनिशाकरम् । श्रीविजयसिंहसूरिं स्तविकर्मा करोम्यहम् ॥ ५२ ॥

सदोन्नतिः श्रीतपागच्छपूर्वाचलोच्चूलाग्रसहस्रधामा ।

भव्यारविन्दान् कुरुते सितास्यो जीयात् स सूरिर्विजयादिसिंहः ॥ ५३ ॥

पारम्परीणाग्र्यगणाधिपानां धर्मोपदेशो दुरितं समग्रम् ।

दीदांसते शोभुशुभो हि येषां जीयात् स सूरिर्विजयादिसिंहः ॥ ५४ ॥

त्वदास्यवाक्सारसुधां निपीय चन्द्रामृतं यद्विबुधा मुधाऽधुः ।

तदूर्ध्वचञ्चलितिलक्ष्मदम्भाच्छेवालवल्ली समभूत् ततः किम् ? ॥ ५५ ॥

तपोगणेशस्य समीक्ष्य वक्त्रं किं वा न बाहं विमलप्रभावः ।

परीक्षितुं स्पष्टमितीन्दुरङ्गव्याजेन हस्ते मुकुरो(रं) व्यधात् किम् ? ॥ ५६ ॥

वाचंयमाधीश ! तवासमानदेदीप्यमानास्यरुचं निशम्य ।

गात्रे निशायां निशितामुवाह चन्द्रोऽङ्गदम्भादसुखोदयात् किम् ? ॥ ५७ ॥

विनिर्ममं वा विधिना त्वदास्यं सुधां सुधांशोः किमु मध्यगां द्राक् ।

प्रगृह्य सम्यक्कथमन्यथेदं कलङ्करन् शशिनः प्रभो ! स्यात् ? ॥ ५८ ॥

त्वद्वक्त्रशोभां समवेक्ष्य राजाऽतिविस्मितः स्माटति किं न वास्ति ।

तद्वस्तु यत्सन्निभतां क्षमायां किमर्हतीतीक्षितुमीश ! शङ्के ॥ ५९ ॥

धाताऽवधार्यासमदीधितिन्दुत्वद्वक्त्रयोः सन्निभतां स्वचित्ते ।

बिम्बे किमिन्दोरुपलक्षितं चेद् वक्त्रेऽङ्गदम्भादुपलक्षणं हि ॥ ६० ॥

यदि प्रमोदेन निशेशबिम्बं नालीकयुग्मं वहति प्रसन्नम् । तदैति शिष्टं कथमप्यतुच्छनेत्रद्वयं त्वद्वदनोपमां च ॥ ६१ ॥

प्राप्नोति चन्द्रः सहयोगिभावं तवाननस्य प्रतिमासमिन्नः ।

संपूर्णमूर्तिं विषमैस्तपोभिः कुहूष्वदृश्येन कृशां विधी(धा)य ॥ ६२ ॥

॥ इति मुखाष्टकम् ॥

संविस्तरन् यस्य यशोनदीशो भूमण्डलं वा विमलीकरोति ।

बिभ्राजते यत्र हिमांशुबिम्बं श्वेतावदातोत्पलवन्नितान्तम् ॥ ६३ ॥

तपागणाधीशयशस्कलापपवित्रतां प्राप्नुमिव प्रचण्डः ।

सुरद्विपः स्नाति तवातिकान्तः सदा सिताङ्गोऽपि लिलिम्प नद्याम् ॥ ६४ ॥

यद्यशःक्षीरपाथोद्यौ शशाङ्ककरसुन्दरे । भ्रमराञ्जनसंकाशमाकाशं शैवलायते ॥ ६५ ॥

राजते यद्यशोराशिः शशाङ्क इव पावनः । ग्रीणयन् लोकसंदोहान् समुद्ध्योतितविष्टपः ॥ ६६ ॥

यत्कीर्तिव्रततेर्व्योममण्डपे तारकन्ति हि । विस्तृतायाः प्रसूनानि चन्द्रबिम्बायते फलम् ॥ ६७ ॥

यत्कीर्त्या धवलीभूतं विष्टपव्रितयं यदा । तदादि शेषदिग्दन्त्यादयो जाताः सिताः ननु ॥ ६८ ॥

यत्कीर्तिर्वज्रभिस्तेन चरन्ती गगनाङ्गणे । वर्द्धापिता सितै रत्नैरुपेतं तारकैर्नभः ॥ ६९ ॥

कुलवधूरिव या परमा सती सकलदक्षजनैरिह मन्यते । पणवधूरिव साऽपि निरङ्कुशा चरति कीर्तिवधूर्नु यदीयका ॥ ७० ॥

॥ इति यशोऽष्टकम् ॥

उत्साहवान् लब्धजयप्रवादो येषां प्रतापस्तपनच्छलेन । विलोकितुं नष्टरिपूनिवायं नभोऽङ्गणे भ्राम्यति नित्यमेव ॥७१॥

येषां प्रदीप्तात् प्रचलप्रतापाद् गच्छन्ति नष्टा इव वादिचक्राः ।

जाज्वल्यमानादिव हव्यवाहाद् व्याघ्रादयः श्वापदजन्तवो हि ॥ ७२ ॥ — यमलम् ।

श्रीमत्तपागच्छपतेः प्रभाते ये दर्शनं जङ्गमतीर्थकस्य ।

कुर्वन्ति भव्यास्त एव धन्याः पुण्यीभवन्त्यात्मनि शुद्धभावात् ॥ ७३ ॥

को वर्णः कृपणास्ये तु ? द्विद्धातोः कोऽस्ति प्रत्ययः ? । श्रीविजयसिंहसूरेः कः पिता ? प्रोच्यतामिह ॥ ७४ ॥

को विभर्त्यस्तनं वक्षः ? सद्भाग्यामन्त्रणं वद । पूर्ववर्गस्य प्राग्वर्णः किं कामामन्त्रणं कवेः ? ॥

श्रीविजयसिंहसूरेः का माता प्रोच्यतामिह ॥ ७५ ॥

तीर्थङ्करोपमा यस्य तद्वचोऽर्थप्ररूपणात् । श्रीविजयसिंहसूरिं भव्या ! भजध्वमादरात् ॥ ७६ ॥

लब्धिपात्रं सुरश्रेणीसेवितं तीर्थनायकम् । दितसद्भव्यसन्देहं सर्ववाङ्मयपारगम् ॥ ७७ ॥ — यमलम् ।

तैस्तातपादैर्विगतप्रमादैः प्रागल्भ्यपाथोजसहस्रपादैः । सवारिजीमूतसदृक्षनादैः स्वकीयशिष्योपरि सुप्रसादैः ॥ ७८ ॥

सभासमक्षं जितवादिवादैर्विध्वंसिताशेषविपद्विषादैः । स्वरूपशोभामदनानुवादैः सद्भक्तिभाजां विलसद्रमादैः ॥ ७९ ॥

श्रीपूज्यपादैर्निजकीयकायपरिच्छदारोग्यनिवेदिनी मे । प्रसादपत्री स्वशिशोः प्रसद्य प्रसादनीया प्रभुभिः प्रकृष्टैः ॥ ८० ॥

श्रीतातपादपदपद्मपरप्रणामसंश्लिष्टभूमितलपाणिपुटग्रन्थमौलेः ।

त्रैकालिकी प्रणतिरात्मशिशोः सदैव पूज्यैः पवित्रचरणैरवधारणीया ॥ ८१ ॥

श्रीतातपादपदपावनपुण्डरीकयुग्मोपसेवनपरायणचित्तवित्तः ।

दूरस्थितोऽपि समये स्वशिशुः सदैवाचिन्त्यप्रभावगुरुभिर्ननु चिन्तनीयः ॥ ८२ ॥

शचकशिरोऽवतंसा निजवचनातिशयरञ्जितनृपनिकराः । अवगतधर्माधर्मस्वरूपका धर्मचन्द्रनामानः ॥ ८३ ॥

वेबुधवरलालकुशलाः कुशलाः पाषण्डखण्डने मुशलाः । श्रीतातपादसेवाप्रधान्यगणिहस्तिविजयाहाः ॥ ८४ ॥

वरभक्तिभरवशीकृतसद्गुरुदयगणिऋद्धिसोमाख्याः । स्वपरमतशास्त्रसंहतितत्त्वविदो गणिउदयविजयाः ॥ ८५ ॥

मुक्तिपुरमार्गसाधनतत्परगणिमुक्तिविजयनामानः । दर्शनतर्जितनलिना दर्शनविजया गणिप्रवराः ॥ ८६ ॥

प्रत्यवचनसंलीना गणिसिन्धुरसत्यविजयाहाः । शतदलकोमलतनवो गणयो वरसिद्धिविजयनामानः ॥ ८७ ॥

मनुजनलिनदिनमणयो गणयो रविविजयनामानः । धिषणासञ्जितधिषणा गणयो वरविजयसोमाहाः ॥ ८८ ॥

प्रन्येऽपि साधवो ये श्रीमद्गुरुपादचरणभक्तिभृतः । तेषां नत्यनुनतिके श्रीतातैर्मम ननु ज्ञाप्ये ॥ ८९ ॥

केचिद्दहत्या गणयो रविवर्द्धननामधारिणो मुनयः । धनवर्द्धननामानः सकलः सङ्घश्च परमतरभक्त्या ॥ ९० ॥

इत्येते प्रणमन्ति कृतास्त्रलयोऽवनितलनिहितशिरोब्जाः । श्रीतातपादनाम्ना नम्यन्ते किञ्च जिनपतयः ॥ ९१ ॥

परभृतवन्माकन्दं चलचञ्चुरिव तपसं दिवापुष्टम् । द्वन्द्वचरवदनुदिवसं श्रीतातं स्मरति बालोऽयम् ॥ ९२ ॥

श्रौचित्यमात्रार्थसुविन्दुवर्णसंयुक्तमुक्तं यदवर्णभावात् । किञ्चिद् भवेन्मातृमुखेन तातैः क्षन्तव्यमेतच्छमतारसासैः ॥ ९३ ॥

पोषबहुलदशम्यां लिखिता बुधवासरे । श्रीतातपादविज्ञप्तिरिति भूयाच्छ्रेयसे सततम् ॥ ९४ ॥

॥ संवत् १७०३ वर्षे श्रीविजयसिंहसूरीश्वराणामयं लेखः ॥

तपागणाधीशश्रीविजयसिंहसूरिं प्रति पं० विनयवर्द्धनगणिप्रेषिता

[२४] — विज्ञसिका । —

स्वस्तिश्रियाश्रितपदं विपदन्तकारी, भव्या भजध्वमिह तं महितं यथार्थः ।
तार्त्तीयिको जिनवरो नवरोगहर्ता, श्रीशंभवो विभवदो भवदोषभेदी ॥ १ ॥
स्वस्तिश्रियो गृह इहेतिजितारिपुत्रश्चित्रं स्वयं जिनपतिस्तनुते जितारिः ।
जीयाजगज्जनसमीहितसिद्धिकर्ता, भर्ता प्रशस्तजगतां स च विश्वपूज्यः ॥ २ ॥

स्वस्तिश्रीः स्वस्तिसंपृक्तः स्वस्तीव स्वस्तिकारकः । ददातु स्वस्ति सर्वेषां शंभवार्हन्त आदरात् ॥ ३ ॥

अश्वोऽभजद् यस्य पदाब्जयुग्मं सलक्षणं लक्षणकैतवाद्धि ।
स्वजातिसौभाग्यकृतेऽवदातो ददातु सौख्यं स जिनो जनानाम् ॥ ४ ॥
त्रैलोक्यनाथं समवेक्ष्य वज्री भीतोऽग्रतोऽयं तुरगं स्वरीशः ।
प्रेषीद् यदंहिद्वितयेऽङ्गतः किं सोऽस्तु श्रिये श्रीजिनशंभवोऽत्र ॥ ५ ॥
ताक्षर्यो विचार्येति दिवानिशं मे समागमत् सूर्यविमानतः किम् ? ।
अत्राटनं यच्चरणेऽङ्गदम्भात् स्थिरे प्रशान्ते स जिनो मुदेऽस्तु ॥ ६ ॥

मुक्त्यङ्गनायाः करपीडनाय किं मण्डनाऽलक्तकसद्रसेन । सुशोणिमा भाति यदंहियुग्मे कृता जिनेशो भवताच्छिवाय ॥ ७ ॥

पादद्वये यस्य नखा दशैव वन्दारुदिगुमर्त्यमुखेक्षणाय ।
किं दर्पणा भान्ति विशेषदीप्राश्छिन्द्याज्जिनोऽसौख्यमसौ जनानाम् ॥ ८ ॥
पादद्वयी यस्य समीहितार्थदात्री भवाब्धि भविनां तरीतुम् ।
नौरैव साक्षात् कमनी चकास्ति सेनाङ्गजो जन्तुसुखाय भूयात् ॥ ९ ॥

यदंहिपद्मं समवेक्ष्य पद्मा नरेन्द्रपूज्यं सततं विकासि । विमुच्य पद्मं निजमन्दिरं द्रागशिश्रियत् सोऽस्तु जिनो विभूत्यै ॥ १० ॥
पद्माकरे यत्पदपद्मकान्त्या गत्वा जितं पद्म महातपांसि । तेपे श्रियं प्राप्नुमुदकदृष्ट्या जैनाह्वयस्तेऽसुमतां प्रसन्नाः ॥ ११ ॥
श्रीशम्भवार्हन्तनिशाकरं तं प्रणामगङ्गाधरभालपट्टे । संस्थाप्य भक्त्या त्रिजगजनानां मनोऽरविन्दानि प्रकाशयन्तम् ॥ १२ ॥

अथ पुरवर्णनम् —

यत्रोन्नतानि प्रवराणि तीर्थकृतां गृहाणि प्रभया विभान्ति ।
मन्ये विमानानि सुनिर्जराणां विचित्रचित्रेण विचित्रितानि ॥ १३ ॥

यच्चैत्यशृङ्गे कलधौतकुम्भः प्रष्टप्रतिष्ठां प्रकटीकरोति । किं फेनपिण्डः पतितोऽभ्रमार्गखिन्नार्कताक्षर्यो न ततोऽवदातः ॥ १४ ॥
यच्चैत्यशृङ्गस्थितहेमकुम्भं समीक्ष्य रामास्तनकुम्भयुग्मम् । नष्ट्वा प्रविष्टं त्रपयाऽसितास्यं विधाय किं कञ्चुलिकान्तराले ॥ १५ ॥

यच्चैत्यशृङ्गोत्तमकेतुपार्श्वे कुम्भः स्थितो नु प्रकटप्रतिष्ठाम् ।
धत्ते दिवि स्वर्गिसरित्पतीरे किं श्वेतकुम्भो हि भृतो विमुक्तः ॥ १६ ॥

अग्रंकषा शंसति सत्पताका यच्चैत्यशृङ्गोपरि चञ्चलेति । आगत्य भव्याः शिवसार्थवाहं प्रासादसंस्थं जिनपं भजध्वम् ॥ १७ ॥

यच्चैत्यमध्येऽद्भुतरूपकान्तिं पाञ्चालिकां वीक्ष्य युवेति वक्ति ।
विद्याधरी तीर्थकरार्चनायाऽऽयाता स्वयं किं किल पुष्पहस्ता ॥ १८ ॥

चैत्येऽर्हतां यत्र पुरोऽलिनीलां नित्यं जना मेघघटां वदन्ति । सश्रद्धश्राद्धैः कृतकाकतुण्डधूपोत्थधूमैर्गगनाग्रगैस्तु ॥ १९ ॥

श्रीपूज्यपादान् प्रति नन्तुमात्मभक्त्याऽऽगतानेकजनावलीढम् ।

यत्राद्भुतं साधुगृहं चकास्ति पोतं तरीतुं किमदो भवान्धिम् ॥ २० ॥

श्रीपूज्यपादाश्रितमार्हतानां मुक्त्यर्थिनां साधुगृहं समीक्ष्य ।

यत्र प्रबुद्धाः प्रवदन्ति किन्तु सर्वार्थसिद्धाख्यमिदं विमानम् ॥ २१ ॥

श्रद्धाभुजां चेद्धि भवेन्मणीनां चैतन्यमन्यच्च सुरद्रुमाणाम् । तदा कयातां कथमप्यमू यत् श्रद्धावतां दानसमानभावे ॥ २२ ॥

यदास्तिकानां समवेक्ष्य दानं सुरार्जनी देवकरालिकाली ।

चक्रे निवासं दिवि लज्जितेव यत्रापमानं हि सतां न वासः ॥ २३ ॥

यत्रार्हता धर्मरता विरक्ता द्विसन्ध्यमावश्यककारकाः किम् ।

श्रीपञ्चमाङ्गोक्तसदास्तिकानां समानभावं प्रगता विभान्ति ॥ २४ ॥

यत्रास्तिका देवगुरुप्रणीतधर्मानुरक्तोभयपक्षशुद्धाः । शीलेन सीताऽर्थितदानदात्री पद्मावतारा किमुदारचित्ता ? ॥ २५ ॥

विराजते या नगरी विशाला विचित्रवर्णा लसदर्थयुक्ता । निषेविता साधुजनैः प्रकामं विशुद्धसिद्धान्तपदावलीव ॥ २६ ॥

प्रत्यर्थिपृथ्वीदयितान्धकारसंघातविध्वंसनचित्रभानुः ।

प्रीणाति यस्यां वसुधाधिनाथः प्रजां स्वकीयात्मजवज्जितारिः ॥ २७ ॥

विभान्ति यस्यामलसेक्षणागणाः स्वरूपसंतर्जितनिर्जराङ्गनाः ।

उदारगत्या जितहंसबालिका मुखारविन्दाधरितेन्दुमण्डलाः ॥ २८ ॥

यत्राङ्गनां वीक्ष्य सुराङ्गनाभिः परस्परं भेदकमिच्छतीभिः ।

संपूजितो नाभिरुहः स्वभक्त्या तदा निमेषा विदधे प्रजास्ताः ॥ २९ ॥

कल्याणराजत्कलशोपशोभिता रोचिष्णुरत्नैः प्रतिबद्धभूतलाः ।

अभ्रंकषा उत्तमशिल्पनिर्मिताः स्फारस्फुरत्स्तम्भशतोपयुक्ताः ॥ ३० ॥

जगन्त्रयश्रीसुविलासगेहा विभान्ति यस्यां नरवृन्दगेहाः ।

सदा विहायोभ्रमणोत्थखेदात् खगा इवैते किमधोऽवतीर्णाः ॥ ३१ ॥ — यमलम् ।

नक्षत्रमालाप्रतियातना हि निर्मात्यलं मुग्धवधूजनानाम् । विचित्रपुष्पप्रकरस्य बुद्धिगेहाङ्गणे यत्र सुरत्नबद्धे ॥ ३२ ॥

यद्धर्म्यकुड्ये प्रतिरूपितानि मृगेक्षणानां वदनोत्पलानि । सौरभ्यलोभाद्बहुचञ्चरीका विलोक्य सन्नोपरि संप्रमन्ति ॥ ३३ ॥

यद्धर्म्यदीप्यन्मणिवद्धचन्द्रशालाप्रदेशे प्रतिबिम्बितं च ।

हारं स्वहस्तं सहसा क्षिपन्ते लातुं प्रियं स्वीयप्रिया जहास ॥ ३४ ॥

विभाति यस्यां कमनीयसालो रत्नोत्कराणां कपिशिर्षशोभी ।

प्रशस्यजाम्बूनदवद्धभित्तिः क्षमाङ्गनायाः करभूषणं किम् ? ॥ ३५ ॥

चकास्ति यस्यां परिखावहन्ती विस्तीर्णसालप्रतिरूपमन्तः । मणिज्वलन्निर्मलनीरपूर्णा किं कङ्कणीभूतसरिद्वरेव ॥ ३६ ॥

राजते वाटिका यत्र पुष्पराजिविराजिनी । पौष्पायातयुवश्रेणी यथा नगरनायिका ॥ ३७ ॥

विभासते यत्र वनं कदम्बमालूरमाकन्दफलादिराजितम् । अनल्पजीवासमसौख्यकारि सचन्दनं स्वं किमधोऽवतीर्णम् ॥ ३८ ॥

अथ विशेषतः कान्यम् —

छिद्रं तु मुक्ताफलके विवाहे छत्रेषु दण्डः करपीडनं च ।

निस्त्रिंशत्(स्तु)शताऽसौ चिकुरेषु बन्धो लोकेषु नासीन्मुदितेषु यत्र ॥ ३९ ॥

मन्दा अकार्यकरणे परस्त्रीदर्शनेऽन्धकाः । सूकाश्च परदोषोक्तावसन्तुष्टा गुणग्रहे ॥ ४० ॥
पापेभ्यो भीरुका यत्र लोका लुब्धा यशोऽर्जने । निःशूकाः पङ्कसंहारे दाने व्यसनिनस्तथा ॥ ४१ ॥
महेभ्यसभ्यद्रविणादिपूर्णे विराजमाने नृपसौख्यवृन्दैः । श्रीतातपादोदकजन्मरेणुपुण्यीकृते श्रीमति तत्र वर्ये ॥ ४२ ॥

अथ विंहदिवर्णनं लिख्यते -

उत्तुङ्गशृङ्गः स्फटिकाश्मबद्धो जिनालयः प्रौढचलत्पताकः ।
कीर्त्तेरिव स्तम्भ इहास्ति यत्र, किल कारकाणाम् ॥ ४३ ॥
प्रासादा जिनराजस्य द्योतन्ते यत्र सुन्दराः । दातारः कल्पितार्थस्य मन्दारा इव नन्दने ॥ ४४ ॥
धर्मध्यानपरा यत्र शीलाभरणभूषिताः । श्रावकाः श्रीगुरोर्भक्ता दीनोद्धरणसादराः ॥ ४५ ॥
राजमानगुणग्रामा बहुशास्त्रविचक्षणाः । सद्दानगुणसंयुक्ता धनेन धनदोपमाः ॥ ४६ ॥ - यमलम् ।
यत्र सर्वोऽपि वास्तव्यलोकः परमधार्मिकः । दृढप्रतिज्ञो निपुणो भद्रकप्रकृतिस्तथा ॥ ४७ ॥
वापीवप्रवनोत्कीर्णाद् विप्रवित्तविभूषितात् । अपूर्वस्वर्गसादृश्याद् विंहदिनगरात्ततः ॥ ४८ ॥
सञ्जीतिरीतिविनयावनतोत्तमाङ्गविन्यस्तहस्तपरिदर्शितभक्तिभावः ।
आयल्लकोत्पुलकिताङ्गलताविभागः प्रह्लादमेदुरमना विनयस्वभावः ॥ ४९ ॥
निर्मापितग्रहपतिप्रमितप्रणामं विज्ञप्तिकापुटकिनीमयमेकचित्तः ।
भक्त्याऽवतारयति वर्णविशिष्यमाणां शिष्याणुको विनयवर्द्धन आदरेण ॥ ५० ॥
पूर्वाद्विचूलाभवलम्बिनि श्रीदिनाधिनाथे किल कुङ्कुमाभैः । काष्ठाभृगाक्षीवदनानि रक्ते मुदा करैर्मण्डयति स्वकीयैः ॥ ५१ ॥
शब्दायमाने तस्ताग्रचूडे जरजपापुष्पगणप्रकाशे । कृष्णान्धकारे प्रलयंगतेऽथ यथाऽत्र कृत्यं प्रतिवासरं च ॥ ५२ ॥
पर्षद्यमर्षमुषि हर्षपुषि प्रसिद्धश्रद्धावदिभ्यजनराजिविराजितायाम् ।
श्रीपञ्चमाङ्गवरसूत्रपवित्रवृत्तेर्व्याख्याकृतिः सुकृतिनिर्मितहृत्प्रसत्तेः ॥ ५३ ॥
प्रज्ञापनोपाङ्गविशिष्टसूत्रस्वाध्यायचञ्चत्करणं मुनीनाम् ।
अध्यापनं चाध्ययनं त्रिसायं श्राद्धोपधानोद्बहनं स्वशक्त्या ॥ ५४ ॥
इत्यादिकं शोभनधर्मकार्यं जातं मुदा संप्रति जायते च । श्रीतातपादस्मरणप्रभावप्रोद्भूतपुण्योदयतस्तथा च ॥ ५५ ॥
क्रमागते वार्षिकपर्वणीत्यतिभीत्यभावे समपर्वदीपे । अभून्नवीनक्षणाकल्पसूत्रसुवाचनं साधुनवक्ष्यैश्च ॥ ५६ ॥
अष्टाहिकापक्षचतुर्थमासाऽष्टमादिकोत्कृष्टतपोविधानम् । सप्ताधिकैः स्नात्रविधेर्विधानं जिनेन्द्रगेहे दशभिः प्रकारैः ॥ ५७ ॥
वाञ्छाधिकं मार्गणमण्डलीनां द्रव्यप्रदानं निजशुद्धभावात् । परस्परोत्पन्नरूपापहारः प्रभावोद्भूतविभूतिसारः ॥ ५८ ॥
विशेषतः सद्गुरुदेवभक्तिः समस्तसाधर्मिकवत्सलत्वम् । पूर्वार्जितांहोहरणे प्रसक्तिः संसारशल्योद्धरणं जनानाम् ॥ ५९ ॥
इत्यादिसत्पर्वनिबद्धधर्मकृत्यं समग्रं समभूत् सशर्म । श्रीतातपादांहिसरोजयुग्मसंसक्तसद्भ्यान्कृतिप्रसादात् ॥ ६० ॥

अथ श्रीगुरुवर्णनम् -

का मान्या नरनाथपर्वदि भवेत् ? कः प्राणिनां धर्मतः ? किं तिष्ठेत् स्थिरमङ्गिनां ? गजघटाविध्वंसने को बली ?* ।
विन्ध्याद्रिं स्मरति प्रमोदकरणे कः पङ्कजानां स्मृतः ? कुम्भो मङ्गलमातनोति पथिकप्रस्थानके कीदृशः ? ॥ ६१ ॥
प्रश्नाद्यक्षरसंग्रहाद् भवति यो वाच्यमाधीश्वरः, उद्यत्स्वीयकुलाम्बराम्बरमणिं श्रीगौतमस्वामिनम् ।
लब्ध्या श्रीविजयादिदेवगणभृत्यद्वान्धिरात्रीश्वरं, तं श्रीपूर्वकमादरेण भविनां सौभाग्यदं संस्तुवे ॥ ६२ ॥

अथ कमलबन्धः -

भविकाम्बुजसारङ्गं कोविदसंहतिचकोरसारङ्गम् । सुकृतसरःसारङ्गं पापप्रबलतरुसारङ्गम् ॥ ६३ ॥

* 'दिवि सदा के सन्ति किं भूधरान् दीर्घान् हन्ति बलात् ।' इति वा पाठः ।

-कुमतरजःसारङ्गं वादिराजगणप्रमथनसारङ्गम् । निश्चलतासारङ्गं मनुजशुभगतिकृशानुसारङ्गम् ॥६४॥ - गीतिः ।
 मधुरस्वरसारङ्गं निरञ्जनगुणजितसारङ्गम् । तनुरूपसुसारङ्गं, समस्तसहजगुणसारङ्गम् ॥ ६५ ॥ - उपगीतिः ।
 श्वासविजितसारङ्गं शोचनशिशुपालसारङ्गम् । कामक्षयसारङ्गं कुनयमलप्रमथसारङ्गम् ॥ ६६ ॥ - उपगीतिः ।
 कर्मराशिसूरसारङ्गं करकमलधृतशमतासारङ्गम् । जिनशासनसारङ्गं नासिकयाञ्जितवरतिलसारङ्गम् ॥६७॥ - गीतिः ।
 १ भूतर्जितसारङ्गं निर्मलताजितसुपर्वसारङ्गम् । जनमनकजसारङ्गं स्वाज्ञाकारितपगणसुसारङ्गम् ॥ ६८ ॥ - गीतिः ।
 सुन्दरमुखसारङ्गं ध्याननरोद्गाहितवरसारङ्गम् । लोभार्जुनसारङ्गं कण्ठचमत्कृतसुसारङ्गम् ॥ ६९ ॥ - आर्या ।
 मुक्तिस्त्रीसारङ्गं दमितकरणचपलसारङ्गम् । दीक्षास्त्रीसारङ्गं संसृतिमृगहननसारङ्गम् ॥ ७० ॥ - उपगीतिः ।
 सकलसुजनसारङ्गं सौवरमादर्शितनरसारङ्गम् । शशधरसमसारङ्गं विबुधसभास्त्रीसुदृष्टिसारङ्गम् ॥ ७१ ॥ - गीतिः ।
 क्रीडाधृतसारङ्गं कीलितरोषशितिसारङ्गम् । वाणीगीतलतासारङ्गं पावितनिजवरसारङ्गम् ॥ ७२ ॥ - अर्द्धविपुला ।
 १० दितमायासारङ्गं स्ववशीकृतसुमतिसारङ्गम् । जङ्गमसुरसारङ्गं मृगमदजैत्रवदनाब्जसारङ्गम् ॥ ७३ ॥ - उद्गीतिः ।
 मानभुजगसारङ्गं जगज्जनमनःसहकारसारङ्गम् । लोचनजितसारङ्गं निजवशनिर्मितमनःसुसारङ्गम् ॥७४॥ - गीतिः ।
 करेखासारङ्गं शुभलेख्यागुणविजितसारङ्गम् । गदितनियतसारङ्गं वचनजलदलीनपुरुषसारङ्गम् ॥ ७५ ॥ - गीतिः ।
 व्रतिमृगमदसारङ्गं लुब्धितनिरुपमशितिसारङ्गम् । भवजलनिधिसारङ्गं धर्मकथालापितसुसारङ्गम् ॥ ७६ ॥ - आर्या ।
 सुकृतिसलिलसारङ्गं स्वरमाधुर्यमथितवरसारङ्गम् । भजत गुरुं सारङ्गं मोहरजनिबोधनगुरुसारङ्गम् ॥७७॥ - गीतिः ।

15

एवं कमलबन्धः ।

- सूर्य १ चंद्र २ राजहंस ३ हस्ती ४ वायु ५ सिंह ६ गिरि ७ मेघ ८ वीणा ९ शङ्ख १० कन्दर्प ११ पृथ्वी
 १२ कर्पूर १३ कृष्ण १४ महादेव १५ जल १६ कुठार १७ खड्ग १८ पीपक १९ कुसुम २० कार्मुक २१ नदी
 २२ भृङ्ग २३ निर्ग्रन्थ २४ कमल २५ अगुरु २६ अग्नि २७ पिक २८ स्वर्ण २९ अश्व ३० रमण ३१ चितारा
 ३२ लोचन ३३ चित्र ३४ मुख ३५ कज्जल ३६ सारिका ३७ सर्प ३८ चन्दन ३९ कुल ४० रात्रि ४१ लक्ष्मी
 २० ४२ रत्न ४३ सुवास ४४ गरुड ४५ कीर ४६ खंजन ४७ प्लवंग ४८ चक्र ४९ श्वेतवर्ण ५० संपलवाणी ५१
 चातक ५२ मृग ५३ वेणी ५४ वाहन ५५ राग ५६ भेक ५७ वांसली ५८ सहर्ष ५९ कुर्कुट ६० एवमनुक्रमतः ।
 वक्षो धत्ते स्तनं कः ? शुभतरनियते किंवदामन्नं हि ? प्राग्वर्गस्याद्यवर्णो भवति विदुषः किं कामसंबोधनं तु ? ।
 का संबुद्धिः प्रभूणां ? किमिह सहचरीसप्तमीरूपमैक्यं, मातुः किं नाम गच्छाधिपतिविजयसिंहस्फुरत्सूरिराज्ञः ॥७८॥
 - नायकदे । द्विव्यस्तसमस्तजातिः ।

कृष्णप्रिया काऽस्ति ? किमव्ययं तु खेदे ? स्तनं को हि विभर्त्ति वक्षः ? ।

धातोः द्वितः प्रत्यय एति कस्तु ? स्तोत्रार्हतो गच्छपतेः पिता कः ? ॥ ७९ ॥

- साहनाथुः । व्यस्तसमस्तजातिः ।

गच्छाधिनाथो वदतां जनानां, सौख्यानि चित्तार्थितदानदक्षः ।

कल्याणकारी करुणाजलार्द्रः, साक्षादसौ सुन्दरनाकिशाखी ॥ ८० ॥ - निरोष्ठकाव्यः ।

० नानाव्यन्तरनागनिर्जरविशां विद्याधरस्वामिनां, सर्वेषां हृदयस्थलेषु रमते संचारिणी स्वेच्छया ।

येषां कीर्तिवधूः सतीति बिरुदं संधारयन्ती जने, यत्कोपोपनतेस्तदत्र महतां गम्भीरता काऽप्यहो ! ॥ ८१ ॥

त्वत्कीर्तिभासो विमला यतीश ! चन्द्रन्ति कुन्दन्ति हिमाचलन्ति ।

हारन्ति हीरन्ति हलायुधन्ति हसन्ति दीप्यद्रजताचलन्ति ॥ ८२ ॥

विभासते यस्य यशोविसारिकर्पूरपूरो द्विजराजशुभ्रः । मरुत्पथाङ्गारलवश्चिराय ब्रह्माण्डभाण्डोदरसंपुटेऽस्मिन् ॥ ८३ ॥

समन्ततो विष्टपमण्डपोपरि विभ्राजते यद्गुणवलयस्तताः ।

फलन्ति नानाफलसंचयैस्तु ताः सिक्ताः प्रशंसासलिलैः सुधोज्ज्वलैः ॥ ८४ ॥

सूरीशितस्त्वद्गुणराशिभारैर्महद्विराक्रान्तसमस्तगात्रः । भोगीशितात्मीयतनूमनिद्रो यथेप्सितं चालयितुं किमेषः ॥ ८५ ॥

श्रीपूज्यपादैर्विगतप्रमादैः सभासमक्षं जितवादिवादैः । भव्यारविन्दोत्करतीव्रपादैः स्वकीयशिष्योपरि सुप्रसादैः ॥ ८६ ॥

श्रीतातपादैरपि तैः स्वकीयवपुःपरीवारशरीरवार्त्तम् । निर्विघ्नजातामलसर्वपर्वस्मयापहृद्दार्ष्टिकपर्ववार्त्ता ॥ ८७ ॥

शिक्षाप्रसादश्च शुभप्रवृद्धिरनेकधर्मोन्नतिकार्यसिद्धिः । इत्याद्युदन्तान् प्रवरान् समस्तान् प्रसादपत्री परिसूचयन्ती ॥ ८८ ॥

प्रसादनीया बहुमाननीया मनःप्रमोदाय शिशोः प्रसद्य ।

कुमुद्वनस्याद्भुतकौमुदीव सुमेघमालेव शिखण्डिनो हि ॥ ८९ ॥ - विशेषकम् ।

अथावधार्या प्रणतिस्त्रिसायं कृताञ्जलेर्भे नतमस्तकस्य । श्रीतातपादैः समये स्वशिष्यः दूरस्थितोऽप्येव सुचिन्तनीयः ॥ ९० ॥

परमगुरुविनयकरणे तत्परचित्ताः कविविनयविजयाहाः । विबुधवरलालकुशलाः कुशला बहुशास्त्रतत्त्वविदः ॥ ९१ ॥

सकलगणकृत्यनिरता गणयो वरहस्तिविजयनामानः । सद्बुद्धिऋद्धिसोमा गणयो गुणरत्नरोहणमहीधराः ॥ ९२ ॥

सद्भाग्योदयविजया भाग्योदयलब्धकविजयाः । मुक्तिपुरसार्थवाहा गणयो वरमुक्तिविजयाहाः ॥ ९३ ॥

सत्यवचनसन्तुष्टा गुणपुष्टाः सत्यविजयगणयो हि । सिद्धशिलास्वच्छहृदो गणयो वरसिद्धिविजयाख्याः ॥ ९४ ॥

दर्शननिर्जितकमला गणिदर्शनविजयनामानः । गणयो रविजयाख्याः सज्जनमनपद्मरविकिरणाः ॥ ९५ ॥

हर्षितवदना बहुयतिभक्तिकरा गणिमुहर्षविजयाहाः । सौम्यगुणसोमवदना जयवन्तो विजयसोमाख्याः ॥ ९६ ॥

इत्यादिमुनिवराणां श्रीगुरुचरणाब्जयुग्मभृङ्गाणाम् । प्रणतिश्चानुप्रणतिः श्रीतातैर्निजशिशोः प्रसाद्या हि ॥ ९७ ॥

किं चेहत्या गणयो रविवर्द्धननामधारिणः सततम् । मुनिऋद्धिवर्द्धनाख्यो रूपादिमवर्द्धन-धनवर्द्धनकौ ॥ ९८ ॥

इत्यादिकाः प्रशमिनः सकलः संघश्च तातपादाब्जम् । प्रणमन्ति परमभक्त्या कृताञ्जलयोऽवनिनिहितशिरोब्जाः ॥ ९९ ॥

श्रीतातपादनान्ना नम्यन्ते प्रतिदिनं जिनाः शिशुना । शिष्यस्तन्नतिसमये श्रीतातैश्चेतसि विधेयः ॥ १०० ॥

चातकवज्जलवाहं विषसूचकवन्निशाधिनाथं च । द्वन्द्वचरवदादित्यं श्रीतातं स्मरति बालोऽयम् ॥ १०१ ॥

गजवद्विन्ध्याद्रिवनं कलकण्ठ इव सहकारमादरतः । तरुराशिरिव वसन्तं श्रीतातं स्मरति बालोऽयम् ॥ १०२ ॥

बिन्दुवर्णमात्रादीर्घह्रस्वविपरीतसंयुक्तम् । मौख्यादुक्तं शिशुना श्रीतातैस्तत्तु सहनीयम् ॥ १०३ ॥

श्रीगुरुवरविज्ञप्तिः क्षीरकण्ठलिवीकृता । विजयदशमीघस्त्रे कुरुतामिति मङ्गलम् ॥ १०४ ॥

॥ संवत् १७०४ वर्षे ॥ श्रीः ॥

खरतरगच्छीयाचार्यश्रीजिनसुखसूरिं प्रति पं० दयासिंहप्रेषिता

[२५] — विज्ञसिका । —



स्वस्तिश्रियामाश्रयमीशमाश्रयन् सुविश्रुतं जेसलमेरपत्तनम् ।

संश्रित्य सत्यश्रुतसाधुशासनाच्छ्रद्दालुजालं नयतः सतां सृतिम् ॥ १ ॥

षट्त्रिंशता सूरिगुणैश्चकासतः सतः पुनानान्निजदर्शनश्रिया ।

युगप्रधानाख्यपदप्रदीपकांश्छ्रीमज्जिनायान् सुखसूरिगच्छपान् ॥ २ ॥

रूपावसे मासचतुष्टयस्थितिर्दयादिसिंहो यतिरासमक्तिभाक् ।

त्रिधा त्रिसन्ध्यं शुभभृत्यताविधिं प्रमाणयन् प्रीणयति प्रणामतः ॥ ३ ॥ — त्रिभिर्विशेषकम् ।

त्वत्कृपासदनुभावभाषितं वार्त्तमत्र भवति व्रतीशितः । तच्छिवस्तव गणो यशोगुणैरेधतामिति सदा मदाशिषः ॥ ४ ॥

श्रैमतानुनयनीरदस्तवः सान्द्रमार्द्रयति सन्मनस्तरून् । तान् सकृत्समयसेचनादपि स्फातिरास जनुसद्यशस्करी ॥ ५ ॥

जानुदघ्नजलजातसूतयः शालयः किल कलामका इव ।

प्रार्थयन्ति मुनिनाथलालसास्तं मुहुर्मम मनोमनोरथाः ॥ ६ ॥ — युग्मम् ।

तद्रतोपचितिरप्युदीक्ष्यते येषु निक्षिपसि सद्दृशं गुरो ! ।

स्थानमाश्रयसि नाम यत्स्वयं तत्प्रियेत कथमद्भुतं यतः ॥ ७ ॥ — ज्यौतिषिकाभिगम्यं व्यर्थपद्यम् ।

देवतापचितिरौचितीमती चेतसा सुरुचिना विरच्यताम् । कुर्वन्ती सुकृतिनां शिरस्पदं त्वत्प्रसत्तिमथ मृग्यता सता ॥ ८ ॥

राजसे यद् ऋषिराजराजिषु त्रायमाण इति रागिणं गणम् । मामिकाः सकलवृत्तवद्वचोवर्णनास्तदुपकर्णय प्रभो ! ॥ ९ ॥

या जैनप्रभ-रूपचन्द्रविदुषोः सामूहिकैः साधुभिः, स्कन्धे धूरधृतात्मसाध्यसुविधेधैरेयधीरश्रियोः ।

षण्मासान् गणनाथसद्गुणभृतामादाय साहायकं, नीत्वा तामुपदौकितं हि भवते सोमांशुशुभ्रं यशः ॥ १० ॥

गच्छे कुकुरतुच्छपुच्छकुटिले भावादिहर्षीयके, माहात्म्यं दधताऽपि तेन बहुधा दुर्मेधसा धीप्सता ।

गाहित्वाऽथ यथामतिर्गुरुबलं कृत्वा व्यगृह्णीमहि, प्राबल्येन तथा हि लेखितुमहं वृत्तं विभो ! नोत्सहे ॥ ११ ॥

पापेनापि ततोऽन्वतस्ततरलं तेन प्रतापानलज्वालाभिर्ज्वलयत्यहो त्वयि विभो प्रत्यर्थिसार्थान्भृशम् ।

उद्यच्छन्ति मनस्विनो हि समये यस्यैव हेतोस्तदा तेषामैक्ष्यत सिद्धमेव सकलं साध्यं विशुद्धात्मभिः ॥ १२ ॥

अपरं च — ग्रामे काष्ठमयूरनामनि तवोद्बोद्धं समाश्शासनास्तिष्ठासाऽजनि मे विशिष्टनवतां ग्राम्यैर्गुणैरर्हति ।

श्रुत्वा तं विकिरन्तमेव विकृतग्रामेशयोर्विग्रहादिष्टिः साथ ममापि नाथ ! शिथिलीभूय प्रयाता शमम् ॥ १३ ॥

तथा च — आषाढमासविषयीणि वलक्षपक्षे, चत्वार्यहानि पुरि पूर्त्तवधीन्युषित्वा ।

सिद्धस्पृहोऽथ विरहय्य च योधदुर्गं, स्वामिंश्चतुर्दिनमलं स्थितिमानिहासम् ॥ १४ ॥

विशेषश्च — प्रौढैः समं दधदपि व्रतिचारुवृत्तीर्ग्रामे निदर्श्य गुणमुत्तवने न्यषीदत् ।

नीतो विनीततमजीवसुखोऽपि दैन्यं भूत्वा निदेशकृपणैर्निपुणैर्भवद्भिः ॥ १५ ॥

आगृह्यते हि यतिनायक ! युष्मदीयान्, यद्वासितुं स्ववसतौ वणिजोऽन्यदीयाः ।

तत्रापि वः शुभदृगीक्षणेव हेतुः, किं वापि वैभवकृपाविभवैरसाध्यम् ॥ १६ ॥

लोलीभवन्ति कति नो बहुलं लुलन्त्या, त्वां लोलयेशमनुकूलयितुं कलाज्ञाः ।
लोके तथापि हृदये हृदयालवोऽस्मिन्, स्वस्वामिधर्मममलं विरला वहन्ति ॥ १७ ॥
ये निर्गुणा विगणयेयुरगण्यभूतेर्लब्धापि ते गणविभोर्गणशः प्रसादान् ।
धिक् तानधन्यमनुजान् भुवि भारभूतांस्तेषामजीवनिरिहैव तु बोभवीतु ॥ १८ ॥
कार्ये महीयसि महीशमते नियुक्ता, यद्याभुमस्तव मुखादपि साधुवादम् ।
लक्षप्रसादमुपलभ्य तदेव देव !, ग्रीणीमहे प्रणयमङ्गबहुं वहन्तः ॥ १९ ॥
यः पौरुषं परुषवागपि पौरुषेये, धत्ते भवद्गणविपक्षवितक्ष्णाय ।
तस्मै नमोऽस्तु परमस्तुतिरेव तस्य, खं रक्षितुं भवति कोऽभिमतं न दक्षः ? ॥ २० ॥

अपरं च - यं भावहर्षगणनाथसतीर्थ्यसत्यादाशः क्षयं व्यतनुतात्मवसुव्ययेन ।

स्वश्राविकालयरिपुः पुरि मेडितायां याथार्थ्यमुज्झतु कथं द्रुतमायतौ सः ? ॥ २१ ॥

स्वामिन्निठीव(?) नृपतेः सचिवं सहायीकृत्य न्यपात्यत तकचशसा तदोकः ।

श्रीलाभवर्द्धनबुधैरधिगल्य सद्वाद् विज्ञप्तिमासविजयैर्भवतः प्रतापात् ॥ २२ ॥ - युग्मम् ।

ये स्त्रीये निवेशे सुमरुजनपदे पूज्यराजो निदेशादायन्तायातवर्षास्थितिनिकटफलाः साधवस्तेऽधिवासम् ।
मनुत्सर्गरूपे विलसति च विधौ योऽपवादस्वरूपः, प्रस्तावात्तं विशेषं बहुलमपि दले लेखनार्हं लिखामि ॥ २३ ॥
हृदे वराकप्रतिम इति पुरेऽभिक्षमाणो वराटानास्माकोपाश्रयस्य श्रुतमनधिगतोऽपत्रपाहेतुरेषः ।
द्वैः पञ्चाषनाम्नो महदपवसथाच्चालयां चैव चक्रे, कुप्यद्भिस्ते सकोपैः सकलविदुचितादन्यदेशीयसाधुः ॥ २४ ॥
यो वैद्याविलासेरपवसथमिदं रूपमेत्योत्तमाख्यरत्नेकोऽनेकैर्विवेकैर्व्यतनुत वसतिं तत्र च प्रावृषेयाम् ।
योऽथो वीरचन्द्रः सरलतरमतिः श्रीदयासागराणां, पारीयासंनिवेशे शिवकशिपुकृतेऽवद् चतुर्मासवासम् २५
लाजनाभिधानं वरमपि मुनयः क्षेत्रमध्यासते के, निर्देशं ते समग्रश्रुतपठनतया व्यग्रबुद्धेरलब्धा ।
मै कार्याय कस्य प्रभवति भवतो नाथ ! पश्चान्निदेशो, भ्राम्यन्ति कापि शून्या बत बहुपशवो दस्यवः कापि शून्याः ॥ २६ ॥
। च - मुक्त्वा सैन्धवमारोहमटन्तो भूमिमण्डले । स्थितिं खेजडलाक्षेत्रेऽवरंश्चारित्रवर्द्धनाः ॥ २७ ॥

अह पाइयकडाई, जीहाललियत्तणेण भणियवाइ -

अन्ने वि समायारा, जइ सोच्चा लोगओ लिहिजंति । तउ बुड्डइ तह लेहो, जह पढिआ आउला होति ॥ २८ ॥
पुज्जो सुलेहणिजं, किं पि लिहाणे तहावि संखितं । बोलंती तुह पुरओ, कहं पि जीहा न थिप्पेइ ॥ २९ ॥
सिरिजीअसंघरणा, पेणुविआ जा हि अप्पणो धूआ । सायंभरीपुरीओ, परओ सा णिग्गया सुणिआ ॥ ३० ॥
साहिस्स माउलो वि अ, बेहि सहस्सेहिं अस्ससाईहिं । जं दरिअ रायपुत्ती, तं संमुहमागओ ज्झत्ति ॥ ३१ ॥
घेतुं सेन्नघडाओ, पच्चालेउं पराण भूमीओ । अलिअही लाहउरं, सूरु ढिल्लीसरो साही ॥ ३२ ॥
रं - सुहडउरंमि बहूओ, णिच्चा धाईवई विराईओ । इण्हि पुण संपत्तो, सिग्घपयाणेहिं जालउरं ॥ ३३ ॥
गुज्जरकउहाहिमुहं तुवरिहिइ तओ वि उब्भडो राया । वेमयिअ तेणवग्गमदब्भदवाइ विढविहिइ ॥ ३४ ॥
मासं जाव पहू पुढुमं मेहेहिं पंकिआ पुढवी । गयणे उण उड्डा उल्लिआ बोल्लणा वाया ॥ ३५ ॥
छा बगारिछोली सोहिल्लबलाहयाण मालाहिं । मयमत्ते भदवये मासे वासा समाढत्ता ॥ ३६ ॥
साससोहिरेहिं सब्बउ संवेलिएहिं खित्तेहिं । सुरणयरिं वि विडंबइ अहुणा गामल्लिया भूमी ॥ ३७ ॥
दप्पुल्लो लोओ पुज्जो दियहा वि जेण रमणिज्जा । सब्बत्थ तेण होही महिमा पज्जूसण्णस्स ॥ ३८ ॥

अह सूरसेणीभासाए गाहा -

त्तमदो भयवं ! मणस्सिआ घणपउट्टपढणेहिं । सो दक्खो होदि कथं कधेदि जो अहल-कजाइ ॥ ३९ ॥

अह मागहीभासाए गाहा-

यणवययधाशलूवं तुह पुलदो वज्जलितु लेशेण । अहमेशे पुलिशेशल उवस्तिदे तं पहुं नुविदुं ॥ ४० ॥

अह पेसाचीभासाए गाहा-

सोत्तन तुम कुनकित्ति चह हलिसो मातिसान हितपकए । तह पासित्तन मेखं चनिय्यते नापि मोलानं ॥ ४१ ॥

नलवलनतपतनीलच तुं तत्थूनं समकलोकस्स । अन्नो न तंसनिच्चो फविय्यते निच्चलकुलू वि ॥ ४२ ॥

अहावम्भंसभासाए वज्जं-

जिहिं जण तुह मुहु पिक्खियउं सो उ मुणिज्जइ धनु । पुव्वभवन्तरि तिहिं नरहिं किन्नउ उज्जल पुव्वु ॥ ४३ ॥

अथ समसंस्कृत-श्लोकः-

संबुद्धसमसिद्धान्त-सारबुद्धिधरोत्तम ! । अच्छे खरतरे गच्छे जय भूरिगुणालय ! ॥ ४४ ॥

पुनः संस्कृतम् - खरतरगणराजः पूज्यराड् जैनचन्द्रो दिवि वरसुरलीलां लालयन् देवताभिः ।
भुवि च ललितगीतैः सद्गणैः किन्नराणामपि जिनसुखसूरिर्गीयतां गच्छनाथः ॥ ४५ ॥

तव विमलगुणालीश्वरास्तारानुकारा, गणयितुममितत्वाच्छङ्कते शारदाऽपि ।

अथ कथमभिधत्ते मादशस्तद्विवेकमिति मम गुणगीतौ श्रेयसी मौनवृत्तिः ॥ ४६ ॥

विशेषश्च - विज्ञप्त्यालं दीनयाऽऽदेशलिप्सासंबन्धिन्या त्वत्पुरो मादशानाम् ।

यद्येवं स्याल्लेखमात्रेण सिद्धिस्तन्नोद्बृष्टं किं परुद्धायनेऽपि ॥ ४७ ॥

मन्ये धन्यास्तान् दविष्टे विराष्ट्रे सद्यो बन्धं ये भवन्तं प्रपद्य ।

अस्मादक्षेष्वीक्षमाणेषु दक्षाः स्वीयं साध्यं साधवः साधयन्ति ॥ ४८ ॥

यद्वा खेदः कोऽत्र वत्स्यामि यत्र, संपत्स्यन्ते सिद्धयस्तत्र सर्वाः ।

यल्लेखेऽस्मिन् न प्रियं किञ्चि..... ॥ ४९ ॥

संपदां भवति या खलु हेतुः,..... ।

.....वतां मयि साधौ, प्रेषितव्यमथ..... ॥ ५० ॥

लेखो मासभाद्रपदशुभ्रदश.....

*

बहुद्रव्यव्ययेनापि येऽजायन्त जिगीषवः । श्लाघ्या भवत्प्रसादार्हा वाचकाः सुमतिप्रियाः ॥ १ ॥

परम्पर.....सिन्धुरा धर्मसुन्दराः । दयादत्त-दीपचन्द्र-रूपचन्द्रसमावृताः ॥ २ ॥

.....दू भवतां प्रीतिपत्रस्याद्याप्यदर्शनात् । चित्तोल्लासात् प्रफुल्लन्ते सेवकाः स्वामिसदृशाः ॥ ३ ॥

व्यामृश्यन्निति वासं... स्वामिभिः सुखसूरिभिः । पुरे योधपुरे ज्ञाताः किं पात्रे समिता वयम् ॥ ४ ॥

-चतुर्भिः कुलकम् ।

धिषणेन सहारब्धस्पर्द्धनान् धर्मवर्द्धनान् । उपाध्यायपदख्यातिं चरितार्थां वितन्वतः ॥ १ ॥

लसद्भिर्गुणरत्नौघैर्दधतः सागरोपमाम् । उपाध्यायपदाश्लिष्टान् विशिष्टान् राजसागरान् ॥ २ ॥

ख्यातान् श्रीवाचकख्यात्या सुन्दरान् गुणसुन्दरान् । तत्रत्यान्यमुनींश्चापि नमस्कुर्वे यथाक्रमम् ॥ ३ ॥

-त्रिभिर्विशेषकम् ।

॥ पं० रूपचन्द्रस्य त्रैकालिकी नतिरवगन्तव्या ॥ श्रीः श्रीः ॥

* *

